Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली

भाग - 2

- शाह दीपचन्द कासलीवाल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली

भाग–२

❖ अनुभवानंद

❖ परमात्म–पुराण

❖ सवैया–टीका

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : २००० प्रतियाँ
(दि. ८ अगस्त, २००४)
सत्ताईसवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, जयपुर

लागत मूल्य : **२५ रुपये**
विक्रय मूल्य : **१८ रुपये**

प्राप्ति स्थान :

- **श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट**
  173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई-400002
- **पण्डित टोडरमल स्मारक भवन**
  ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.)
- **श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**
  पुरानी मण्डी, अजमेर (राज.)
- **पूज्यश्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट**
  कहान नगर, लामरोड, देवलाली, जि. नासिक (महा.)
- **आत्मसाधना केन्द्र**
  नीलवाला रोड, घेवरा मोड़, नई दिल्ली-41
- **श्री परमागम मन्दिर ट्रस्ट**
  पो. तीर्थक्षेत्र सोनागिर, जि. दतिया (म.प्र.)

मुद्रण व्यवस्था :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर
मोबा. 0141-3554541

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated im memory of Pujya Shree Lalchandbhai Amarchand Modi by Rajesh & Jyoti Shah, London who have paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Pandit Dipchandji Granthavali Part 2 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	28 March 2010	First electronic version

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशकीय

वर्तमान में १००८ भगवान महावीर स्वामी का धर्मशासन प्रवर्तमान है। भगवान महावीर स्वामी का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव सम्पूर्ण देश-विदेश में अत्यन्त प्रभावपूर्वक मनाया गया था। इसी वर्ष ज्ञानतीर्थ सोनगढ़ में परमागम मन्दिर का भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की उपस्थिति में मनाया गया। प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर ही दिगम्बर जैन संघ के प्राचीन तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा के लिए मुमुक्षु समाज को विशेष योगदान प्रदान करना चाहिए - ऐसी भावना के फलस्वरूप **श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ-सुरक्षा ट्रस्ट** की स्थापना धर्मरत्न पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता फतेपुर के अथक् प्रयत्नों से की गई। ट्रस्ट के स्थापकों ने तीर्थसुरक्षा के साथ ही जिनवाणी की सुरक्षा का कार्य भी स्वीकृत किया। तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री की ८७ वीं जन्म-जयन्ती दादर में मनाई गई, तब साहू शान्तिप्रसादजी जैन ने संस्था का विधिवत् उद्घाटन किया और पुनः पूज्य गुरुदेवश्री का मंगल आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

अपने पच्चीस वर्षीय संक्षिप्त कार्यकाल में प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक आक्रमणों से तीर्थक्षेत्रों का तथा जिनवाणी का संरक्षण करने में अपना गतिशील योगदान देकर इस ट्रस्ट ने समाज का मन मोह लिया और सम्पूर्ण देश में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट की सर्वोन्मुखी प्रगति स्व. पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की दूरदृष्टि और कार्यक्षमता का सुखद फल है। उनका स्वप्न साकार होते देखकर सभी को आनन्द होना स्वाभाविक है।

तीर्थक्षेत्रों की सेवा - तीर्थ हम सभी आत्मार्थियों के लिए आत्मोत्थान की प्रेरणा के स्रोतधाम हैं। तीर्थक्षेत्रों, अतिशयक्षेत्रों अथवा सिद्धक्षेत्रों के जिनमन्दिर, प्रतिमा, टोंक, चरण तथा अन्य धर्मायतन काल और प्राकृतिक प्रभाव के कारण कमजोर हों, तब उनका जीर्णोद्धार करना आवश्यक होता है। यात्रियों की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुविधा की भी समुचित व्यवस्था होवे तो वे पावनक्षेत्र पर अधिक ठहरकर वहाँ के वैराग्यप्रेरक वातावरण का लाभ ले सकते हैं। यह ट्रस्ट तीर्थों तथा प्राचीन जिनमन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए नियमितरूप से गतिशील है।

शिखरजी तीर्थ पर गत ३-४ वर्षों में ६ कि.मी. का पक्का रोड निर्माण व समस्त टोकों का जीर्णोद्धार कार्य भी अच्छी तरह सम्पन्न हुआ है।

तीर्थक्षेत्रों के व्यवस्थित और योजनाबद्ध विकास तथा सुरक्षा के ध्येय को लक्ष्य में रखते हुए तीर्थों के सर्वेक्षण की योजना क्रियान्वित की गई। अनेक तीर्थक्षेत्रों ने अपने विकास के लिए 'मास्टर प्लान' बनाकर वहाँ दिगम्बरों के हक के दस्तावेजों को व्यवस्थित बनाकर संग्रहीत किया है। संघ के इतिहास में तीर्थ सर्वेक्षण की यह योजना अभूतपूर्व रही है। इस कार्य में पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा का महत्त्वपूर्ण योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

जैन सम्प्रदायों में प्रवर्तते तीर्थक्षेत्रों के विवाद के सम्बन्ध में समाज में जो जागृति आई है, उसमें अपनी संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अंतरीक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर) के संदर्भ में सुरक्षा के जो प्रयत्न हुए हैं, उनमें अपने ट्रस्टी बा.ब्र. पण्डित धन्यकुमारजी बेलोकर का सिंहवृत्ति रूप योगदान रहा है।

विगत दस वर्षों से शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर में दिगम्बर जैन संघ और यात्रियों के हक पुनः हासिल करने के लिए सक्रिय आन्दोलन चल रहा है। इस भागीरथ कार्य को सिद्ध करने में हमें आंशिक सफलता मिल रही है। दिल्ली में डेढ लाख जैन समुदाय की रैली के उपरांत तीर्थ की टोंक पर पहुँचने के लिए ४ कि.मी. का पक्का रोड बनाना, पहाड़ पर डाक बंगले का संचालन, यात्रियों की व्यवस्था में अनेकविध अभिवृद्धि तथा माताघर का नवीनीकरण आदि योजनायें संचालित की जा सकी हैं। तीर्थक्षेत्रों की व्यवस्था और सुरक्षा के लिए दिगम्बर जैनसमाज को एकतापूर्वक शक्ति के संचयरूप ध्येय की प्राप्ति से अपने को नजदीक ले जा रहा है। भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के सहकार्यकारी के रूप में इस ऐतिहासिक प्रकरण में भागीदार होने का सौभाग्य अपनी संस्था को प्राप्त हुआ है। कमेटी के मंत्रीरूप में मेरी नियुक्ति होने से दोनों संस्थाओं द्वारा तीर्थक्षेत्रों की सेवा करने के महत्त्वपूर्ण सत्कार्य में विशेष शक्ति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

का संचय हुआ है। तीर्थक्षेत्रों की सेवा के लिए समाज को साहू अशोककुमारजी के प्रभावशाली नेतृत्व का लाभ मिल सका – यह गौरवगाथारूप है। समाज में तीर्थ सुरक्षा के भागीरथ कार्य हेतु एकता का वातावरण बन रहा है।

महाविद्यालय का संचालन – माँ जिनवाणी के आत्मप्राप्ति के मंगल संदेश जन-जन तक पहुँचाने का ध्येय मर्मज्ञ विद्वानों के अभाव में संभवित नहीं होता। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में **श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय** का प्रारम्भ किया गया है। आज इस महाविद्यालय ने सम्पूर्ण देश में अध्यात्म का डंका बजा दिया है।

निरन्तर अध्ययन-मनन-चिन्तन तथा एकमात्र स्वहित की रुचि इस महाविद्यालय की विशेषताएँ हैं। वस्तुतः तो इसप्रकार की आध्यात्मिक क्रान्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल उपदेश का फल है। उनकी पुण्य प्रभावना के उदय में लाखों श्रावक-श्राविकायें दैनिक अभ्यास करके आत्मसिद्धि के कल्याणपथ में संलग्न हुए हैं।

इस महाविद्यालय के विद्यार्थी श्री दि. जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर द्वारा राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं। यह परीक्षा बी.ए. के समकक्ष है। इस अभ्यास क्रम के उपरांत अपने विद्यार्थियों को श्री वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड, जयपुर की प्रवेशिका, विशारद आदि परीक्षायें भी दिलवायी जाती हैं। संक्षिप्त में यह विद्यालय चारों अनुयोगों में पारंगत विद्वान तैयार करने की प्रयोगशाला है। हर्ष का विषय यह है कि अपने विद्यार्थी प्रतिवर्ष राजस्थान विश्वविद्यालय एवं बोर्ड की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते आये हैं।

विगत छह-सात वर्षों में महाविद्यालय में अधिक छात्रों को प्रवेश देने के लिए श्री मगनमल पाटनी ट्रस्ट मुम्बई, श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर तथा पूज्य श्री कानजी स्वामी ट्रस्ट देवलाली आदि का सक्रिय सहयोग भी संस्था को प्राप्त हो रहा है। इस महाविद्यालय का सफल निर्देशन प्रसिद्ध विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कर रहे हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक

ट्रस्ट का सम्पूर्ण सहयोग विद्यालय को नियमितरूप से प्राप्त हो रहा है एवं प्राचार्य के रूप में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की सेवायें प्राप्त हो रही हैं। बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील एवं पण्डित संजीवकुमारजी गोधा आदि की अनेकविध सेवायें संस्था को प्राप्त हो रही हैं।

अपनी संस्था की जयपुर की समस्त गतिविधियों के स्थापक स्व. श्री नेमीचन्दजी पाटनी का सहयोग जीवनभर संस्था को प्राप्त रहा है। आज आपका वियोग संस्था, महाविद्यालय एवं मुमुक्षु समाज की अपूरणीय क्षति है।

अभी तक महाविद्यालय के माध्यम से समाज को ३३१ शास्त्री विद्वान, जिनमें ४४ जैनदर्शनाचार्य भी हैं, प्राप्त हो चुके हैं तथा वर्तमान में १७७ विद्यार्थी अध्ययनरत हैं।

विद्यार्थियों को जैनदर्शन के शिक्षण के उपरांत आध्यात्मिक, सदाचारमय एवं सेवाभावी जीवनवाला बनाना ही इस विद्यालय का उद्देश्य रहा है।

सत्साहित्य विभाग – पूज्य गुरुदेवश्री के देह विलय के पश्चात् पूज्य आचार्यों के वृहद् मूलग्रंथों को समाज तक पहुँचाते रहने का कार्य अपनी संस्था ने निभाया है। इस दिशा में संस्था ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए लगभग पाँच लाख की राशि के पंच परमागम व अन्य ग्रंथों का प्रकाशन जयपुर में सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग खोलकर किया है। जिसके द्वारा पंचपरमागमों के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रकाशन हो चुका है, अन्य भी कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। जिनकी आवृत्तियाँ निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं। गुजराती भाषा में आत्मानुशासन, योगसार एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार का प्रकाशन भी इस श्रृंखला में उल्लेखनीय कड़ी है।

तदुपरान्त तत्त्वप्रचार के उद्देश्य से विद्वानों के प्रोग्राम एवं आवश्यकता अनुसार स्वाध्याय भवन निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग भी दिया जाता है। अभी तक २५ स्थानों पर नये स्वाध्याय भवनों का निर्माण हो चुका है। स्वाध्याय भवन के लिए वर्तमान में १ लाख रुपये की सहायता स्वीकृत की जाती है।

संस्था की गतिविधियों से समाज को परिचित कराने एवं ध्रुवफण्ड में दान संकलन के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि मण्डल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के साथ देश में भ्रमण कर चुका है, जिसे समाज का आशातीत सहयोग प्राप्त हुआ है।

सर्वोदय सहायता योजना – आर्थिक दृष्टि से कमजोर साधर्मीजनों को विशेष बीमारी एवं अपने बालकों की उच्च शिक्षा के लिए सर्वोदय ट्रस्ट के अन्तर्गत श्री कहान राज सर्वोदय सहायता योजना का प्रारंभ किया गया है। इच्छुक साधर्मीजन ट्रस्ट कार्यालय से संपर्क कर इसका भी लाभ ले सकते हैं।

आभार प्रदर्शन – ट्रस्ट की स्थापना काल से ही पं. श्री बाबूभाई मेहता, मु. श्री रामजीभाई दोशी, पं. श्री खीमचंद जे. सेठ, पं. श्री लालचंदभाई मोदी, वर्तमान अध्यक्ष बाबू जुगल किशोरजी 'युगल', पं. श्री धन्यकुमारजी बेलोकर, श्री सुमनभाई दोशी (दोनों उपाध्यक्ष) श्री (स्व.) माणिक्यलाल आर. गांधी, श्री शान्तिभाई झवेरी के मार्गदर्शन एवं सहयोग का लाभ मिलता रहा है। इनके तथा अन्य महानुभावों की सलाह–सूचना के बिना संस्था सफलता प्राप्त नहीं कर सकती थी। पं. श्री उत्तमचन्दजी सिवनी, समाजरत्न श्री अमृतभाई मेहता, श्री आलोककुमार जैन कानपुर ट्रस्टी हमें सहायता कर रहे हैं।

प्रकाशन कार्य को गति प्रदान करते हुए गत वर्ष समाधितंत्र/इष्टोपदेश का प्रकाशन किया जा चुका है एवं इस वर्ष भट्ट अकलंकदेव विरचित स्वरूप–संबोधन तथा पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली भाग–१ का प्रकाशन हम स्वाध्यायी जनों को समर्पित कर चुके हैं।

अध्यात्म क्षेत्र के कतिपय विद्वानों में पण्डित दीपचन्दजी कासलीवाल का नाम भी अग्रगण्य है एवं आपकी रचनाओं की प्रशंसा पूज्य गुरुदेवश्री अपने प्रवचनों में प्रायः किया किया करते हैं तथा आपके अनुभव–प्रकाशादि ग्रंथों पर गुरुदेवश्री ने मार्मिक प्रवचन प्रदान कर इन ग्रंथों को जन–जन की वस्तु बना दिया।

पण्डितजी कृत छोटी–बड़ी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। अतः यह निर्णय किया गया कि आपके उपलब्ध सभी प्रकाशनों को पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली

के नाम से ४ भागों में प्रकाशित किया जाए। फलस्वरूप दूसरा भाग, जिसमें अनुभवानंद, परमात्म-पुराण व सवैया-टीका का समावेश किया गया है, आपको समर्पित हैं।

भाग-३ में ज्ञानदर्पण, स्वरूपानंद, उपदेशसिद्धान्त रत्न एवं भाग-४ में भावदीपिका व अन्य उपलब्ध ग्रंथों का प्रकाशन शीघ्र किया जा रहा है।

भाग २ व ३ का अनुवाद व सम्पादन कार्य ब्र. कल्पना जैन, सागर द्वारा किया गया है। आपके सद्प्रयत्नों से पण्डितजी का अप्रकाशित ग्रंथ अनुभवानंद प्राप्त हुआ; तदर्थ आपके आभारी हैं। इस प्रकाशन की परिकल्पना के लिए युवा विद्वान पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलियाँ को हार्दिक धन्यवाद प्रदान करते हैं। आपकी प्रेरणा से भाग-२ व ३ का हिन्दी अनुवादादि कार्य ब्र. कल्पना जैन ने अति शीघ्रता से सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ की कीमत करने में जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका भी हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को आकर्षक एवं सुन्दर रूप प्रदान करने में दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर का भी सहयोग रहा है, अत: हम उनके भी आभारी हैं।

सभी साधर्मीजन इन ग्रन्थ रत्नों का अवगाहन कर शाश्वत सुख के पथिक बनें - यही भावना है।

दि. ८ अगस्त, २००४ **बसंतलाल मूलचंद दोसी (सुदासणा)**

महामंत्री

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई

वास्तव में वचन द्वारा कोई भी आत्मा निन्दा या स्तुति को प्राप्त नहीं होता। मेरी निन्दा की गई है या स्तुति की गई है - ऐसा मोह के योग से मानता है।

- श्री योगसार प्राभृत

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुवादिका/संपादिका की ओर से

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट भावनगर, कार्यालय जयपुर में उससमय कार्यरत समादरणीय विद्वान डॉ. देवेन्द्रकुमारजी नीमच ने फरवरी २००१ में समादरणीय भाई राजकुमारजी जैन, कानपुर (राजू भाई) को 'पंडित दीपचंदजी कासलीवाल' विरचित प्रस्तुत ग्रंथ 'अनुभवानंद' की एक हस्त-लिखित प्रति प्रकाशनार्थ दिखाई थी। उन्होंने उसकी फोटो कॉपी कराकर एक प्रति मुझे भी दी। कार्योत्पादक पाँच समवाय कारणों के अभाव में उससमय यह बात यों ही आई-गई हो गई।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित सन् २००३ अक्टूबर माह के शिक्षण-शिविर में समागत भाई श्री पं. देवेन्द्रकुमारजी बिजौलियाँ ने 'पण्डित दीपचंदजी कासलीवाल' विरचित समग्र साहित्य-प्रकाशन की योजना बताते हुए उसका खड़ी बोली में हिंदी अनुवाद करने का कार्य मुझे सौंप दिया। उसपर कुछ विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय हुआ कि जिनका हिंदी अनुवाद हो गया है, उन्हें तो पूर्ववत् ही प्रकाशित कर दिया जाए; शेष का अनुवाद किया जाए। इसी शृंखला में अनुमानतः अभी तक अप्रकाशित 'अनुभवानंद' का तथा परमात्म-पुराण और सवैया-टीका का खड़ी बोली हिंदी में अनुवाद आपके समक्ष प्रस्तुत है।

बाह्य देशाटन/जन-परिचय क्षेत्र में अधिक सक्रिय नहीं होने के कारण इस दिशा में मेरे द्वारा अपेक्षित प्रयास नहीं किया गया होने से तथा अन्य परिचित जनों से भी कुछ ज्ञात नहीं हो पाने से उपलब्ध एक-एक प्रति के आधार से ही प्रस्तुत कार्य सम्पन्न हुआ है।

अनुभवानंद की उपलब्ध हस्तलिखित प्रति पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो यह पहले किन्हीं अध्यात्म-प्रेमी, साहित्य-सेवी द्वारा अनूदित हो; क्योंकि इसमें कहीं-कहीं राजस्थानी शब्दों का तो प्रयोग है; परंतु व्याकरण कहीं भी ढूँढ़ारी, राजस्थानी या व्रज भाषा की नहीं है; जबकि पं. दीपचंदजी की अन्य कृतिओं में ढूँढ़ारी, राजस्थानी भाषा के व्याकरण का प्रयोग है। यही कारण है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि इसके अनुवाद या संपादन में विशेष कुछ नहीं किया गया है; मात्र वाक्य-रचना, अल्पविराम, अर्धविराम, पूर्णविराम, पैराग्राफ, राजस्थानी शब्द के स्थान पर हिंदी शब्द परिवर्तन आदि का ही समायोजन किया गया है।

जो भी हो; परंतु विषय-वस्तु की दृष्टि से विविध विषयों द्वारा आत्मानुभवात्मक आनंद को व्यक्त करने की कला बतानेवाला प्रस्तुत ग्रंथ अद्भुत और अद्वितीय है।

विक्रम संवत् १७००-१८०० पर्यंत साहित्यिक क्षेत्र में गद्यशैली परिमार्जितरूप में विकसित नहीं हो पाने के कारण यद्यपि तत्कालीन गद्य-भाषा भावों का भार वहन करने में पूर्णतया सक्षम दिखाई नहीं देती है; तथापि इस दिशा में पं. दीपचंदजी का प्रयास सराहनीय है। उन्होंने अपने भावों को भाषा में गूँथने का अथक परिश्रम कर अध्यात्म की अमूल्य निधियाँ हमें प्रदान की हैं। उनके भावों को मैं कितना कुछ समझ/व्यक्त कर पाई हूँ – यह निरीक्षण करने का कार्य विद्वान पाठकों पर ही छोड़ती हूँ। मात्र उनसे सानुरोध यह निवेदन अवश्य करती हूँ कि यदि कहीं समादरणीय पंडितजी के भावों से विरुद्ध विषय-लेखन हो गया हो, उनके अभिप्राय की स्पष्टता नहीं हो पाई हो तो जिनवाणी-परम्परा-सुरक्षा की भावना से ओत-प्रोत विद्वद्गुण अपने अमूल्य मार्गदर्शन द्वारा मुझे अनुगृहीत अवश्य करें।

इस कार्य में संलग्न कर जिनवाणी माँ की सेवा तथा परिणाम-विशुद्धि का अवसर प्रदान करनेवाले भाई श्री देवेन्द्रकुमारजी बिजौलियाँ को धन्यवाद देते हुए मात्र यही भाव व्यक्त करती हूँ कि जिस भावना से समादरणीय पंडित दीपचंदजी ने इन ग्रंथों का प्रणयन किया है, उसे स्वीकृत करते हुए, सभी इनका गंभीरतापूर्वक स्वाध्याय कर गहन-गंभीर अनंतधर्मात्मक, असीम समृद्धि सम्पन्न स्व-भगवान आत्मा के आश्रय से पर्याय में भी अनंत सामर्थ्यसम्पन्न, अद्भुत अनुभवानन्द-मय परमात्म-दशा प्रगट करें – इस मंगल भावना के साथ प्रस्तुत ग्रंथ आपके कर-कमलों में सादर समर्पित हैं।

ऋषभ निर्वाण दिवस (२० जनवरी २००४) **– कल्पना जैन**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

दो शब्द

अध्यात्मरसिक पण्डित दीपचंदजी कासलीवाल से सम्पूर्ण तत्त्वप्रेमी स्वाध्यायी समाज सुपरिचित है। आपके द्वारा रचित आत्मावलोकन, चिद्विलास व अनुभव प्रकाशादि ग्रंथ वर्षों से स्वाध्याय प्रेमियों के स्वाध्याय के अंग बने हुए हैं।

इस युग के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी ने अनुभवप्रकाश पर भाववाही प्रवचन किये हैं, जो हिन्दी और गुजराती में प्रकाशित हो चुके हैं। समयसार मैं समागत सैंतालीस शक्तियों पर प्रवचन करते हुए गुरुदेवश्री ने पण्डितजी के ज्ञानदर्पण, चिद्विलास आदि ग्रंथों के उद्धरण प्रस्तुत कर पण्डितजी के प्रति अपनी असीम आस्था प्रदर्शित की है।

इन्हीं सब बातों को लक्ष्य में रखकर यह विचार किया गया कि पण्डितजी का समग्र साहित्य प्रकाशित होना चाहिए; परन्तु पण्डितजी का सम्पूर्ण साहित्य प्राचीन भाषा में तथा पद्यात्मक भी होने से वर्तमानकालीन स्वाध्याय प्रेमियों की कठिनाई का अनुभव करते हुए उनके हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता अनुभव की गई। जिसके फलस्वरूप अनुभवानंद, परमात्मपुराण, सवैया टीका, उपदेशसिद्धान्तरत्न एवं स्वरूपानंद का अनुवाद व सम्पादन आदरणीय विदुषी ब्र. कल्पनाबेन द्वारा किया गया है। शेष ग्रन्थ पूर्व हिन्दी अनुवादकों द्वारा किए अनुवाद ही हैं।

अत्यन्त हर्ष की बात है कि इस भाग-२ में पण्डितजी की अद्यावधि अप्रकाशित अध्यात्मरचना 'अनुभवानंद' प्रकाशित की जा रही है। इसका श्रेय भी आदरणीय बहिन को जाता है। इसके लिए आपका हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। सम्पूर्ण ग्रन्थों को चार भागों में प्रकाशित करने का संकल्प है। पूर्व में भाग-१ एवं अभी भाग-२ के प्रकाशनोपरान्त भाग-३ व ४ भी शीघ्र प्रकाशित होंगे।

इस प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान करने हेतु श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के महामंत्री श्री वसंतभाई दोशी का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इसप्रकार के लोकोपकारक एवं आत्महितकारी कार्यों की परम्परा अविरल प्रवाहमान रहेगी।

दि. ८.८.२००४ — **देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ**

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रंथकार और ग्रंथ-परिचय

साहित्यिक क्षेत्र की आध्यात्मिक विधा को परिपुष्ट करने वाली गृहस्थ विद्वद-परम्परा में कविवर पंडित दीपचंदजी शाह का उल्लेखनीय स्थान है। जाति से खण्डेलवाल और गोत्र से कासलीवाल आप मूलतया सांगानेर के निवासी थे; परन्तु युवावस्था में ही जयपुर की तत्कालीन राजधानी आमेर में आकर रहने लगे थे। 'दीपचंद साधर्मी' के नाम से प्रसिद्ध आप संस्कृत-प्राकृत के विशेषज्ञ विद्वान थे। शरीर तथा शरीर संबंधी अन्य संयोगों से स्वयं को सतत भिन्न माननेवाले आपके जन्म-जीवन-परिचय आदि संबंधी सामग्री अनुपलब्ध है। अनुमानत: विक्रम संवत १७०० से १८०० के मध्य में आप से राजस्थान प्रांत कृतार्थ हो रहा था।

आपके द्वारा लिखित उपलब्ध रचनाओं में से सात रचनाएँ पद्य तथा आठ रचनाएँ गद्य शैली में निबद्ध हैं; जो कि इसप्रकार हैं –

१. अनुभव विलास/पद संग्रह
२. स्वरूपानंद
३. ज्ञानदर्पण
४. उपदेशसिद्धांतरत्न
५. अध्यात्मपच्चीसी
६. आरती
७. विनती

ये सात उपलब्ध पद्य रचनाएँ हैं।

८. आत्मावलोकन
९. चिद्विलास
१०. भावदीपिका
११. अनुभवानंद
१२. स्वरूपानंद
१३. गुणस्थानभेद
१४. परमात्म-पुराण
१५. सवैया-टीका

ये आठ गद्य रचनाएँ हैं। इनमें से अभी यहाँ अनुभवानंद, परमात्म-पुराण और सवैया-टीका – ये तीन रचनाएँ ही विवेच्य हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

१. अनुभवानंद – प्रस्तुत ग्रंथ 'अनुभवानंद' स्वनामधन्य, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, स्याद्वाद शैली के संपोषक, चतुरनुयोगमय जिनवाणी के गहन अध्येता, जैन साहित्य की आगमगर्भित अध्यात्मविधा को अपनी समर्थ लेखनी से समृद्ध करनेवाले, अध्यात्मरसिक 'पंडित श्री दीपचंदजी शाह कासली-वाल' कृत है – ऐसा समादरणीय 'पं. डॉ. देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री नीमच' ने 'अध्यात्म पंचसंग्रह' की प्रस्तावना में लिखा है।

उपमा और रूपक अलंकारों से परिपूर्ण, अनुप्रास की छटा बिखेरने वाली, विविध विषयों का विवेचन करनेवाली प्रस्तुत कृति एक चित्रकाव्य जैसी प्रतीत होती है। विषय-विवेचन की भाषा इतनी सशक्त है कि इसे पढ़ते-सुनते हुए मन में उस प्रसंग का एक चित्र/दृश्य बनता चला जाता है। लगता है, ऐसे कुछ ग्रंथों से शैली सीखकर ही रेडियो स्टेशनवालों ने अपने कार्यक्रमों में श्राव्य नाटकों/झलकिओं की परिकल्पना कर उन्हें क्रियान्वित किया होगा।

५४ प्रकरणों में ग्रथित यह ग्रंथ महाकाव्यीय विशेषताओं से संपन्न प्रथमानुयोग शैली में लिखा गया अध्यात्म का अद्‍भुत ग्रंथ है। नायक-चेतन राजा, नायिका-शिव रानी, अगम दुर्ग, भोजन सत्कार, समरांगण, वनविहार, स्ववस्तु वाटिका, प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वयंवर मंडप, बारात गमन-आगमन, रास-क्रीड़ा, मार्गदर्शन, सुभाषित, लोकोक्तिआँ आदि जिन-जिन विषयों का वर्णन किसी ग्रंथ को महाकाव्य नाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है; उन सभी का इसमें समावेश है।

प्रारंभ में अनंतधर्मधारक, शक्तिसंपन्न, स्वभाव-संपदा से समृद्ध, गुणों की गोदाम स्वचतुष्टयात्मक वस्तु-व्यवस्था का प्रतिपादन कर उसे अन्य से अगम्य 'अगम दुर्ग' रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तत्पश्चात् चैतन्य का स्व-परप्रकाशक स्वभाव सिद्ध कर, समग्र लोकालोक को जाननेवाली ज्ञानपर्याय का 'अद्‍भुत चोरी' नाम से चित्ताकर्षक वर्णन है। आइए इसका कुछ रसास्वादन करें- ''यद्यपि मैं इस कार्य में मूषकवत/चूहे के समान कार्य करता हूँ; तथापि अपने अचौर्यव्रत को कभी भी खंडित नहीं करता

हूँ। यद्यपि मैं स्वात्मधन चुराकर लाता हूँ; तथापि जहाँ से लाता हूँ, वहाँ वह धन एक परमाणुमात्र भी कम हुए बिना उतना का उतना ही रहता है। मेरी इस चोरी की यह कुछ अद्भुत शक्ति है। मेरे स्वामी इसे भली-भाँति जानते हैं तथा यह उनकी ही आज्ञा है कि तुम ऐसी चोरी करो, इससे तुम कभी भी अपराधी नहीं होगे।''

तदनंतर 'भोजन-सत्कार' में परमामृतमय अनुभव-भोजन का वर्णन कर 'तृषाशमन' में आत्मा को एक मिष्ट, शीतल, शांत जलमय सरोवर के रूप में चित्रित कर, उसमें स्थिर पर्यायों को, जलपान कर तृप्त होनेवालों के रूप में वर्णन किया है। 'मेरी महिमा' के अंतर्गत पर से पूर्ण निरपेक्ष, स्वभावसंपन्न अपने भगवान आत्मा का आस्रव-बंध से अंतर स्पष्ट कर, स्वयं को पर का अकर्ता-अभोक्ता सिद्ध कर, स्वयं में सदा तृप्त, संतुष्ट रहनेवाला बताया गया है।

तदुपरांत 'युद्ध में गृहस्थसुख' के अंतर्गत मिथ्यात्व के साथ अपना युद्ध बताकर, परिपूर्ण विजय/सिद्धदशा प्राप्तिपर्यंत का जीवंत चित्रण प्रस्तुत कर, अपने आदर्श कुटुंब और कौटुम्बिक नीतिओं का मनोहारी वर्णन किया गया है। तदनंतर 'विवाह रस' प्रकरण में तो बारात-गमन से लेकर वधूमिलन पर्यंत की समस्त क्रियाओं को मंच पर मंचित करने के समान उद्घाटित कर जीव को गुणस्थानातीत सिद्धदशा पर्यंत पहुँचा दिया है।

इसके बाद 'दशलाक्षणिक धर्म' का प्रकरण भी अपने आप में अनुपम है। इसमें उपमा और रूपक अलंकारों के माध्यम से 'श्वेतांबर/शुक्लध्यान संपन्न शुक्ल लेश्यावाले को ही मुक्ति' का प्रतिपादन किया है। 'अगारी साधु' के अंतर्गत अनगारी/गृह त्यागी साधु की स्वरूपलीनतामय अद्भुत गार्हस्थ्य क्रियाओं का वर्णन भी चित्ताकर्षक है तथा विरोधाभास अलंकार का अनूठा प्रयोग है।

'वन-विहार' के अंतर्गत अनंतानंत शक्तिसंपन्न अपने आत्मा को सघन वन के रूप में स्थापित कर, उसकी शक्तिओं तथा शुद्ध पर्यायों को वृक्षों तथा पत्तों के रूप में प्रतिपादित कर वनविहार का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तदनंतर आत्मीक रामायण में तो 'पद्मपुराण' में वर्णित 'सीता हरण से लेकर सीता मिलन' पर्यंत समग्र विषय-वस्तु को ही आध्यात्मिकरूप में आत्माराम पर घटित कर चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् 'स्ववस्तु वाटिका' के अंतर्गत अस्ति-नास्ति शैली में अपना स्वरूप बताते हुए, उसे प्राप्त करने के उपाय के रूप में भेदविज्ञान की महिमा गाई गई है।

तदुपरांत 'सम्यक्त्वी की अपूर्व सामायिक' के अंतर्गत सम्यक्त्व के साथ विद्यमान ज्ञान-वैराग्यशक्ति का प्रतिपादन कर 'समयसार कलश १३७' के आधार से सम्यक्त्वाभासों का निरूपण कर, सावधान रहने-हेतु मार्गदर्शन भी दिया गया है। तदनंतर 'आत्मीक बाह्यतप, अद्भुत कषाय', 'आध्यात्मिक अंतरंग तप' में बारह तपों का और भूमिकानुसार विद्यमान चार कषायों का सूक्ष्मता से अवलोकन कर, उन्हें आत्मिकरूप में प्रस्तुत किया गया है।

'गुफा में विश्राम' प्रकरण के अंतर्गत बहिरात्मदशा का त्याग कर, परमात्मदशा को लक्ष्य बनाकर मोक्षपथ में गमन करनेवाले साधक अंतरात्मा का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

तत्पश्चात् साधक के जीवन में आनेवाले चौदह गुणस्थानों को प्रयोगात्मक प्रक्रिया के रूप में भी प्रशस्त किया है। इस प्रकरण में न तो कर्मप्रकृतिओं के वर्णन से क्लिष्टता को स्थान प्राप्त है, न ही क्रियाकांडों की भरमार है और न ही व्यंगवाणों की चुभन है, वरन् शिवपथगामी जीव के जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं के रूप में इन गुणस्थानों का वर्णन किया गया है। गुणस्थान प्रकरण के नाम भी इसीप्रकार से दिए गए हैं जैसे मिश्रगुणस्थान का दिखाव, अविरत गुणस्थानी को निज-निधि-दर्शन आदि।

इसी के अंतर्गत पाँचवे से चौदहवे गुणस्थान की एक दश मंजिलेवाले महल के रूप में कल्पना कर, ग्यारह प्रतिमाओं को पहली मंजिल के ग्यारह भागों में विभक्त कर, उनका अति संक्षिप्त किंतु स्पष्ट शैली में विश्लेषण किया है। क्रमशः होनेवाले विशिष्ट आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ, उतार-चढ़ाव आदि का प्ररूपण भी प्रयोगात्मक पद्धति में ही किया गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सिद्धदशा को दशवीं मंजिल के ऊपर शिखर पर विराजमान शिवतिया के रूप में प्रस्तुत कर श्रेणी आरोहणवाले अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों को बारात के प्रस्थान के रूप में प्रस्तुत किया है। बारहवे गुणस्थान को महाभारत में अपनी वाण विद्या के बल पर विजय प्राप्त क्षीणमोही अर्जुन के रूप में प्रस्तुत कर, सत्यार्थ अरहंतदेव के रूप में तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है।

अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान का वर्णन करते हुए इन्हें परम ब्राम्हण, ब्रम्हचारी सिद्ध कर शिवनारी का वरण करनेवाले और षट्गुणी हानि-वृद्धि का व्यापार करनेवाले गृहस्थ के रूप में चित्रित कर विरोधाभास अलंकार का अद्भुत प्रयोग प्रस्तुत किया है।

इसके बाद होनेवाली सिद्धदशा को शिवतिया संगम का रूपक देकर निरूपित किया है।

इसप्रकार गुणस्थान और गुणस्थानातीत दशा का प्ररूपक यह प्रकरण पूर्णतया आगम के अनुरूप होने पर भी प्रतिपादन-पद्धति की अपेक्षा वैशिष्ट्य संपन्न, नाविन्यपूर्ण है।

'मेरा भाग्योदय' में अज्ञानी से ज्ञानी बनने की समग्र प्रयोगात्मक प्रक्रिया का उद्घाटन कर, उसे ही 'वीरपुत्र' की उपाधि से सम्मानित कर 'आत्मीक रेलगाड़ी' में आरूढ़ कर शिव नगर भेज दिया है।

'तत्त्व अंजन' और 'भेदज्ञान साबुन' से ज्ञाननेत्र-ज्योति बढ़ा, कर्म-कालिमा धोकर, गुणगणना' में मग्न हो सिद्धदशा को प्राप्त हो जाता है – इत्यादि रूप में साधकदशा का मनोहारी वर्णन कर तदुपरांत चौदह मार्गणाओं का वर्णन भी नाविन्यपूर्ण शैली में किया है।

चारों गतिओं में मैं एक शुद्धात्मा ही हूँ; इंद्रियमार्गणायुक्त हीनशक्ति वाला मैं नहीं हूँ; काय तो आकुलता में ही कारणभूत है; मैं तो अकाय, हूँ; योग में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

डगमगाहट है; वेद-भाव आकुलतामय ही हैं; कषायों की वंचकता से सावधान रहना; ज्ञान का माहात्म्य अद्भुत है; संयम स्वरूप-विकासक है; सामान्य अवलोकन करनेवाला दर्शन है; लेश्याएँ तो भवभ्रमण में ही कारण हैं; भव्य-अभव्य का विकल्प नहीं करना; सम्यक्त्व की झलक शिवसुखदायक है; संज्ञी-असंज्ञी का, आहारक-अनाहारक का विकल्प स्वभाव में नहीं है – इत्यादि रूप में वैशिष्ट्यपूर्ण पद्धति से १४ मार्गणाओं का वर्णन किया गया है।

यह सम्पूर्ण कथन व्यवहार नयाधीन है; शुद्ध निश्चयनय के विषय में ये सभी कुछ भी नहीं हैं इत्यादि निरूपण कर अंतिम चौवनवें प्रकरण द्वारा समग्र कथन का सार बताते हुए लिखा है कि 'अनुभवसुख ही सार है, शेष सभी असार संसार है। इसी में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को पारिभाषित करते हुए, उनके त्रित्व को व्यवहारनय का विषय बताकर, निश्चयनय से उनमें एक चैतन्य मात्र द्रव्य ही व्याप्त है – इस प्रतिपादनपूर्वक अंत्यमंगल के रूप में यह कहा है कि 'जो ऐसा निर्णय कर आत्म-स्थिर रहता है, वह सुखसागर के मध्य में स्थित मुक्ति द्वीप में पहुँच, अनंतकाल के लिए अनुभवानंद में लीन हो जाता है।'

इस ग्रंथ का समापन-परक वाक्य भी रहस्यपूर्ण है – 'इति श्री अनंत-सुखार्णवे अनुभवानंद का प्रकरण समाप्त हुआ'। – इस वाक्य का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है –

१. अनंत सुख-सागर में अनुभवानंद का प्रकरण समाप्त हुआ अर्थात् आत्मा तो अनंत सुख-सागर है; वह वचनातीत, मात्र अनुभवगम्य है। अनुभवगम्य आत्मा के अनुभव का आनंद भी अनुभवगम्य ही है, वचन-गम्य नहीं है; तथापि कुछ संकेत मात्र प्ररूपित करने का मैंने प्रयास किया था; वह यहाँ समाप्त हुआ है।

२. अनंत सुखार्णव नामक ग्रंथ में अनुभवानंद का प्रकरण समाप्त हुआ अर्थात् ऐसा भी हो सकता है कि उन्होंने 'अनंत सुखार्णव' नामक कोई महान ग्रंथ लिखा हो; प्रस्तुत ग्रंथ उसका एक अंश हो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो भी हो; अभी तो यह कथन संभावना मात्र ही है। अस्तु ।

इस ग्रंथ की एक और भी विशेषता है; वह यह कि अत्यल्प अपवादों को छोड़कर शेष सर्वत्र प्रतिपाद्य विषय को समाप्त करते हुए किसी न किसी रूप में ग्रंथ का नाम 'अनुभवानंद' उल्लिखित है।

इसप्रकार आत्म-अनुभवानंद की कामनायुक्त जीव को प्रस्तुत ग्रंथ मार्गदर्शन देने में पूर्णतया सक्षम है।

२. **परमात्मपुराण –** 'पुराण' शब्द कर्णगोचर होते ही हमारे मन में प्रथमानुयोग शैली में निबद्ध किन्हीं महापुरुष का चरित्र-चित्रण करनेवाला ग्रंथ अवतरित होता है। यद्यपि प्रस्तुत पुराण में भी महापुरुष का ही चरित्र चित्रित है; तथापि वह किसी एक सांसारिक महापुरुष का नहीं होकर प्राणीमात्र में विद्यमान शाश्वत परमात्मा या परमात्मा-दशा को प्राप्त सिद्ध भगवान का है। प्रथमानुयोग शैली में लिखे गए आध्यात्मिक ग्रंथों का यह अनूठा प्रयोग है। इसमें शिवद्वीप में राज्य करनेवाले परमात्मारूपी राजा का, उसके असंख्यप्रदेशोंरूपी नगरों में रहनेवाली गुणरूप प्रजा, ब्राम्हण आदि जातिओं, ब्रम्हचर्य आदि आश्रम व्यवस्था, संन्यासाश्रम में भिक्षुक के ऋषि आदि भेदों का, ज्ञानादि मंत्रिओं, सम्यक्त्व सेनापति, परिणति कोतवाल के भोग-विलास, सेवा आदि का राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, पारिवारिक आदि दृष्टिओं से मनोहारी वर्णन है।

प्रारम्भिक मंगलाचरण में मोक्षदशा के कारणभूत अनादि-अनंत भगवान आत्मा का स्मरण कर प्रतिपाद्य विषय की प्रस्तावना के रूप में मोक्ष को द्वीप के रूप में स्थापित कर, एक आत्मा के असंख्यप्रदेशों में द्वीप में स्थित असंख्य देशों की कल्पना की है। आत्मा में विद्यमान गुण और उनकी परिणति ही उन देशों में रहनेवाले नर-नारी तथा परमात्मा-रूपी राजा की प्रजा हैं। उन्हें ब्राम्हण आदि चार वर्णों में विभक्त कर, सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था तथा व्यक्तित्व के परिपूर्ण विकास के लिए ब्रम्हचर्य आदि आश्रम व्यवस्था तथा संन्यासाश्रम के अंतर्गत भिक्षुक के ऋषि आदि चार भेदों का वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनंत-अनंत समृद्धि और शक्तिसम्पन्न, शाश्वत विराजमान परमात्मा-राजा के राज्य में सब ओर सुख-समृद्धि का साम्राज्य है। दुःख का अंशमात्र भी नहीं होने से तथा सभी भरपूर वैभवसम्पन्न होने से निराकुलतापूर्वक भोग-विलास में निमग्न हैं। सभी अपना-अपना कार्य करने में पूर्ण दक्ष, सजग, सावधान हैं। वहाँ प्रत्येक गुण स्वयं की रक्षा करते हुए अन्य सभी का भी अति वात्सल्यभाव से रक्षक होने के कारण क्षत्रिय है; अपनी-अपनी विशेष योग्यतानुसार परिणमनरूप व्यापार-कर्ता होने से वैश्य है; सर्व व्यापक होने से ब्राम्हण है तथा अपनी पर्यायवृत्ति द्वारा सभी का सेवक होने से शूद्र है। इसप्रकार प्रत्येक गुण में चारों वर्णों की व्यवस्था बताकर, प्रत्येक को चारों आश्रमों में विभक्त किया है।

प्रत्येक गुण सर्वव्यापक होने से तथा अपनी परिणति के साथ रमणकर्ता होने से ब्रम्हचारी है; अपने-अपने सत्तागृह में स्थित होने से गृहस्थ है; अपने-अपने स्वरूप में विराजमान होने से वानप्रस्थ है तथा ऋषि, मुनि, साधु, यतिरूप भिक्षुक होने से संन्यासी है। इसी के मध्य में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा वस्तु की अनंतधर्मात्मक एक सत्ता को स्याद्वाद पद्धति द्वारा स्पष्ट कर, अनेक गुणों पर भिक्षुक के ऋषि आदि चारों भेद सतर्क घटित किए हैं। प्रत्येक गुण अपनी अनंत ऋद्धि/सामर्थ्य सम्पन्न होने से ऋषि, स्व-पद का साधक होने से साधु, अपने से विपरीत परिणति का नाशक होने से यति और अपने स्वरूप का प्रत्येक प्रकाशक होने से मुनि है – इस रूप में चारों भेदों को स्पष्ट करते हुए अगुरुलघुगुण के इस विश्लेषण में षट्गुणी वृद्धि-हानि का स्वरूप अपनी मौलिक प्रतिभा से स्पष्ट किया है। तदुपरांत परमात्मा राजा के कुछ पदाधिकारिओं के नाम गिनाकर, उनके कामों का आगे वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है; परन्तु आगे उस प्रतिज्ञा का निर्वाह हुआ दिखाई नहीं देता है।

तत्पश्चात् अनेकों गुणों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हुए गुण-परिणतिरूपी पत्नी के साथ गुणरूपी पुरुष द्वारा किए गए भोग-विलास का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी के मध्य में सत्ता पर नवरस घटित कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

यह बताया है कि ये नवरस इसीप्रकार से सभी गुणों में घटित कर लेना चाहिए। जैसे लवण/नमक रसयुक्त भोजन स्वादिष्ट लगता है, रससहित काव्य अच्छा लगता है; उसीप्रकार अपने-अपने अनंतरस से परिपूर्ण गुण ही शोभा पाते हैं; इसलिए यह रस का वर्णन किया है।

तदनन्तर क्रमशः वर्णित दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मंत्रिओं द्वारा की गई राजा की सेवा का वर्णन भी मनोहारी है। इसके बाद किया गया सम्यक्त्व सेनापति और परिणाम कोतवाल के कार्यों का वर्णन तो अद्भुत और चित्ताकर्षक है। तदुपरांत अपनी प्रियतमा रानी चेतना-परिणति के साथ परमात्मा-राजा के अद्वितीय, अनुपम भोग-विलास का वर्णन करते हुए ग्रंथ पूर्ण हुआ है।

३. सवैया-टीका – साथ में संलग्न, अति लघुकाय इस ग्रंथ में स्वयंकृत एक सवैया की विश्लेषणात्मक टीका द्वारा एक समयवर्ती पर्याय के अनेक विविधताओं सम्पन्न अनंत, अखंड कलात्मक, रसात्मक, स्वभावात्मक, प्रभावात्मक अंतरंग वैभव का व्याख्यान कर आत्मा की अनंत समृद्धि का विवेचन किया गया है।

ये तीनों ही ग्रंथ पाठक के मन को शाश्वत, अनंत वैभव सम्पन्न अपने भगवान आत्मा की महिमा से ओत-प्रोत करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

❖❖❖

आभिणिसुदोधिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि॥२०४॥
णाणगुणेण विहीणा एदं तु पदं बहु वि ण लहंते।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥२०५॥

गाथार्थ – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान यह एक ही पद है (क्योंकि ज्ञान के समस्त भेद ज्ञान ही हैं); वह यह परमार्थ है (शुद्धनय का विषयभूत ज्ञान सामान्य ही यह परमार्थ है) जिसे प्राप्त करके आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है।

ज्ञानगुण से रहित बहुत से लोग (अनेकप्रकार के कर्म करते हुए भी) इस ज्ञानस्वरूप पद को प्राप्त नहीं करते; इसलिए हे भव्य ! यदि तू कर्मों से सर्वथा मुक्ति चाहता हो तो नियत इस ज्ञान को ग्रहण कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयानुक्रमाणिका

विषय-वस्तु	पृष्ठांक
प्रकाशकीय	iii
अनुवादिका/संपादिका की ओर से	ix
दो शब्द	xi
ग्रंथकार और ग्रंथ-परिचय	xii
१. अगम दुर्ग	१
२. अद्भुत चोरी	३
३. भोजन-सत्कार	५
४. तृषा-शमन	७
५. मेरी महिमा	९
६. युद्ध में गृहस्थ सुख	११
७. विवाहरस	१५
८. दशलाक्षणिक धर्म	१८
९. अगारी साधु	२०
१०. वन-विहार	२२
११. आत्मीक रामायण	२३
१२. स्ववस्तु वाटिका	२६
१३. सम्यक्त्वी की अपूर्व सामायिक	२८
१४. आत्मीक बाह्यतप और अद्भुत कषाय	३१
१५. आध्यात्मिक अंतरंगतप	३४
१६. गुफा में विश्राम	३७
१७. मिथ्यात्व गुणस्थानी की दशा	३८
१८. सासादन गुणस्थानी को वंदना	४२
१९. मिश्रगुणस्थान का दिखाव	४५
२०. अविरत गुणस्थानी को निज-निधि-दर्शन	४७
२१. श्रावक का मोक्ष-महल में प्रवेश	५०
२२. प्रमत्त संयमी की अशक्तता/अल्पवीर्यता	५४
२३. अप्रमत्तविरत की भावना	५६

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

२४.	अपूर्वकरण की बारात	५८
२५.	अनिवृत्तिकरण-स्वयंवर	६०
२६.	सूक्ष्म-सांपराय की विजय	६३
२७.	उपशांतमोह की क्षणिकता	६४
२८.	क्षीणमोही अर्जुन का विश्राम	६५
२९.	सत्यार्थ अरहंतदेव	६६
३०.	अयोगकेवली	६८
३१.	शिव-तिया-संगम	७०
३२.	मेरा भाग्योदय	७२
३३.	वीर पुत्र	७४
३४.	आत्मीक रेलगाड़ी	७६
३५.	तत्त्वरूपी अंजन	७७
३६.	भेदज्ञान-साबुन	७९
३७.	आत्मीक हलवाई	८०
३८.	निजगुण गणना	८१
३९.	गतिमार्गणा में मैं ही हूँ	८४
४०.	इंद्रिय मार्गणा की ओछी/हीनशक्ति	८६
४१.	कायमार्गणा में आकुलता	८९
४२.	मैं अकाय हूँ	९१
४३.	योगमार्गणा में डगमगाहट	९२
४४.	वेदमार्गणा की आकुलता	९४
४५.	कषायों की बंचकता	९५
४६.	ज्ञानमार्गणा की महत्ता	९७
४७.	संयममार्गणा में स्वरूप-विकास	१००
४८.	दर्शनमार्गणा का अवलोकन	१०२
४९.	लेश्यामार्गणा में भव-भ्रमण	१०४
५०.	भव्याभव्य-विकल्प न करना	१०७
५१.	सम्यक्त्वमार्गणा की झलक	१०९
५२.	संज्ञी-असंज्ञी की कल्पना	१११
५३.	आहारकमार्गणा का विकल्प	११३
५४.	अनुभवसुख ही सार	११८

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

अनुभवानंद

अनुवादिका/संपादिका

ब्र. कल्पना जैन, सागर
एम.ए., शास्त्री

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में श्रीमती सुमनबेन रमणीकलाल कोठारी, मुम्बई ने १० हजार रुपये का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है।

यह वस्तु की मर्यादा है...

स्वभाव से अज्ञानी भी प्रभु है, पर्याय में भूल है। दूसरों के समझाने से समझे - ऐसा नहीं है और स्वयं स्वभाव की रुचि करे तो कोई उसे बदल दे - ऐसा भी नहीं है। पहले प्रतीति तो कर कि अन्तर्दृष्टि और लीनता के सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है। यही मिथ्यात्व के अभाव का उपाय है। व्यवहार के लक्ष्य से पार हुआ जावे - ऐसा नहीं है। वस्तु में वाद-विवाद नहीं है। सर्वप्रथम वस्तु की रुचि होना चाहिए। तूने अपनी भावना से मिथ्याभव बनाये हैं। पुण्य-पाप की लगन, व्यवहार का आदर और निमित्त की रुचि के कारण तू ध्रुवस्वभाव को भूल गया है, जिसके कारण मिथ्या भव उत्पन्न किये हैं। ऐसी बदफेल अर्थात् भव को उत्पन्न करने का भाव एक स्वभाव कल्लोल के प्रगटने से मिटता है। ज्ञायकस्वभाव की पर्याय प्रगटी तो मिथ्यात्व भाव मिट जाता है। यह वस्तु की मर्यादा है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

श्री परमात्मने नमः

कविवर शाह दीपचन्दजी कासलीवाल कृत

अनुभवानंद

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्री वीतरागाय नमः। अथ अनुभवानंद लिख्यते (अब अनुभवानंद लिखा जाता है)।

१. अगम दुर्ग – मोह-ज्वर के आताप से संताप को प्राप्त करता हुआ यह संसारी जीव क्षोभित-मन हो, निजस्वरूप की झलक को नहीं पाकर, परपद की दीप्ति में भ्रमण करता हुआ, उस विरुद्ध ज्योति से प्रदर्शित पदार्थ और उनके परिणमनों को, आताप को शांतिकारक जानकर उनके निकट जाता है; परन्तु वहाँ वह शांतता तो प्राप्त नहीं करता है; वरन् दाहज्वर को और अधिक बढ़ाकर अधिकाधिक आकुलित होता है। तीनलोक और अलोक का ज्ञाता-दृष्टा, शुद्धचैतन्यमय, अविनाशी, निर्विकल्प, परमानन्दस्वरूप को भुलाकर वह आज परपद में आरूढ़/आसक्त हो क्यों खेदित हो रहा है ? यही आश्चर्य है।

सिंह-शिशु/शेर का बच्चा अजों/बकरों के वृंद/समूह में भ्रमण करता हुआ अज/बकरे के समान आचरण क्यों कर रहा है ? यही खेद है। अपनी दृष्टि को परदृष्टिरूप कर पररूप अपना अनुभवन करता हुआ अपनी विपरीत मान्यता से स्वयं ही सिंहवृत्ति को छोड़कर क्षुद्र पशु के स्वभावमय हो रहा है। यदि अपनी मान्यता को पलट

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दे तो स्वयं सम्पूर्ण पशु-समूह का स्वामी सिंह ही है। सिंह पद की समस्त गुप्त/अव्यक्त शक्ति अपने अनुभव में आ जाने पर क्षणमात्र में ही सभय पद का उन्मूलन कर निर्भय हो जाए। स्वयं में स्वयं की शक्ति की मान्यता/स्वीकृति/प्रतीति करने से निराकुल रहते हैं; क्षुद्र-संगति में नहीं पड़ते हैं। अपनी (सम्यक्) मान्यता ही सुखदाई है और (विपरीत) मान्यता ही दुःखदाई है।

मैं ही सिद्ध निरंजन परमात्मा हूँ। मुझसे अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावकर्म; ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म और शरीर आदि नोकर्म – सभी भिन्न ही हैं। वे क्षणिक हैं, मैं अविनाशी हूँ। वे मूर्तिक हैं, मैं अमूर्तिक हूँ। वे दुःख-स्वभावी हैं, मैं सुख-स्वभावी हूँ। वे उपाधि/संयोगरूप हैं, मैं निरुपाधि हूँ। वे सकलंक हैं, मैं निष्कलंक हूँ। वे पराधीन हैं, मैं स्वाधीन हूँ। उनका और मेरा थोड़ा-सा भी मेल/संबंध नहीं है। जो उनकी संगति करता है/उन्हें अपना मानता है, वह सदोषी है तथा जो मेरी संगति करता है/मुझे अपना मानता है, वह निर्दोषी है। मेरी सम्पत्ति अविनाशी है, उनकी विभूति विनाशीक है।

मैं अपने निजात्मानुभव की भावना से परम तृप्त हूँ। मुझमें जन्म-जरा रोग व्याप्त नहीं होते हैं। कर्म-रिपु/शत्रु मेरा मुँह/स्वरूप नहीं देख सकते हैं। मैंने अपनी अनुभूति की भूमि में ही अपना अगम दुर्ग बनाया है। उसी में निवास करता हुआ मैं अपनी चिदनुभूति-रानी के साथ सुख से क्रीड़ा कर रहा हूँ। मुझे (बाह्य) भोजन, वस्त्र, आभूषण, सुगंध, लेप, तेल-फुलेल, शैया, आसन की आवश्यकता नहीं है। अपना सुधा-समूह, अपना भोजन है; अपनी निर्मल प्रदेशावली, अपना वस्त्र है। अपना ब्रम्हरूप शील, अपना आभूषण है। अपना ज्ञान, अपनी सुगंध है। अपनी तन्मयता, अपना लेप है। अपना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मवीर्य, अपना तेल-फुलेल है। अपनी स्वरूप-प्रगटता, अपनी शैया है। अपना निरावलम्बन स्वभाव, अपना आसन है। मुझे और मेरी चिदनुभूति सर्वांगिनी/रानी के लिए यही सामग्री संतोष और आनंद प्रदायक है।

मेरे दुर्ग में मेरे विरोधी अन्य किसी पक्ष का प्रवेश नहीं है। मैं अपनी अद्भुत शक्ति का स्वयं स्वामी हूँ। मैं सभी को देखता हूँ; परन्तु मुझे कोई नहीं देखता। यद्यपि मैं किसी के पास नहीं जाता हूँ; तथापि मेरे ही अनुपम शैया महल में लगे मेरे निर्मल आत्मदर्पण में वे सभी अपनी प्रत्येक समय की परिणतिओं के साथ स्वयं ही आ-आकर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मैं अपने से भिन्न अन्य जनों के साथ परस्पर एक-दूसरे को रागपूर्वक ग्रहण कर परपद में रत नहीं होता हूँ। जिस सुख को पाने के लिए मुझसे भिन्न अन्यजन तरसते हैं, उस आनन्द को पाकर में अनुभवानंदरूप रहता हूँ॥१॥

२. अद्भुत चोरी – यद्यपि मैं पहले अनादिकाल से मोह-मदिरा के तीव्र नशे में बेहोश हो रहा था; तथापि अब उस मद की किंचित् हीनता से सचेत होता हुआ यदि अपने ज्ञानानंदस्वरूप, अविनाशी, अखण्ड, त्रैलोक्य-भूप चैतन्यप्रभु को अपनी दृष्टि के सम्मुख नहीं देखता हूँ तो विह्वल हो जाता हूँ और उस वीतराग स्वस्वभाव में गुप्त स्वामी से राग प्रगट करने के लिए दौड़ पड़ता हूँ।

उसे पाने के लिए मैं जगत के जिस कृत्रिमरूप की प्रत्यक्ष चमक की दमक में जाता हूँ; उसमें ही जल के भ्रम में बालू-रेत को पाकर क्षोभित हो, अपने श्रेष्ठ इष्ट ईश्वर से मिलने की अधिकाधिक रुचिरूप तीव्र तृषा से बाधित हो जाता हूँ। अपने परम स्नेही की खोज में दौड़ते-दौड़ते मैं एक सम्यक्त्ववृक्ष की शीतल छाया में आकर विश्राम लेता हूँ। यहाँ बहुभ्रमण की थकान को मिटाकर जब क्षण भर विचार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता हूँ तो अपना/मेरा स्नेहपात्र अपने अनुपम प्रेम-रस में भिगोकर मुझे आनंदित करता हुआ, मेरी तृषा को बुझाता हुआ, मेरे अनुभव में मानों प्रत्यक्ष दिख रहा है – ऐसा प्रतीत होता है।

जगत के जो कृत्रिम-अकृत्रिमरूप मुझे थोड़ी देर पहले भयानक, विरस और दुःखदाई प्रतीत हो रहे थे; वे अब मुझे निर्भयरूप, सुरस/सरस और सुखदाई विदित होते हैं। जैसे नमक बिना रसोई के विविध व्यंजन अस्वादिष्ट, घृणास्पद और त्यागने-योग्य लगते हैं; परन्तु जब नमक सहित हो वही भोक्ता के अनुभव में आते हैं तो सभी सुन्दर, सुस्वादिष्ट, रुचिकर और उपादेय ज्ञात होते हैं; उसीप्रकार इस समय निजानंद रस के झलकते ही सम्पूर्ण हेय पदार्थ मुझे सुरस और उपादेय दिखाई देने लगते हैं।

सकल जग-वासियों को अपनी मति से नचा-नचा कर और स्वयं उनके साथ नाच-नाच कर इस जगत को एक नाट्यशाला बना देने वाले उन नटवाजों की ओर जब मैं अपनी इस चिर-अप्राप्त दृष्टि को उपलब्ध कर देखता हूँ तो उनके अंदर भी इस मन-अगोचर, परमपद-धारी, अविकारी, स्वच्छंद विहारी को छुपा हुआ अनुभव करता हूँ। वे राग-द्वेष-नटवाज मेरे सम्मुख आकर अपना स्वाँग दिखाते हुए आज मुझे अपनी सौम्य, सुन्दर, निरुपम मूर्ति दिखाकर, मेरे मन को चुरा लेने/आकर्षित कर लेने के कारण; वीतरागी, सर्वत्यागी होते हुए भी चोर की संज्ञा को प्राप्त होते हैं।

अब मैं भी इन चोरों से मिलता हूँ और जहाँ-जहाँ, जिस-जिसके पास मेरा स्वात्मधन गुप्त पड़ा है; उसे चुराने के लिए अपनी गुप्त भूषारूप परिणति के साथ उद्योग/योजना बनाकर, सर्व विभूति चुराकर अपने त्रिकोट के अंदर गुप्त भंडार में रखकर, उसे भोगकर सुखी होता हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यद्यपि मैं इस कार्य में मूषकवत्/चूहे के समान व्यवहार करता हूँ; तथापि अपने अचौर्यव्रत को कभी भी खण्डित नहीं करता हूँ। यद्यपि मैं स्वात्मधन चुराकर लाता हूँ; तथापि जहाँ से लाता हूँ, वहाँ वह धन एक परमाणुमात्र भी कम हुए बिना उतना का उतना ही रहता है। मेरी इस चोरी की यह कुछ अद्भुत शक्ति है। मेरे स्वामी इसे भली-भाँति जानते हैं तथा यह उनकी ही आज्ञा है कि तुम ऐसी चोरी करो, इससे तुम कभी भी अपराधी नहीं होगे।

अब आज मैं इस वृक्ष की शीतल, विवेकरूपी छाया में बैठकर और अपने इष्ट, परमेष्ठी, निरंजन, परम-ब्रम्हरूप स्वप्रभु का अनुभव कर सम्पूर्ण वासना से रहित हो अनुपम अनुभवानंद को प्राप्त होता हूँ॥२॥

३. भोजन-सत्कार – चैतन्य अभिराम, गुण-ग्राम/समूह आत्मा-राम का विश्रामरूप पद/स्थान अटल, अभय, अचल, अविनाशी और अमर्यादरूप है। इस पद की दीप्तिमान किरणावली भवावली रूपी तम/अंधकार को क्षणमात्र में विलुप्त कर देती है। इस पद के समक्ष (इस) पद-विमुख पदाभास लज्जित हो ठहर नहीं पाते हैं। निजधाम विहारी, अविकारी, सुखकारी इस पद के धारी अनंतकाल पर्यन्त भी इसमें रहते हुए, निज-पद-ममत्व का त्याग नहीं करते हैं।

इस पद के अभिलाषी जीव भव-वास से उदास हो अपने मोह-पाश को काटने के लिए उत्साहित हो आज अंतरंग भूमि में प्रवेश कर भेदज्ञान-खड्ग-तलवार लेकर चिरकाल से प्रविष्ट शत्रु-समूह का संहार करने के लिए प्रयत्नशील हुए हैं। इस खड्ग की दीप्ति देखते ही शत्रुओं का समूह कहाँ समा गया; कुछ पता ही नहीं लगा। वे रहें या जाएं; उनकी ओर के भय का विध्वंस कर निर्भय हो यह अनुभव-रस का प्रेमी, अपनी निर्मल अनुभूति-देवी का दर्शन कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन्मत्त हो, उसके अद्भुतरूप-रस का पान करते-करते ऐसा एकासन/स्थिर हो गया है, मानो एक स्फटिकमणि की पुरुषाकार मूर्ति ही हो।

इस स्फटिक मणिवत् पुरुषाकार मूर्ति की अपनी निर्मलता के कारण इसमें जो-जो पदार्थ प्रतिभासित होते हैं, वे सभी स्वयं अपना यथावत् रूप देखकर अपनी पर्याय के अभिमान के कारण अपने-अपने स्थल से हटकर कभी भी इस मूर्ति में नहीं आते हैं और यह उन्मत्त पुरुष भी दौड़कर उनकी ओर नहीं जाता है।

इस अंतरंग भूमि में रमनेवाले पुरुष के स्वाभिमान का अभिमान इस पुरुष को अन्य सभी की प्रीति से हटाकर एकाकी कर देता है; तथापि इस मुग्ध को उसका ज्ञान नहीं है। यह किसी की भी अपेक्षा नहीं करता हुआ, अपने अनुभव-रस के स्वाद में मग्न है।

यद्यपि यह उन्मत्त है; तथापि इसकी अनुभूति-देवी सदा सावधान है। इसकी खड्ग की चमक से लुप्त हुए शत्रु रह-रहकर इसे दबाने के लिए आते हैं। उनका मुख देखते ही अनुभूति-देवी इसे सावधान कर देती है। यह उसी क्षण उस भेदज्ञान-असि/तलवार को चमकाता है; जिससे शत्रु फिर गुप्त हो जाते हैं। इसप्रकार की उन्मत्तता इस उन्मत्त पुरुष को कैसा बना देती है– यह तो वह पुरुष ही जानता है या उसका निज निर्मलरूप जानता है। पर-पद को अपना माननेवालों के यह ज्ञान-गोचर नहीं है।

जो उन्मत्त पुरुष इसप्रकार रहने लगते हैं; उन्हें लोक के सावधान प्राणी छोड़ देते हैं; परन्तु यह किसी को नहीं छोड़ता है। यह तो सकल चेतन शक्तिवानों को अपने आनंद-घर में अनुभवरस का मिष्ट भोजन कराने के लिए निमंत्रण देता है और अपनी अनुभूति-देवी द्वारा यथा-योग्य स्वागत करा, एकरूप निर्मल सुखासन पर बिठा, परमामृत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान-रस-वैराग्य के अनुपम चैतन्यधातुमय प्यालों में भरकर, अपनी परमोपकारिणी-देवी द्वारा दिला, आप भी उसी क्षण ज्ञान-रस पी, परस्पर सुख-विलास प्राप्त कराके अपने आत्मीक घर को पवित्र करता है।

इस व्यक्ति को सम्पूर्ण जगत प्रिय है; परन्तु यह जगवासिओं को प्रिय नहीं है। इसकी निराली गृहस्थी किसी को दिखाई नहीं देती है; परन्तु यह वीरात्मा स्वाधीनता का उपासक हो, पराधीनता को दग्ध कर अपनी चिदनुभूति-देवी सहित धर्म-कल्पवृक्ष से मनोज्ञ इच्छित स्वानुभवरूप फल प्राप्त कर, अपनी अनादिकालीन क्षुधा को शमन करता हुआ, अपने स्वरूपाचरण-उपवन में क्रीड़ा कर अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥३॥

४. **तृषा-शमन** – चिरभ्रमण के खेद से थककर और भवाताप की तीव्रता से तृषा की उत्कटता/तीव्रता को प्राप्त कर विह्वल होता हुआ, संसार के संसरण में स्वभावगुप्त यह संसारी, ज्यों ही निर्मल, मिष्ट, स्वरसपूर्ण सरोवर को देखता है; त्यों ही आतुर हो शीघ्रता से अपने तन के अपने से विरुद्ध स्वभावधारी वस्त्रों को उतार कर, किसी अन्य की ओर देखे बिना नग्न हो स्व-रस-सरोवर में प्रवेश करता है।

शांत, मिष्ट, निर्मल, स्वरसपूर्ण स्वानुभव की वैराग्य-पवन द्वारा प्रेरित लहरें वहाँ जब उस पुरुष के तन को स्पर्श करती हैं, उसके प्रदेशों के अंदर अपनी शांतता प्रदान करती हैं; तब भवाताप की शांतता से उस पुरुष को जो निराकुलता प्राप्त होती है, उसे वही जानता है अथवा ज्ञानानंदी सिद्धपरमात्मा जानते हैं।

जब वह उस शुद्ध स्व-रस जल को अपने निर्मल विवेकरूपी अंजुलिओं में भरकर अपने-अपने स्वरूपाचलरूपी मुख के भीतर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षेपण करता है; तब वह पुरुष तृषा को शमित कर, अनुपम जल की अपूर्व मिष्टता का स्वाद लेते-लेते तृप्तिरहित हो, पीते-पीते संतुष्ट नहीं होता है; पीते-पीते कभी पेट नहीं फुलाता है।

इस जल का पानकर प्रफुल्लित वदन वह व्यक्ति अपनी शक्ति की व्यक्तता की झलक पाकर सचेत होता है और उस सरोवर में ही सतत् अवगाहन करने का संकल्प करता है। अपने तन को अति प्रसन्न देख और भव-वन में भटकते हुए अपने पूर्व साथियों से स्वयं को श्रेष्ठ मान, ज्यों ही वह अपने को परमात्मा, परम ब्रम्ह, अविकारी, मोक्षग्राम-विहारी, अतुल पराक्रमधारी अवलोकन करता है कि सहसा इस मान के अभिमान में उन्मत्त हो, सकल जगत को विस्मृत कर, द्वैतभाव को नष्ट कर, अद्वैत हो, निज ज्ञान-तन् में विराजित रह स्व-रस-सरोवर के अंदर उन्मत्त चेष्टा करने लगता है। सम्पूर्ण सरोवर को अपना नृत्य-स्थल बनाकर नाचता है।

यह निश्शंक सम्यक्त्वगुण का धारक, स्व-पद का वासी, नृत्य करनेवाला नृत्य करते-करते जब-जब रुकता है तब-तब अपने तन को पूर्वकाल की अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक विशुद्ध देखता है। अपनी परिपूर्ण शुद्धता का अभिलाषी यह नृत्य के प्रपंच में रंजित हो अपने धारावाही प्रयत्न से अपने उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ, जब स्वयं को परम शुद्ध अवलोकन करता है, तब अपने तन की और उस सरोवर के जल की आभा में कुछ भी अंतर नहीं देखता है। जल जैसा क्षीर समान निर्मल है, तन भी वैसा ही स्फटिक समान निर्मल है। दोनों की शुद्धता में तीनों लोक और अलोक एक ही समय में समा जाते हैं। ये त्रयलोक और अलोक अन्य-अन्य समयों में जैसे-जैसे अपने स्वरूप को बदलते हैं; वैसे-वैसे ही इन दोनों की निर्मलभूमि में प्रतिभासित हो जाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसारी रागी जीव अपने आशा-गर्त में जिन तीन लोकों को रखना चाहता है, परन्तु वे उसके गर्त में नहीं आते हैं; वे ही तीनलोक अपने बंधु अलोक सहित आज इस व्यक्ति के निर्मल-तन-दर्पण में प्रफुल्लित हो आ बसे हैं – यह एक महा आश्चर्य है।

यद्यपि यह तीनलोक का स्वामी हुआ है; तथापि यह इन तीनों लोकों में से एक अणुमात्र वस्तु को भी न तो छूता है, न उन्हें ग्रहण करता है और न ही छोड़ता है। यह इसी में कुछ ऐसी अपूर्वता है कि थाली सामने रखी है; पर खाता नहीं है। अहा ! यह जगत के इन तुच्छ ज्ञेयाकार पदार्थों का क्या स्वाद ले, जो क्षण-क्षण में स्वरूप परिवर्तित कर लेते हैं।

यह तो अपने आत्मीक रस का स्वाद लेता हुआ, उसी का सतत अनुभव करता हुआ, उसी को अपना सर्वस्व मानता हुआ, उसी रस के पुंज अथाह स्वभावरूप सरोवर में उन्मज्जित होता हुआ क्षणिक, पराधीन, विरस फलरूप आनन्दों से विलक्षण, नित्य अनुभवानंद को पाता हुआ विश्राम करता है।।४।।

५. मेरी महिमा – आज मैं कर्तापने के कटुक, विरुद्ध और निस्सार भव-विकार को त्याग कर, अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में कल्लोल करने के लिए उद्यत हो गया हूँ। मेरा बनाया भव-विकार मुझे ही विष-आहार जैसा प्रतीत होने लगा है। जिस विकार ने मुझे पराधीन कर बंधन में डाला, मेरी स्वतंत्रता का घात किया; उस शत्रुवत् प्रपंचधारी व्यवहारी से मुझे क्या प्रयोजन ? मैं चैतन्यरस का चैतन्यमई घट हूँ; मेरा उपादान और निमित्तकारण एक ही है। **मुझे त्रिलोक में विद्यमान किसी भी परमाणुमात्र से भी कोई प्रयोजन नहीं है।**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं कभी किसी को बनाता नहीं हूँ। मैं कभी किसी को बिगाड़ता नहीं हूँ। मैं स्व-स्वभाव में अविचलित रह, सदा निजरस का ही पान करता हूँ। मेरा क्रोध, मान, माया, लोभ; उनके पिता राग, द्वेष और उनके महापिता मोह से कुछ भी संबंध नहीं है। मैं शांतरूप हूँ, वे उद्वेगरूप हैं। मैं ज्ञानरूप गुण-निधान हूँ, वे गुण-विरुद्ध अवगुण-निवास हैं। मैं निरपराधी हूँ, वे अपराधवान हैं। मैं निर्बंध हूँ, वे बंध-सहित हैं। मैं एकाकी एकरूप हूँ, वे अनेकानेकरूप हैं। मेरा-उनका त्रिकाल में भी संबंध नहीं, मेल नहीं, स्पर्श नहीं है। मैं उनका कर्ता नहीं हूँ, वे मेरे कर्म नहीं हैं। मेरे निर्मल ज्ञान-कार्यालय में कर्म का शब्द ही नहीं है।

शुद्ध आहार-भोजी मैं, अपनी शुद्ध परिणति की सतत शोध कर रहा हूँ। मुझे मेरे ज्ञान-साम्राज्य का प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध में अनुरक्त मैं, जगत के प्रपंचरूप प्रबन्ध से असंबद्ध हूँ। मेरा ज्ञान-साम्राज्य, मेरी ही सतत सावधानी और परम पुरुषार्थ के बल से अटल है। यद्यपि मैं त्रिलोक-अलोक में (ज्ञान की अपेक्षा) व्यापक हूँ; तथापि निजक्षेत्र को नहीं छोड़ता होने से सदा अव्यापकरूप हूँ। मैं इन्द्रिय-ग्रामों की रचना से शून्य हूँ।

यद्यपि मैं निज परिणामरूप कर्म को करने से कर्ता हूँ; तथापि पर-कर्तृत्व के अभाव से सदा अकर्ता हूँ। यद्यपि मैं निज-परिणति-रमण के स्वाद का भोक्ता हूँ; तथापि पर-पदार्थों का स्वाद नहीं लेने से सदा अभोक्ता हूँ। यद्यपि मैं पर-वस्तुओं की प्रवृत्ति की इच्छा से रहित होने के कारण सदा कृतकृत्य हूँ; तथापि निजात्मीक स्वसमयरूप प्रवृत्ति में प्रवर्तन करता होने से सदा अकृतकृत्य हूँ।

अपने आत्मीक द्रव्य का धारी मैं यद्यपि अपने द्रव्य को सदा यथावत रखने के कारण नित्य हूँ; तथापि केवली-गम्य षड्गुणी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हानि-वृद्धि रूप समुद्र कल्लोवत् अगुरुलघुगुण के कारण सदा पर्याय द्वारा व्यय-उत्पाद को सहन करता होने से अथवा नित्य अपनी अवस्था को बदलता होंने से अथवा मेरे निर्मल ज्ञानदर्पण में प्रतिसमय परिवर्तनशील ज्ञेय पदार्थों के ज्ञेयाकारों की अनित्य स्थिति झलकने के कारण, उस झलकन को धारण करता होने से अनित्यरूप हूँ।

यद्यपि मैं केवल ज्ञान-तन का धारी होकर अपने जाति स्वभावधारी केवलज्ञानिओं से प्रत्यक्ष और सम्यग्ज्ञानिओं से परोक्षरूप में देखने-योग्य होने से दृश्य हूँ; तथापि निजानुभव-रहित छद्मस्थ अज्ञानिओं द्वारा सदा ही अदृश्यरूप हूँ। मेरी शक्ति निराली है। मेरे ही अनुभव ने मेरी शक्ति की व्यक्तता की है। अविकारी, साम्य-प्रचारी, सुखकारी, परमपदधारी, व्यवहार से पाँच नामवाले परमेष्ठी की व्यक्तता; मेरे ही अनुभव की अपूर्व महिमा है।

जो कोई मुझे विभाव-भावों और परद्रव्यों का कर्ता कहता है, वह स्वयं अज्ञानी, अनुभव-रस-रहित, विरस का स्वादी, मोह-व्याधि से पीड़ित और परमानी है। जिन्होंने आत्म-बाग लगाया है और उसमें सुगुणरूपी सुगन्धित पुष्पों को उगाया है; वे आत्म-मोही कभी भी मुझे पर का कर्ता नहीं कह सकते हैं। मैं आज अपने स्वतंत्र बल के अभिमान में उन्मत्त हो, अपने आत्म-वन के अंदर क्रीड़ा करता हुआ, स्वात्म-गुण-पुष्पों की सुगंध को लेता हुआ और निज परिणतिरूपी सर्वांगिनी के साथ सैर/भ्रमण करता हुआ, पर आनन्दों से अतीत, अनुभवानन्द का स्वाद लेता हूँ।।५।।

६. युद्ध में गृहस्थ सुख – जिसने अपने तीव्र पराक्रम से तीनलोक के संसारिओं को जीतकर, अपनी विजय का डंका बजाया है; जो अपने त्रिलोक-विजयी-अभिमान की मदिरा पीकर अपना पेट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फुलाता हुआ युद्धस्थल में आकर खड़ा हो गया है; उस शत्रु को जीतने के लिए आज मैं अपराजित-भेद-ज्ञानरूपी धनुष को हाथ में लेकर खड़ा हो गया हूँ। मेरे धनुष की टंकार के सामने कोई भी शक्तिशाली नहीं टिक सकता है।

मेरे भेद-ज्ञान-धनुष से निकला हुआ वीतराग-भावरूपी वाण जैसे ही उस शत्रु की ओर जाता है कि वह मेरे सामने से दूर हो जाता है। मेरे वाण रुके कि पुनः वह प्रबल शत्रु मेरे सामने आकर, अपनी कठोर दृष्टि से मुझे घूरने लगता है; परन्तु मुझे इसका कुछ भी भय नहीं है; क्योंकि मैं तो जानता हूँ कि मैं अजर, अमर, अखंड और स्वाधीन हूँ। मेरे अनंतानंत साथी, भाई-बंधु भी मेरे ही समान अनंत बलशाली हैं। एक यह क्या है ? इसके समान अनंतानंत शत्रु भी आ जाएं तो भी वे मेरा क्या कर सकते हैं ? कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

इसका वश उन्हीं पर चलता है, जो अज्ञान मंदिर में बैठे-बैठे अपनी इन्द्रियों की सेवा किया करते हैं तथा मन-मोहन-नटवाज द्वारा चलाए जाने पर चलते हैं, बैठाए जाने पर बैठते हैं, दौड़ाए जाने पर दौड़ते हैं, रुलाये जाने पर रोते हैं, हँसाए जाने पर हँसते हैं, खिलाए जाने पर खाते हैं, सुलाए जाने पर सोते हैं, बहकाए जाने पर बहक जाते हैं।

तीनलोक में चारों गतिओं के प्राणिओं की प्रायः यही दशा है। प्रायः सभी अपने बल को भूलकर बेहोश हो रहे हैं; इसीलिए यह शत्रु उन सभी को जीतकर मान के पर्वत पर चढ़ा हुआ है; परन्तु मैं जिस मान के पर्वत पर आरूढ़ हूँ, वह इस शत्रु के तुच्छ पहाड़ से कहीं अधिक ऊँचा है। यह शत्रु मोहांध हो यह नहीं देखता है कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं नीचे स्थान पर हूँ और बिना सोचे-विचारे ही मेरा सामना किए जा रहा है।

मैंने भी अब स्व-आचरणरूपी वाणों के समूह को सम्हाल लिया है। अब मैं इसके ऊपर घनघोर मेघ-वृष्टि के समान इन वाणों की बौछार करता हूँ; जिससे यह डरकर अवश्य ही भागेगा और फिसल कर पर्वत से नीचे गिर जाएगा – ऐसा विचार कर निरन्तर अंतर्मुहूर्त पर्यन्त जो मैंने वीतराग-वाणों की बौछार की तो यह बेचारा इधर-उधर मार्ग खोजता हुआ मेरी दृष्टि से बाहर चला गया; परन्तु जैसे ही मैं विश्राम कर लेने के लिए थोड़ा रुका तो यह निर्लज्ज पुन: सामने आ धमका है।

बात उचित भी है मैं तो पंचम गुणस्थानरूपी रेजिमेंट का सिपाही हूँ। मेरे वाणों में उतना बल नहीं है, जितना कि श्रेणी आरूढ़ लेफ्टिनेंटों के वाणों में होता है; परन्तु मैं भी अब निष्क्रिय हो नहीं बैठूँगा। मैं तो बारम्बार इसको वाण मारता ही रहूँगा। मेरा यह अभ्यास ही मेरी उन्नति करेगा और मैं यथाशीघ्र अवश्य ही श्रेणी आरूढ़ हो, तीव्र वाण चलाकर, इस शत्रु को मार-मारकर निर्बल कर दूँगा। बारहवीं श्रेणी (बारहवें गुणस्थान) पर पहुँचते ही मैं इसे ऐसी अर्धमृतक अवस्था में पहुँचा दूँगा कि यह अपना सम्पूर्ण अभिमान और सम्पूर्ण बल भूलकर अपनी निर्बल आँखों से मात्र मेरी ओर देखता ही रह जाए। चौदहवीं श्रेणी (चौदहवें गुणस्थान) में पहुँच जैसे ही मैं अपने अनंतगुणरूप सेना का स्वतंत्र कमाण्डर, इन्चीफ सेनापति हुआ कि इधर इस शत्रु का भी प्राणांत हो गया।

मुझे ज्ञात है कि यह वैक्रियिकरूप धारी विविधरूप धारण कर अनेक जीवों को सताता है। यह अपनी अनादि-अनंतशक्ति का तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग करेगा ही करेगा। करे ! भले ही करे !! दुर्भाग्यशालिओं पर ही इसका आक्रमण होगा। मैं तो समझ गया हूँ। मैं तो इसकी रग-रग से परिचित हो गया हूँ। मेरा-इसका आमना-सामना तो अब कुछ ही दिनों के लिए है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं एक दिन इसे मारकर ऐसा गिरा दूँगा; जिससे यह अनंतकाल पर्यन्त भी मेरा सामना करने के लिए खड़ा नहीं हो सके।

मुझे अभी भी आनंद है। यह आस्रव नामधारी शत्रु मेरा कुछ भी बुरा नहीं कर सकता है। यद्यपि मैं अभी इस शत्रु के साथ युद्ध कर रहा हूँ; तथापि अपनी अपूर्व शक्ति के प्रादुर्भाव से अपने अनुभवरूप व्यापार को करता हुआ स्वात्म-ज्ञान-धन का अत्यंत न्यायपूर्वक उपार्जन भी कर रहा हूँ।

वीतरागता मेरी माता है, सम्यग्ज्ञान पिता हैं, मेरी अनुभूति मेरी पत्नी है, विवेक पुत्र है तथा दया पुत्री है। मैं अपने धन से अपनी पत्नी द्वारा आत्म-रस-गर्भित विविध व्यंजनों को बनवा कर, अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब को तृप्त करता हुआ, स्वयं भी उनका सेवन कर संतुष्ट हो, अपने परिवार की एकता और सुमति का आनन्द लेता हुआ परम आल्हादित होता हूँ। मेरा कुटुम्ब लौकिक रीति का पालन करता हुआ भी पारलौकिक परम ब्रम्हस्वरूप स्वधर्म सेवा से विमुख नहीं है।

जिस कुटुम्ब में धर्म और कर्म – दोनों होते हैं, वही कुटुम्ब, कुटुम्ब है; अन्यथा तो पाप-मंदिर और नरक-निवास है। गृहस्थी के अद्भुत सुख को भोगता हुआ और परमात्म-स्वरूप महामुनिओं को शुद्ध परमामृत-नैवेद्य का आहार-दान देता हुआ, मैं अपने जन्म को कृतार्थ मान रहा हूँ। मैं मोक्ष-अवस्था का साक्षात् साधक हूँ। मुझे इन्द्रियाधीन पराधीनता नहीं है। मैं तो प्रत्येक प्राणधारी की स्वतंत्रता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का पक्षपाती हूँ। मुझे मेरी स्वतंत्रता, स्वाधीनता ही निराकुल अपूर्व और निर्बंध अनुभवानंद का अनुपम सुख प्रदान करती है॥६॥

७. **विवाहरस** – परमामृत के प्रवाह से परिपूर्ण, स्फटिक समान निर्मल, स्वच्छंद चिज्ज्योति-विलासी, अविनाशी, अत्यानंदधाम-प्रवासी, कर्म-राहु-ग्रसन-रहित, विभाव-मेघाडम्बर-विरहित, परिणमन-विकास-सहित ज्ञानरूपी चंद्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाश में उदित हुआ है। इस अद्भुत चंद्र की चाँदनी के सामने जिधर देखता हूँ, उधर मुझे पीतत्व-पीतत्व, शुभ्रत्व-शुभ्रत्व ही प्रतीत होता है। कहाँ गए वे राग और द्वेष; जिनके अधीन हो मैं किसी को शुभ और किसी को अशुभ देखता था।

धन्य है आज का समय!! जिन दुष्टों ने मुझे कभी पापी और कभी पुण्यात्मा का नाम देकर अनादिकाल से अनंत दुःख दिए हैं; उनकी शकल-सूरत आज मैं नहीं देख रहा हूँ। जब मैं अत्यधिक ध्यानपूर्वक देखता हूँ तो अपने चन्द्रमा से भिन्न अचेतन अवस्था में पड़े हुए; स्पर्श, रस, गंध, वर्ण सम्पन्न पुद्गल के एक समूह मात्र को देखता हूँ।

इस समूह का स्थूल से स्थूल सुमेरु पर्वत-सदृश अंश अथवा सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु-समान अंश मेरे चन्द्रमा के स्वभाव से सर्वथा भिन्न है। इस पुद्गल समूह के किसी अदृश्य-विभाग को मैं अपने ही अज्ञान से पहले पुण्य और पाप के नाम से पुकारता था; वही विभाग आज मेरे ज्ञान-चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में एक नाम से और एकरूप प्रतिभासित हो रहा है।

मेरे चन्द्रमा का विमान उज्ज्वल, निर्बाध और चिन्मूर्तिमयी है। पुद्गल-समूह का कोई भी विभाग उसे मलिन, आच्छादित और विकारी नहीं कर सकता है। ऐसे चन्द्रमा से विमुख होकर जो पर-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुद्गलों को; धन, धान्य, स्त्री, कुटुम्ब आदि को अपना बनाते हैं; उनकी संगति से अपना महत्त्व मानते हैं, वे इन्द्रियाधीन प्राणी कर्म-पाश से बँधे हुए, बंध-मार्ग से संसरण करते हुए, संसारी, व्यवहारी आत्मज्ञान को भूलकर, परमपद के पथ से विपरीत चलकर, आकुलता का असह्य कष्ट प्राप्त करते हैं।

अपने चन्द्रमा को देखता हुआ आज मैं निराकुल हो परम-सुख प्राप्त कर रहा हूँ। अनादिकाल से अनुभव-रस को नहीं पाने के कारण मैं तृषा शांत नहीं कर सका था; पर आज इस चन्द्रबिम्ब से झरते अमृत को पीकर परम तृप्त हो रहा हूँ। इस अनुभव रस की मिष्टता में पुष्टता भी विद्यमान है। सांसारिक संकल्प-विकल्पों में गमनागमन के कारण जो मेरा तन दुर्बल हो रहा था; वह आज इस अनुभव रस को पीकर पुष्ट और बलवान हो रहा है। विभाव-गुणों की संगति के कारण, मेरे तन की जो आभा क्षीण हो गई थी; वह आज इस अमल रस का पान करने से प्रतिसमय वृद्धि को प्राप्त हो रही है। तन की क्षीणता के कारण मेरे चक्षुओं में देखने की शक्ति मंद और विकृत हो गई थी; तन की इस पुष्टता ने आज मेरे चक्षुओं को तीव्र और अविकारी बनाकर मेरा महान उपकार किया है।

मैं इन चक्षुओं से जिधर देखता हूँ, उधर ही वीतरागता का प्रसार पाता हूँ। जगत में ज्ञेयपदार्थ अनंत होने पर भी मेरी दृष्टि में कोई भी नहीं समाते हैं। ये सभी मुझे एक अचेतन के पिंडरूप में ज्ञात होते हैं। मेरी दृष्टि की समानता और अविकारता उन पदार्थों से अविमोहित रह, अपने चैतन्य के अभिमान का कदापि त्याग नहीं करती है। इस निर्मल दृष्टि और निर्मल तन को धारण कर आज मैं शिव-कन्या को वरने के लिए उद्यमी हुआ हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपने विवेक-दूत को भेजकर शिव-कन्या के साथ सगाई तो मैंने पहले ही कर ली थी। अब तो (विवाह के लिए) भेदज्ञान-अश्व पर आरूढ़ हो, उत्तमक्षमादिं दशधर्मरूप बरातिओं को साथ लेकर, सोऽहं-सोऽहं (वह मैं, वह मैं) रूप वादित्रों (बाजों) की ध्वनि को प्रगट करता हुआ, स्याद्वादात्मक जिनवाणी की विजयरूप पताकाओं (ध्वजाओं) को लहराता हुआ, निर्मल भावरूप श्वेत रेशमी वस्त्रों को पहिन, मोह-विजयरूप मौंर (कलगीयुक्त मुकुट) को बाँध, मंगलगान गानेवाली आध्यात्मिक ग्रंथरूप भजन-मंडली के साथ, अनुपम वैराग्य-रस की मनोहर छटा को बिखेरता हुआ मैं श्री शिवमती के द्वार पर आ गया हूँ।

यहाँ श्री शिवदेवी की जननी वीतराग-विज्ञानता अपने घर के द्वार पर मेरे ऊपर मांगलिक परिणामरूपी अक्षतों का क्षेपण करती है और निर्मल ज्योति को जगाकर/प्रज्वलित कर मेरी आरती करती हुई योग्य स्वागत करती है। समुचित समय पर भेदज्ञान-अश्व से उतरकर, आत्मज्ञानरूप शिवमती के मोह में मस्त मैं उसके निर्मल शुद्ध स्वभावरूप आँगन में आकर, शांतता की स्वरूपवती वेदिका की छाया के नीचे सुखासनपूर्वक विराजमान हो जाता हूँ। मेरी भावी पटरानी मेरे दक्षिण भाग में आकर सुशोभित होती है।

सकल लज्जा को छोड़ उसकी निर्मल दृष्टि और मेरी भी निर्मल दृष्टि सहसा ज्यों ही मिलती है; त्यों ही एक अतीन्द्रिय आनंदरस की धारा हृदय में प्रवाहित होने लगती है। शिवदेवी तत्काल मेरे कंठ/गले में स्वानुभव की सुन्दर पुष्पमाला क्षेपण करती है। शिवदेवी का पिता वीतराग-विज्ञानता का स्वामी चैतन्य-प्रभु और उसके समस्त सद्गुणरूपी सकल संबंधी मुझे अपनी कन्या-प्रदान करने की इच्छा प्रकाशित करते हैं। मैं परम शांतता और परम कोमलता से इस अपूर्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लाभ को ग्रहण करने की स्वीकृति दे देता हूँ। वे पुनः कहते हैं – तुम मेरी कन्या का स्वधर्म समझकर प्रतिपालन करना। मैं इसके उत्तर में स्वधर्म से पालन करने की भी स्वीकृति दे देता हूँ।

स्वीकृति प्राप्त कर समस्त सभागण आनन्द से प्रफुल्लित हो, शिवदेवी के साथ मेरा विवाह होना योग्य समझकर, श्री सिद्धात्मस्वरूप की भाव-पूजा का समारंभ और आरंभ कराते हैं। इस पूजा में ध्यानाग्नि जलती है, कर्म-ईंधनों की आहुति देकर होम होता है। अंत में उस निर्मल वेदिका के मध्य विराजित परम सिद्धस्वरूप के चहुँ/चारों ओर अंतिम गुणस्थानरूप सप्त प्रदक्षिणाएँ करके वह शिवदेवी आज मेरी पटरानी हो जाती है।

मैं उसे पाकर अत्यंत आनन्द-मग्न हो गया हूँ। मेरा स्वभाव उससे तन्मय हो गया है। मैं अपनी प्रिया शिव-सुंदरी के भोग का अनुपम विलास लेता हुआ, समस्त क्षणिक आनंदों से अतीत अनुभवानंद के परम विशाल सुस्वाद को ग्रहण करता हूँ।

८. दशलाक्षणिक धर्म – दर्शन-विशुद्धिधारी, अविकारी, निर्बंध दशा-विस्तारी, परम पूज्य परमेश्वर आत्माराम विहारी चैतन्य भूपति/राजा आज अपने अनंतगुण-समूहरूप परिवार को साथ ले, शुद्ध भावरूप जिनमंदिर में प्रवेश कर श्री परमात्मदेव का दर्शन प्राप्त कर आल्हादित हो गया है।

जिनके तेज के सामने अनंत कोटि सूर्य भी तिमिराच्छन्न के समान प्रतिभासित होते हैं; जिनकी शांत ज्योति के सामने अनंत कोटि चन्द्रमा भी नक्षत्रवत मंदकांति-युक्त प्रतिभासित होते हैं; जिनकी निर्मलता और शुद्धता के समक्ष स्फटिकमणि, मलरहित जल और सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी अहमिन्द्रों के शुक्ललेश्या युक्त परिणाम –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये सभी मिलकर भी साधारण भासित होते हैं; उन शांत, मनोज्ञ, परमोत्कृष्ट प्रभु के दर्शन प्राप्त कर आज यह संतृप्त हो गया है।

यह दिगम्बर जैन मुद्रा उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मरूप आभरणों से सुशोभित, रत्नत्रय जड़ित एकाकार ज्ञानरूप मुकुट से विराजित, शिव-रमणी-रमण के रागरूप रक्तमुख रंध्र/लाल ओंठों से उल्लसित, ज्ञान-दर्शनरूप निर्मल चक्षुओं से दीप्तिमान, शुद्ध श्वेताम्बर मुद्रारूप ही प्रकाशित हो रही है। इस मुद्रा का मोही यह चैतन्य-भूपति अभेद/चिंता/चिंतवन में पड़ समुद्र की लहरों के समान आचरण कर रहा है।

इसका दृश्य दर्शक को अद्भुत आनंद प्रदान कर रहा है। यद्यपि इसके स्वरूप का घात करने के लिए अनंत कर्म वर्गणाएँ इसके निकट आती हैं; परन्तु यह क्रोधित न होता हुआ अपने आत्मरूप उत्तमक्षमा गुण में तल्लीन है। अनंत अनुपम गुणों का स्वामी होकर भी मानकषाय रहित, परम मार्दव अधिकारी इसकी भावना करनेवाले के लिए यह सुखकारक है। यह अपनी सरलता में तन्मय हो, कपट-रहित, पर-वस्तु ग्रहण से विरागी, आर्जव गुणधारी, समता विहारी हो रहा है। सत्य-स्वभाव का धारक यह, असत्यता का निवारण कर, परम यथार्थ सम्यक्त्वगुण में विराजमान, सतत सत्य-प्रचारक, सत्य का अधिकारी हो रहा है। द्रव्य-भाव मल का त्यागी, आत्म-शुचिता में सर्वांग निमग्न वीतरागी, निर्मल चैतन्य-सरिता में स्नान करनेवाला यह परम शौचगुण सम्पन्न हो रहा है।

पर-धर्म से अपनी शक्तिओं को संकुचित कर, पर-मार्ग को छोड़ कर, एकाकार तन्मयता में निजधर्म को धारण कर यह उत्कृष्ट संयम धर्म का प्रतिपालक हो रहा है। अपने चारों ओर शुद्धोपयोग-अग्नि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जला, निज आत्मा को तपाकर, पर-ताप से रहित, स्वगुण-सहित यह परम तपधर्म में तन्मय हो रहा है। भव-विकार-त्यागी, परमाणु मात्र से विरागी, निज-धन का अनुरागी, आत्म-विश्रामकारी यह परम त्याग धर्म में सावधान हो रहा है।

षट् द्रव्यमय लोक का ज्ञाता, निजद्रव्य में विख्यात, नित्य निज को ही अपनानेवाला यह परम आकिंचन्य पदधारक हो रहा है। परम ब्रम्हपद का भोग करनेवाला, शिव-रमणी के साथ संयोग करनेवाला, पर-स्थान में आचरण का त्यागी, निजब्रम्ह में आचरण करनेवाला यह ब्रम्हचर्य धर्मानुयायी हो रहा है।

इन दशधर्मों को सम्हालता हुआ चैतन्य-भूपति साक्षात् धर्म-मूर्ति ही प्रतीत हो रहा है। इस धर्म-मूर्ति को देखकर, अधर्म को भूलकर, निजधर्म में अनुरागी हो दर्शक इस चैतन्य-भूपति की सेवा करने के लिए उद्यत हो गया है।

जो कुछ समय पहले विषय-वासना के क्षणिक सुख में आनन्द मानता हुआ इच्छित विषयों की कामना के वश हो संसार-भ्रमण करने में उत्साहित था; वही अब अनादि भूल को मिटाकर, निजस्वरूप की साधना द्वारा निज आत्म-ज्ञानमय साधकदशा को प्राप्त कर, स्वाधीन आनंदमय स्वाद का रसिक हो, अपनी पूर्ण रुचि के बल से उपाधि-जन्य आनंदों से अतीत अनुभवानंद का सम्यक् स्वाद ले रहा है॥८॥

९. अगारी साधु – सप्तभय से रहित, स्व-कुल-मानावलम्बी, स्व मर्यादा-प्रवाही, स्व-स्वभाव-अनुरागी, सुधा-समूह आत्म-साधु, आत्म-व्यक्तता के साक्षात् साधन में उन्मत्त हो, त्रिलोक को विस्मृत कर, मनोहर आत्म-बाग के अंदर रमण कर रहा है। मैं ज्ञाता-दृष्टा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्य स्वरूप हूँ। मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। स्वरूपानंदी मेरा इष्ट है। आत्म-साधु की यही अविचल श्रद्धा, यही गाढ़ रुचि, यही सच्चा लोभ, इसका परमप्रिय मित्र सम्यग्दर्शन है। स्वरूप की शुद्धता स्व-स्वरूप परिणमन से ही प्राप्त होती है।

त्रिलोक प्रभु अविनाशी सिद्धात्मा मेरा ही वास्तविक रूप है। षट्-द्रव्यमय इस लोक में जीवद्रव्य उपादेय और अन्य ज्ञेय तथा हेय हैं; संशय, विमोह, विभ्रमरहित यह सच्चा ज्ञान ही मेरा प्रिय सहोदर सम्यग्ज्ञान है। इन्द्रिय और अनिन्द्रिय विषय-वासनाओं से दूरवर्ती; काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, राग, द्वेष आदि विभावों से विलक्षण; एकाकार, सामान्य, स्व-संवेदनज्ञान में लीन तथा परम पवित्र आत्म-विशुद्धता में मग्न स्वसमयावरोही ब्रम्हमय आचरण मेरा सद्गुरु सम्यक्चारित्र है।

इस रत्नत्रयस्वरूप परमधर्म का साथी प्रफुल्लित वदनवान आत्म-साधु, आत्म-प्रभावना के लिए सकल आत्माओं की समाज में उपस्थित हो, क्रोध-राक्षस की विपक्षिणी उत्तमक्षमारूप सुन्दर देवी की उपासना कर, समाज को एक गुणस्थान में विराजमान कर सभी के साथ स्वसुधा रस निर्मित अद्भुत पक्वान्न और मिष्ठान्न का भक्षण कर, परम वात्सल्य और प्रभावना अंग का वर्धक हो रहा है।

इसप्रकार की व्यावहारिक गार्हस्थ्य क्रिया इस दिगम्बर साधु को कैसे रुचिकर है ? यही एक आश्चर्य है; परन्तु जहाँ रत्नत्रय-ज्योति का अनुपम-प्रकाश है, वहाँ कुछ आश्चर्य नहीं है। वहाँ तो प्रतिसमय पराधीनता रहित, स्वाधीन चिद्विलास का प्रसार है।

मैं ऐसे अगारी और अनगारी साधु के दर्शन कर परमतृप्त हो गया हूँ और देखते ही देखते विपरीत पथ को छोड़कर, सम्यक् पथ में आ,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनादि विस्मृत, सर्वथा उपादेय अनुभवानंद का स्वाद लेते हुए परम संतोष को प्राप्त हुआ हूँ। आज मेरा दिन सम्यक् क्षमावनी से परिपूर्ण है। मेरे अंतरंग में जैसी परमोत्कृष्ट क्षमा है, वैसी ही सभी जीवों को उपलब्ध हो – मेरी यह वास्तविक दया भी मुझे अनुभवानंद दिए बिना नहीं रहती है। स्व-स्वरूप का अनुभव धन्य है। जो इसके मोही हैं, वे ही सम्यक् मोही और आनंदरूप हैं॥९॥

१०. वन-विहार – उत्तम संयमधारी, निर्जन-स्थान-विहारी, स्व-परोपकारकारी, परम सज्जन अंतरात्मा आज परमात्म-बाग में विहार करता हुआ जब विचार करता है; तब स्वयं को सर्व से शून्य देखता है। उस समय विभाव-भावों की तरंग आती नहीं है, आत्म-रहित अन्य द्रव्यों की परिणति उसमें समाती नहीं है तथा द्वैतभाव की झलक रंचमात्र भी दिखाई नहीं देती है। इस एकान्तता का अनुरागी यह अपने विहार में अद्भुत गुणों का विकास देख रहा है।

कहीं अनंतज्ञान है तो कहीं अनंतदर्शन; कहीं अनंतवीर्य है तो कहीं अनंतसुख; कहीं क्षायिक सम्यक्त्व है तो कहीं परमधैर्य; कहीं निराकुलता है तो कहीं निरावलम्बत्व; कहीं वीतरागता है तो कहीं शिव-नारी से संयोगता; कहीं अनंत लाभ है तो कहीं अनंत भोग; कहीं इन्द्रिय-भाव-वियोगता है तो कहीं अतीन्द्रियभाव-प्रगटता; कहीं जगत-विस्मरणत्व है तो कहीं जगत-स्मरणत्व; कहीं त्रिलोक-ज्ञाता है तो कहीं त्रिलोक-शून्यत्व; कहीं उत्तम दया है तो कहीं उत्तम ब्रम्हचर्य; कहीं उत्तम शौच है तो कहीं उत्तम आकिंचन्य; कहीं परद्रव्य-रस-रहितता है तो कहीं स्वद्रव्य-रस-प्रवाहितता इत्यादि गुणरूपी वृक्षों की शोभा और सुंदर सुगंध को लेता हुआ यह अंतरात्मा एक परम विस्तीर्ण निर्मल धर्मध्यानरूपी वृक्ष की छाया में विराजमान हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस वृक्ष के उत्तम मार्दवरूपी अत्यंत मृदु/कोमल और मनोहर पत्रों का दृश्य इस अंतरात्मा की ज्ञान-चक्षुओं को अत्यधिक शांत-शीतलता दे रहा है। उत्तम सत्य की सुगंधित पवन इस वृक्ष से टकराकर ज्यों-ज्यों इस अंतरात्मा के मस्तिष्क को लगती है; त्यों-त्यों इसके अंतरंग में विवेक का रुधिर निर्मल होता जाता है। भेद-विज्ञान के मनोहर पुष्प वायु के संचार से टूटकर जब इस अंतरात्मा के ऊपर गिरते हैं; तब इसका सारा शरीर उसकी सुगंध से महक उठता है।

इस अंतरात्मा को भूख-प्यास लगने पर यह तत्काल इस वृक्ष के स्वानुभवरूप फल को तोड़कर, उसके अंदर भरे सुधा-समूह का सेवन कर अपनी क्षुधा और तृषा को तृप्त करता है। इस सुधा-रस में अपूर्व शक्ति है। इस वृक्ष की सेवा करते हुए और स्वानुभवरूपी फलों के रस को भोगते हुए यह अंतरात्मा जो आनंद प्राप्त करता है, वह वचन से अगोचर है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इस आनंद का व्याख्यान नहीं कर सकते हैं। इस वचनातीत, सर्व क्षणिक आनंदों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद लेनेवाला यह अंतरात्मा धन्य है॥१०॥

११. आत्मीक रामायण – मोह-शत्रु के दुःख से दुखित असह्य वेदना में उपचार रहित अत्यंत निरुपाय होने पर भी उपाय करने का इच्छुक आत्माराम भव-वन में भटकते-भटकते एक उच्च-स्थान को देखता है। यहाँ-वहाँ दृष्टि फैलाता हुआ ज्यों ही क्षणभर विचार करता है, त्यों ही धर्मोपदेशरूप सुग्रीव के शांतमुख को देख कुछ साता प्राप्त करता है और चित्त का शोक भूलकर सहसा उससे मिल जाता है।

संभाषण का आनन्द लेते हुए आत्माराम धर्मोपदेश के मुख पर मलिनता देख, उसका कारण श्रवण कर, उसके शत्रु मिथ्योपदेशरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साहसगति नामक मायामई सुग्रीव को जीतने के लिए कमर कस कर तैयार होता है। धर्मोपदेश और मिथ्योपदेश – दोनों का बाह्यरूप एक समान देख परीक्षा-लक्षण को दृष्टि में रखते हुए आत्माराम और धर्मोपदेश – दोनों मिलकर मिथ्योपदेश को पराजित कर देते हैं।

इस उपकार से उपकृत हो धर्मोपदेश, आत्माराम की वियोगिनी अनुभूति सीता का पता लगाने के लिए प्रयत्न करता है। उसे शीघ्र ही श्रुति नामक विद्याधर से ज्ञात होता है कि अनुभूति को मोह-रावण हर कर ले गया है। तत्पश्चात् धर्मोपदेश परम वीर, निर्भय, अद्भुत विद्याधारी, संतों के लिए परम कामदेव श्री सम्यक्त्व-हनुमान से भेंट कराता है। सम्यक्त्व योद्धा आत्माराम से इसप्रकार मिलता है, जैसे दूध में दूध मिल जाता है। दोनों में एकाग्र/एकनिष्ठ प्रीति हो जाती है। अपने मित्र को वियोगिनी अनुभूति रानी से मिलाने का संकल्प कर सम्यक्त्व तैयार हो अपनी अपूर्व विद्या के बल से शीघ्र ही देख लेता है कि उस अनुभूति रानी को मोह-रावण कंलकित करना चाहता है; परन्तु आत्माराम में आसक्त यह परमसती अनुभूति मोह द्वारा बिछाए गए माया जालों में न फंसकर, आत्माराम के नाम और गुणों का स्मरण करती हुई अपने शील की रक्षा कर रही है।

सम्यक्त्व हनुमान शीघ्र ही अनुभूति से मिलते हैं और आत्माराम के समाचार सुनाते हुए विश्वासार्थ आत्माराम की विवेक-मुद्रिका प्रदान करते हैं। इस सुख-संवादरूपी अमृत को पाकर, अपना भेद-विज्ञान चूड़ामणि देकर अनुभूति सम्यक्त्व को शीघ्र ही आत्माराम के पास भेजती है। अपने मित्र सम्यक्त्व द्वारा अपनी प्रिया अनुभूति के समाचार पाकर आत्माराम परम आनंदित होते हैं और परम साहस कर अपनी अनुभूति को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मोपदेश और सम्यक्त्व दशलक्षणरूप सेनापतिओं को आज्ञा देते हैं कि वे अपनी-अपनी चमत्कारिक गुणरूप सेना को कार्यक्षेत्र में परिणत होने की आज्ञा दें। समस्त सेना एकत्र होती है। मुख्य सेनापति सम्यग्ज्ञान सभी को योग्यचक्र में सज्जित करता है। सोऽहं (वह मैं) के युद्ध वादित्र (बाजे) बजते ही सेना सहसा मोह के बाह्य में मनोहर अभ्यंतर महाभयानक अवगुणों से परिपूर्ण विषयपुररूप लंका नगर के बाहर आ उपस्थित होती है।

सोऽहं की स्याद्वादमय गर्जना को सहसा सुनकर मोह काँप उठता है। तदनन्तर साहस बाँधकर युद्ध की तैयारी करता है। मोह-रावण का भाई शुभोपयोगरूप विभीषण अपने भाई को समझाता है कि अनुभूति आत्माराम को दे दी जाए; परन्तु मोह के मोहांध आग्रह को देखकर कुसंग को छोड़ना ही उचित समझकर शुभोपयोग शीघ्र ही आत्माराम के चरणों में आ जाता है और आत्माराम की प्रियतमा को उन्हें ही दिलाने में उपयोगी न्यायरूप कार्यों में परिणमन करने की चेष्टा करता हुआ आत्माराम की परिपूर्ण सहायता करता है।

मोह-रावण अपने भ्राता अशुभोपयोगरूप कुंभकरण और राग-द्वेषरूप इंद्रजीत-मेघनाद पुत्रों से विचार-विमर्श कर, अपनी सम्पूर्ण अवगुणों की सेना को तैयार करने के लिए, चार कषायरूप प्रचंड सेनापतिओं को आज्ञा देता है। मिथ्याज्ञानरूप सेनाधिपति सभी को चक्र में सज्जित कर युद्ध-क्षेत्र में आ जाता है।

मोह-रावण और आत्माराम का युद्ध होता है। कभी अवगुणों की तो कभी गुणों की हार होती है। दोनों ओर के योद्धा एकाग्रचित्त से युद्ध करते हैं। सत्य-पथानुयायी आत्माराम का साहस बढ़ता जाता है। अन्यायमार्गी मोह-रावण अपनी सेना को कमजोर पड़ती देख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साहसहीन होता जाता है। आत्माराम का सहोदर संयमरूप लक्ष्मण भाई अपने अद्‌भुत पराक्रम के बल से मोह-रावण का सामना करने आता है।

किंकर्तव्य विमूढ़ हो मोह ने संयम का घात करने के लिए मिथ्याचारित्ररूप चक्र इस संयम पर छोड़ा; परन्तु इसके तेज और प्रभाव से उसीसमय सम्यक्चारित्ररूप परम प्रचंड सुदर्शनचक्र ने प्रगट हो मिथ्याचारित्रचक्र के खंड-खंड कर डाले और संयम की प्रदक्षिणा दे, उसी संयम के हाथ में जाकर विराजमान हो गया। संयम ने अपने सर्वोत्कृष्ट सम्यक्चारित्ररूप इस चक्र को ज्यों ही एकाग्रतारूपी तीव्र शक्ति के साथ मोह पर चलाया; मोह-रावण का उर-स्थल भिद गया और वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। मोह का गिरना और प्राणरहित होना देख उसकी सम्पूर्ण सेना भाग गई और सर्वत्र परम उदासीनता/वीतरागता छा गई।

आत्माराम अपने मित्र धर्मोपदेश, सम्यक्त्व और शुभोपयोग की सहायता से तथा अपने सच्चे भ्राता संयम के प्रयत्न से मोह का नाश कर अपनी प्रिया स्वानुभूति को प्राप्त कर लेते हैं। इन दोनों का परस्पर मिलाप होता है। अनुभूति और आत्माराम के मिलाप का आनंद या तो श्री सर्वज्ञ भगवान जानते हैं; या वे अनुभव-भोक्ता जानते हैं।

आत्माराम अपनी स्वानुभूति पटरानी के प्रेम में लीन हो सदा स्वस्थ और बाधारहित शिवमहल में आकर विश्राम करता है। अपने अटूट प्रेम से उत्पन्न सुधा-समूह का पान कर; सांसारिक पराधीन और क्षणिक आनन्दों से विलक्षण; अतीन्द्रिय स्वाधीन और अविनाशी अनुभवानंद स्वाद लेता है॥११॥

१२. स्ववस्तु-वाटिका – जैन धर्मावरोही, परमकला-विस्तारक,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निज वीरत्व प्रकाशक, स्वगुण मनकारक, अष्टांग गुण विभूषित, सम्यग्दृष्टि आत्मा जिस उपयोग से मधुमक्खी के समान अनेक जाति की विविध वर्णरूप वस्तु-समूहमय पुष्ट-वाटिकाओं की सुगंध तथा रस को लेता फिरता था; उसी उपयोग को क्षणमात्र के लिए स्थिर कर स्व वस्तु-वाटिका के रमण में लवलीन करने से अपूर्व लाभ प्राप्त करता है। असंख्यात प्रदेशवाली स्व वस्तु-वाटिका का प्रत्येक प्रदेश सम्यग्ज्ञानरूप रस से परिपूर्ण है।

इस रस में खट्टा, मीठा, चरपरा, कषायला, तीखा आदि कोई रस नहीं है; लाल, हरा, पीला, काला, सफेद आदि कोई रंग नहीं है। किसी भी हाथ या मुख आदि से इसका स्पर्श संभव नहीं है। इसमें सुगंध-दुर्गन्ध भी नहीं है। इसके अतिरिक्त इस रस की उपादान शक्ति से कोई शब्द भी उत्पन्न नहीं होता है।

इन सबसे विलक्षण सम्यग्ज्ञानमय अपूर्व रस से भरी हुई आत्म-वाटिका के अंदर जो अपने आत्म-उपयोग को धारण करता है, उसे उसी समय एक अनुपम स्वाद प्राप्त होता है। चराचर जगत से संबंध छूट जाता है, वीतराग-विज्ञानता की महिमा प्रगट हो जाती है। यद्यपि उपयोग विचलित हो पर की ओर चला जाता है; स्व वस्तु-वाटिका को छोड़कर, परवस्तुरूप भयानक वन में भ्रमण कर आता है; तथापि यह धीरात्मा पुनः उस उपयोग की डोर को सम्हाल कर स्ववस्तु-वाटिका में ले आता है।

यहाँ इस वाटिका के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, अनित्यत्व आदि सुगंधित वृक्षों में इसे रमण कराता है। एक-एक वृक्ष पर उपयोग को चढ़ाता है, उतारता है। यह चढ़ने-उतरने की प्रक्रिया इस उपयोग को परमसुख दिलाती है। यह अभ्यास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता हुआ उपयोग क्रम-क्रम से ऐसा दृढ़ हो जाता है कि स्ववस्तु-वाटिका में रमण करने में ही इसे आनन्द आता है। यदि किसी कारणवश (पूर्व संस्कार आदि से) परवस्तु-वाटिका में उपयोग जाए भी; तो वहाँ लीन नहीं होता है, खेदित होता है; अतः शीघ्रता से अपना प्रयोजन सिद्ध कर स्ववस्तु-वाटिका में पुनः आ जाता है।

इसप्रकार की वृत्ति इस मनुष्यधारी को भी सिद्ध-सुख की झलक दिखाती है तथा परानुभव की वासना का त्याग करा, स्वानुभवरूप रस-आनंद को प्राप्त कराती है। इस व्यवस्था के पूर्व जो व्यक्ति पर-निमित्त में सुख मानता था; वही अब स्वानुभव के आनन्द में आसक्त हो जाता है।

(दोहा)

महिमा भेदविज्ञान की, है अनुपम अविकार।
जो याको निश्चय करै, पहुँचे अनुभव द्वार॥

(*अर्थ :–* भेदविज्ञान की महिमा अनुपम और अविकार है, जो इसका निर्णय करता है; वह अनुभव के द्वार पर पहुँच जाता है)।।१२।।

१३. सम्यक्त्वी की अपूर्व सामायिक – अनादि भ्रमण से थककर और भव-वन में किसी भी स्थल पर सुख-शांति नहीं प्राप्त कर, यह पंचलब्धि-विजयी आत्मा, अपने ऊपर पड़ती हुई आपत्तिओं की सामर्थ्य से यथार्थ निश्चय कर विचार करता है कि मैं एक स्वतंत्र ज्ञान स्वभावधारी, अविनाशी, अनंतगुण समूहरूप एक आत्म-वस्तु हूँ। उपाधिजन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विभावों से और पुद्गलमयी उपाधिओं से मेरा कुछ भी संबंध नहीं है। द्रव्यकर्म मेरे स्वभाव से भिन्न हैं।

मैं वास्तव में अमूर्त चैतन्यगुण समूह हूँ। शुद्ध चैतन्य में स्थिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहना मेरा कार्य है। पंचेन्द्रिय के विषय और विषयोत्पादक पदार्थ मेरे लिए अहितकारक हैं। जब मेरी परिणति इन्द्रिय-ग्रामों के किसी भी कोने में जाती है, मेरे निज स्वरूपाचरण का घात होता है; उस समय मैं एक आनंदधाम से पतित हो, दुःख के स्थान पर पहुँच जाता हूँ। मेरे उपयोग में इस जगत के मायारूप प्रपंच का राग कदापि उत्पन्न न हो – यही मेरी भावना है।

मुझे पूर्ण निश्चय है कि जिसमें मैं अभी रह रहा हूँ; वह शरीररूपी सराय अब मुझसे छूटनेवाली है। इसी के साथ इस तन संबंधी सभी संबंधी भी छूट जाएंगे; अतः अब मुझे व्यवहारमार्ग में ऐसे कोई भी कार्य नहीं करना हैं, जिनसे पर-जीवों को संक्लेश हो, पर के प्राणों को पीड़ा हो। मेरे द्वारा अन्यायरूप आचरण होना आश्चर्यरूप है। मैं तो यह निश्चित मान रहा हूँ कि यह सभी संबंध क्षणिक हैं। जबतक हैं, तबतक इनकी रक्षा स्वधर्मावरोहण के निमित्त से न्याय-मार्ग द्वारा ही कर्तव्य है।

मैंने वस्तु के सम्यक् स्वरूप को जान लिया है। अभी तक अज्ञानरूप परिणमित मेरा ज्ञान अब सुज्ञानरूप हो गया है; रागरूप परिणमित परिणति विरागरूप हो गई है। ऐसा होना ही चाहिए; क्योंकि श्री अमृतचन्द्राचार्य के वचन हैं –

"**सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।** समयसार कलश १३६, प्रथम पाद। (***अर्थ :***– सम्यग्दृष्टि के नियम से ज्ञान और वैराग्य शक्ति होती है।)" मेरे परिणामों में उर्ध्वता विद्यमान है। निश्चित ही मैं चारित्रवान होनेवाला हूँ। मुझे मेरी परिणति इसी ओर प्रेरित कर रही है।

मुझे उत्कट/तीव्र आकांक्षा है कि मैं निज आत्मीक-रस का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वाद सदा लेता रहूँ। मेरा परमसुखरूप भोग यही है। मैंने अभी मार्ग को पहिचाना है। मुझे उस मार्ग पर चलना है। चले बिना मुझे स्वतंत्रता नहीं मिलेगी; अद्भुत स्वाधीनता नहीं मिलेगी। यदि कोई ऐसा माने कि मैंने स्व-पर को पहिचान लिया है; मैं स्वधाम में पहुँच गया हूँ; मुझे अब मार्ग पर चलने का विकल्प क्यों करना ? तो वह स्व मार्ग-ज्ञान से विमुख है। उसका अभिमान उसे सम्यग्ज्ञानी और वैरागी नहीं होने देगा।

जो अभिमान के वशीभूत हो स्वयं को निर्बंध मानकर स्वच्छंद आचरण करते हैं; वे सम्यक्त्व-रहित हैं। जैसा कि श्री अमृतचन्द्राचार्य १३७वें कलश में कहते हैं –

“सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं, जातु बंधो न मे स्या,
दित्युत्तानोत्पुलकवदना, रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलंबंतां समिति परतां, ते यतोऽद्यापि पापा,
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः॥

(*अर्थ :–* यह मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ, मुझे कभी बंध नहीं होता है – ऐसा मानकर जिनका मुख गर्व से ऊँचा और पुलकित हो रहा है – ऐसे रागी जीव भले ही महाव्रतादि का आचरण करें, समितिओं की उत्कृष्टता का आलम्बन लें; तथापि वे पापी ही हैं; क्योंकि आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से रहित होने के कारण वे सम्यक्त्व से रहित हैं।)”

मेरी भावना मुझे ऐसा नहीं बनने देगी – इसका मुझे पूर्ण विश्वास है; क्योंकि यद्यपि मुझे प्रतीत होता है कि मैंने स्वरूपाचरण को ही उपादेय मानकर श्रद्धान किया है; तथापि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि – यह बात यथार्थतया तो अरहन्त भगवान ही जानते हैं। मैं छद्मस्थ,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पराश्रित ज्ञानावलम्बी कैसे समझ सकता हूँ कि मुझमें ऐसा कौन-सा मिथ्याशल्य का सूक्ष्म अंश विद्यमान है; जिससे सम्यक्त्वी दिखता हुआ भी सम्यक्त्वी नहीं होऊँ।

जो कुछ भी हो पर इस समय मेरा उपयोग मुझे आत्मगुणों के सम्मुख कर रहा है; यही महान लाभ है। जो रस कभी अनुभव में नहीं आया था, वह स्वाद में आ रहा है। यह मेरी स्थिरता जितने काल पर्यन्त है, उतने काल पर्यन्त मेरे अपूर्व सामायिक है।

राग-द्वेष से दूर हो मैं शुद्ध समता सखी के राग में उन्मत्त हो गया हूँ। यह मेरी क्षणिक समवृत्ति मेरी ध्रुव समवृत्ति के लिए साधन है। यह कारण है और सर्व विमुक्त शांत चिन्मय अवस्था मेरा कार्य है। कारण के प्रयोग में जो आनंद है, वही आनंद कार्य में भी होगा। परमात्मा की कृपा से आज मैं भव-निमज्जनकारी आनन्दों से दूरवर्ती, विजातीय अनुभवानंद को लेता हुआ कृत-कृत्य हो रहा हूँ॥१३॥

१४. आत्मीक बाह्यतप और अद्भुत कषाय – शिव-महल में विराजमान, स्व-स्वरूप-मान में लवलीन, त्रिजग-ऊपर अपना आसन रखनेवाली, निराली छटा को फैलानेवाली मुक्ति-स्त्री के स्नेह में आसक्त हो एक संसारी-व्यवहारी धन, धान्य, पुत्र, पत्नी, मकान, मंदिर आदि को छोड़कर, एकांत में जा अपनी प्रियतमा से मिलने की भावना में लीन हो, समस्त पर-भावनाओं को टालता हुआ, 'तप से ही राज्य मिलता है' – यह विचार कर, एकाग्रतापूर्वक शिव-तिया के स्वराज्य को लेने की इच्छा से अनेक कष्टों को सहकर तप करने के लिए उद्यत हो जाता है।

अनशन तपारोही होकर यह अपने आत्मा को किसी भी परभाव, परगुण, पर-पर्याय और परद्रव्य का भोजन नहीं देता है। उसे पूर्णतया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव-अवरोही रखकर इस अनशन तप में जबतक दृढ़ रखता है; तबतक परमानन्द की भावना करता हुआ, स्वावलम्बन के मनोहर फल प्राप्त करता है।

अनशन तप से थककर ऊनोदर तप के लिए जब यह उद्यम करता है, तब आध्यात्मिक निश्चय-व्यवहारनय संबंधी विचारों का कुछ भोजन अपने आत्मा को इसलिए देता है, जिससे यह आत्मा स्वात्म-स्तंभवत्/खंभे के समान अचल रहकर, बिना किसी ओर डगमगाए पुनः अनशन तप का पालन कर सके। यह तप भी इस आत्मा को शिव-रमणी का स्वाद दिलाकर, उसके प्रति और अधिक प्रेमासक्त कर, उसकी-प्राप्ति के लिए अत्यधिक उत्साही बना देता है।

जब यह आसक्त चित्त वृत्ति-परिसंख्यान तप करता है, तब प्रतिज्ञा कर लेता है कि मैं अपने आत्मा को ऐसा ही भोजन दूँगा, जो शुद्धता से निर्मित सत्पात्र में रखा हो और ज्ञान-वैराग्य मिष्ठान्न से निर्मित हो। स्वरूप-संतोष को कभी भी विस्मृत नहीं करनेवाला इस प्रतिज्ञा को धारण कर, लोभ-राक्षस से सर्वथा दूरवर्ती शिव-रमणी का लोलुपी यह, इस वृत्ति-परिसंख्यान तप के द्वारा कष्ट सहने को भी आनंद का भोग मानता है।

तीसरे तप की भावना से उपयोग को हटाकर जब यह रस-परित्याग नामक चौथे तप की ओर दौड़ता है तो यह निश्चय कर लेता है कि मैं पुद्गल के किसी भी खट्टे, मीठे, चरपरे, कषायले, तीखे, कड़वे आदि रस के स्वाद को नहीं लूँगा; मैं दूध, घी, शक्कर, दही, तेल, नमक आदि के स्वाद को नहीं लूँगा; मैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल के भी किसी विलक्षण जातिवाले स्वाद को नहीं लूँगा; समस्त पर-रसों से अतीत स्व-स्वरूप-रस का ही पान करूँगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह रस मेरे अंग को जितनी तृप्तता देता है; उतनी तृप्तता किसी भी द्रव्य के किसी भी रस में नहीं है। यह तप मुझे मुक्ति-तिया की लब्धि के उद्यम में अधिकाधिक प्रेरित करता है। इस तप के तपने में सहजानंद है, कष्ट का नाम भी नहीं है।

रस-परित्याग को तपनेवाला यह जीव जब अपने उपयोग को विविक्त शैयासन नामक पाँचवें तप में ले जाता है; तब सर्व प्रमाद की शैया और मोह के आसनों का त्याग कर इनसे पूर्णतया पृथक् असंख्यात प्रदेशवाली निजात्म शैया और निजभाव के दृढ़ आसन पर बैठने का संकल्प कर लेता है। ये अद्भुत शैया और आसन इस आत्मा के तन को जो आराम देते हैं; वैसा आराम शिवलोक के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। इस पाँचवें तप के द्वारा किंचित् भी कष्ट नहीं पाता हुआ यह मुक्ति-तियासक्त प्राणी इस प्रेम में अद्भुत साता की प्राप्ति करता हुआ, अत्यधिक आल्हादित हो, इस साहस को तीव्रता से बढ़ाता जाता है कि मैं अवश्यमेव शीघ्र शिव-रमणी का वर होऊँगा।

छठवें काय-क्लेश नामक तप के संगम में जब यह लोभी जीव आ जाता है, तब यह संकल्प कर लेता है कि मैं अपने चैतन्य काय को ऐसा स्थिर, दृढ़ और लीन करूँगा; जिससे लोक के चेतन और अचेतन पदार्थ इस पर चाहे जितनी औपाधिक भावों की वर्षा करें, औपाधिक द्रव्यों का संघर्षण करें; तथापि यह आत्मा अपने काय को किंचित् भी चलायमान नहीं करेगा। इस आश्चर्यमय काय-क्लेश को करते हुए आत्मा को वास्तव में कोई क्लेश नहीं है; वरन् सर्वथा आनन्द ही है। क्लेश तो तब होता है, जब कोई किसी के स्वभाव को बिगाड़ता है; क्योंकि मेरे स्वभाव का पतन कराने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है; अतः अपने स्वरूप की दृढ़ता में एकमात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द ही आनन्द के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का किंचित् भी कष्ट कभी भी मुझे नहीं है।

धन्य हैं ये छह तप!! इनकी सहायता मुझे परम संतोषित और पुष्ट कर रही है। वास्तव में ये तप, बाह्यतप ही कहलाने के योग्य हैं; क्योंकि जबतक संकल्प सहित विचार है, तबतक निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान नहीं है। निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान ही साक्षात् अंतरंग भाव है; परन्तु जबतक इस भाव की प्राप्ति नहीं हुई है; तबतक मुझे इन छह बाह्यतपों को अवश्यमेव सतत तपना चाहिए।

यद्यपि इनका संयोग मुझे निर्नाम नहीं बनाता है, गुणस्थानों से अतीत नहीं करता है; मुझे षट्गुणस्थानवर्ती रखकर, संज्वलन कषायावरोही साधु के नाम में गुंठित रखता है। यह उचित भी है; क्योंकि मुझमें तीनलोक विजयी शिव-तिया को प्राप्त करने का लोभ विद्यमान है; स्व-स्वरूपमग्न ध्यानाग्नि से पौद्गलिक कर्म वर्गणाओं को दग्ध करनेरूप क्रोध भी है; स्वयं को सिद्धसमान सर्वोत्कृष्ट पवित्रात्मा समझनेरूप मान भी विद्यमान है तथा सिद्ध और अरहंत पद के अयोग्य शुद्ध-संकल्पों को करता हुआ भी मैं यह मानता हूँ कि मैं स्वयंसिद्ध तथा अर्हन्तवत् आचरण कर रहा हूँ; मेरी मान्यता अन्य प्रकार की है और आचरण अन्य प्रकार है – इस रूप में इतनी माया भी विद्यमान है। इन चार कषायों का संगी होकर मैं निःसंगी कैसे कहला सकता हूँ; तथापि मैं मुक्ति-तिया में आसक्त होकर सम्पूर्ण सांसारिक और विनाशीक आनन्दों से करोड़ों कोस दूरवर्ती अनुभवानंद का ही स्वाद लेता हूँ॥१४॥

१५. आध्यात्मिक अंतरंग तप – निजसत्त्व-विलासी, पर-भाव से उदासीन, सम्यग्दृष्टि यथार्थ मोक्ष-मोक्षसुख और मोक्ष के कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का ज्ञाता, स्व-रस-स्वाद लेने का उत्सुक, षष्टम-सप्तम गुणस्थान-अवरोही; विषय-सुख को भव-भव बाधाकारक, अनुपम-गाढ़ विष-सम श्रद्धा करनेवाला, अंतरात्मा आज अंतरंग तप तपने में लीन हो रहा है।

शुद्धात्म-वृत्ति का धारण ही शुद्धचारित्र है। इस स्वरूपाचरण अनुभव से जब इसकी वृत्ति हटकर, इतस्ततः/यहाँ-वहाँ डगमगाकर परानुभव में प्रवृत्ति कर जाती है; तब यह अंतरात्मा अपना बड़ा भारी अपराध समझ शुद्धात्म-स्वरूप में दृढ़ता से आचरण करनेवाले आचार्यों की आज्ञानुसार स्ववृत्ति को बलात्, पर से हटाकर, स्व में स्थिर कर प्रायश्चित्त नामक अंतरंग तप का मनन करता है।

शुद्धात्म-स्वरूप ही उपादेय है – ऐसी दृढ़ रुचिरूप सम्यग्दर्शन, स्व-संवेदनज्ञानमय सम्यग्ज्ञान और निर्विकल्प वीतराग स्वरूपानुभवमय सम्यक्चारित्र – ये तीन होने पर भी एक हैं। मेरा आत्मा ही इन तीन स्वरूप है। निर्विकल्पता के काल में यह आत्मा अपने स्वरूपानुभव में स्थिर हुआ परमानंद भोगता है। इसप्रकार त्रिमूर्ति-स्वरूप ब्रम्हपद का पूर्ण सत्कार करता हुआ यह अंतरात्मा, सतत स्वरुचि के विषय-स्वरूप रत्नत्रयरूप स्वबोधि को अपने अंतरंग समाधि-घट में अत्यंत रुचिपूर्वक रखने का उद्यम करता है। इसी के साथ जिन-जिन महात्माओं ने इस बोधि का सेवन कर स्वकल्याण किया है; उनकी ओर भी परम रुचि भाव धारण करता हुआ यह अंतरंग विनय तप का अभ्यास कर सुखी होता है।

स्वरूप-मनन करनेवाले साधु-समाज की स्थिरतारूप परमभक्ति सहित आवश्यकतानुसार बाह्य वैयावृत्त्य करते हुए भी यह अंतरंग वैयावृत्त्य को भूलता नहीं है। वीतराग-विज्ञानता ही मोक्ष-साधक है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

– इस भाव पर दृढ़ता से आरूढ़ होते हुए भी जब किसी कारणवश इस भाव से उपयोग डगमगाता है; तब यह अंतरात्मा शीघ्र सचेत हो, श्रुतज्ञान द्वारा निज उपयोग की सेवा करता हुआ, मोक्ष-साधक भाव को स्थिर करते हुए वैयावृत्त्य तप में प्रवीण करता है।

अनादिकालीन पर-अध्ययन के मिथ्या अभ्यास का तिरस्कार कर, भेदज्ञान के द्वारा उन अविनाशी षट्द्रव्यों के गुण और पर्यायों का विचार कर, जिसमें यह त्रिलोक अनादिकाल से अपना अनेक प्रकार का रूप दिखला रहा है और अनंतकालपर्यंत दिखलाता रहेगा, इस अपने आत्मस्वरूप के शुद्ध जातीयत्व को आकर्षित करता हुआ यह अंतरात्मा, एकाग्र मन से रूपातीत ध्यान में मग्न हो, अपनी ही वस्तु का अध्ययन कर निश्चय स्वाध्याय में लयता प्राप्त करता है। जब कभी परिणाम विचलित होते हैं; तब शीघ्र ही जिनवाणी के मनोहर सूत्रों का अध्ययन कर पुनः अपने ही आसन में अचल स्थिर हो जाता है।

अशुचि और जड़ वस्तुओं से निर्मित, जड़ वस्तुओं से ही पुष्ट होनेवाला तथा सर्वांग मल-समूह को ही धारण करनेवाला यह शरीर नौ द्वारों से मल को ही प्रवाहित करता है; चेतन आत्मा के साथ रहकर भी कभी चेतन नहीं होता है; अपनी जड़ता नहीं छोड़ता है। बाह्य औदारिक शरीर के अतिरिक्त तैजस-कार्मण तो एकसमय मात्र भी संसारी जीव का साथ नहीं छोड़ते हुए, जड़-पुद्गलमय होकर चैतन्य की संगति करते हुए भी जड़ ही रहते हैं। शरीरों के इन वास्तविक स्वरूपों को ध्यान में रखकर, अपने अनादि भ्रम को नष्टकर, सभी शरीरों को स्वयं से सर्वथा भिन्न मानकर, यह अंतरात्मा उन शरीरों से स्नेह छोड़ देता है और निर्मोह हो, स्वरूपाचरण में स्थिर हो व्युत्सर्ग नामक तप का सम्यक् अभ्यास करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इन पाँच प्रकार के अंतरंग तपों को साधनरूप मानता हुआ यह अंतरात्मा निर्विकल्प समाधि में लीन हो, एकाग्रचित्त हो, सर्व जगत से प्रयोजन छोड़कर, स्वानुभव-रस के आस्वाद को लेकर, सर्वोत्कृष्ट ध्यानरूप महान तप को अंगीकार कर परम आनंद को भोगता है।

इसप्रकार उपर्युक्त षट् अंतरंग तपों में सावधान, सम्यक् श्रद्धावान अंतरात्मा, अनादिकालीन क्षणभंगुर सुख की वासना को दुःख-बीज जान कर, भव-भ्रमणकारक आनंदों से अतीत अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥१५॥

१६. गुफा में विश्राम - ज्ञान-सूर्य की प्रभा एकसमय में अनादि मिथ्या-भ्रम को नष्ट कर देती है – इस श्रद्धा-सम्पन्न अंतरात्मा आज कुमति-नारी का सदा के लिए त्याग कर, सुमति के राग में रंजित हो गया है। अपने आपको पूर्णतया भुला देनेवाला, मोहनीय कर्म के द्वारा चढ़ाया गया नशा, इस अंतरात्मा के उतर गया है। यद्यपि अभी इतना नशा विद्यमान है, जिससे स्वयं को नहीं भूलता हुआ भी यह अंतरात्मा पर-पदों में अल्प-अल्पकाल के लिए प्रीति कर लेता है, कहीं द्वेष भी कर लेता है; तथापि स्व-स्वरूप-अनुभव की रुचि विद्यमान है।

बहिरात्मा बुद्धि का त्याग कर, परमात्मा होने का इच्छुक, सुमति नारी के साथ यह अंतरात्मा, पर-देश में अपनी क्षुधा-तृप्ति होती न देख, शिव नगर नामक स्व-देश की ओर प्रयाण करता है। मार्ग में वह एक रमणीक वन में आता है। जिसमें अत्यंत मनोहर, प्रचुर, शांत छाया को देनेवाले; अपनी शील-सुगंध से समस्त वन को महका देनेवाले, शुभभावनारूप बारह वृक्ष अत्यधिक सघन भावरूप पत्रों के भार से नम्रीभूत अपनी छटा/शोभा को विस्तृत कर रहे हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस वन के निकट ही अत्यधिक लम्बा-चौड़ा चौकोण अत्यंत उज्ज्वल, मिष्ट और अविकारी सम्यग्ज्ञानरूप सुधा से परिपूर्ण एक सरोवर मंद-मंद लहरें ले रहा है। उस सरोवर के समीप ही अत्यंत सुडौल और मन-हरण स्वचारित्र नामक एक पर्वत है। इसकी शोभा को देखते-देखते अंतरात्मा पर्वत के निकट जा, उस अनुपम गिरी की एक त्रिगुप्तरूप गुफा में जाकर, सुमति-नारी के साथ बैठकर विश्राम लेता है।

वहाँ संसार के भ्रमण, इष्ट वियोग-अनिष्ट संयोगरूप विकल्प, इंद्रिय-विषयों की प्राप्ति संबंधी उलझनरूप संकल्प आदि उपाधिओं के खेद से खेदित हो यह अंतरात्मा स्थिर चित्त कर विराजमान हो, अपने विवेकरूपी सेवक द्वारा सरोवर का मिष्ट जल मँगाकर पान करता है और सहसा सम्पूर्ण थकान को दूर कर स्वानुभव की शांत निद्रा में शयन करने लगता है।

इस शयन में भी वह बेसुध/अचेत नहीं है। इस शयन में यह चेतनता की चादर से आच्छादित है। इसमें आनन्द का अभाव नहीं है; वरन् सदा आनन्द ही आनन्द है। इस गुफा में ठहरे हुए इस अंतरात्मा को न तो विषय-चोर सताते हैं और न ही कषाय-लुटेरे व्याकुल कर सकते हैं। स्वदेश गमन करनेवाले व्यक्ति को ऐसी गुफा की प्राप्ति परम सौभाग्य की बात है। यह अंतरात्मा इस रमणीक स्थान में विश्राम करता हुआ, बाधाकारी आनंदों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥१६॥

१७. मिथ्यात्व गुणस्थानी की दशा - निश्चय-स्व-पद-भासी, निज-दुर्ग-विलासी, जगत-प्रतिभासी एक पक्षी भव-वन में भ्रमण करते हुए कमल-नालरूपी जगत में लटक गया है। अब उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छोड़ने में अपने नाश का विचार करता हुआ, भ्रमबुद्धि से स्वयं उसे छोड़ देने की निज-शक्ति का विस्मरण कर, उसे छोड़कर जाने की इच्छा होते हुए भी यह उसे नहीं छोड़ता है और विपर्ययरूप उल्टा लटका हुआ, अपने पंखों को बार-बार झटकारता हुआ, व्यर्थ ही विविध कष्ट सहन कर रहा है। इस मिथ्या-बुद्धि का धारक चेतन-पक्षी वृथा ही अपनी शक्ति को भूलकर, पर के जाल में पड़ा विपत्ति-ग्रस्त हो रहा है। अपने निकट आनेवाले अन्य जीवरूप पक्षिओं को अपना हितैषी मान, उनसे मोह/रागादि करता है। जब वे पक्षी अपनी-अपनी पर्याय पूर्ण कर चले जाते हैं; तब यह अत्यंत विलाप कर रोता है।

यह बहुत बड़ी महान भूल है, जो स्वयं अनंत धन का धनी होने पर भी स्वयं को रंक, दरिद्री और दीन समझ रहा है। जिसे पकड़कर अब यह छोड़ नहीं पा रहा है, वह जगरूपी नाल मात्र सर्वथा निर्बल जड़रूप है। वह कभी इस पक्षी को पकड़ना नहीं चाहती है, न कभी पकड़ती है और न ही अभी पकड़े है। यही मूर्ख उसे पकड़कर विपरीत बुद्धिवाला हो रहा है। पाँचों इंद्रियाँ और उनके विषयरूप पदार्थ – सभी जड़ हैं। वे जड़ पदार्थ इस चेतन को बुलाते नहीं हैं, इसे चाहते नहीं हैं, इसे पकड़ते नहीं हैं। यह मूढ़ प्राणी स्वयं ही उन्हें पकड़कर, उनके मोह में लुब्ध हो जाता है।

जब कोई पूछता है कि क्यों भाई ! इन जड़ वस्तुओं को क्यों पकड़ रखा है; अपना चेतन-धन अपने में विद्यमान है, उसे ग्रहण क्यों नहीं करते हो ? इसे सुनकर यह मद-मस्त प्राणी उत्तर देता है कि मैं क्या करूँ ? ये विषय मुझे छोड़ते ही नहीं हैं; चौबीसों घंटे मेरे मन में बैठे रहते हैं। मैं इन्हें छोड़ना चाहता हूँ, कभी एकांत में बैठकर इनसे पृथक् रहना चाहता हूँ; इसके लिये किसी इष्टदेव का नाम भी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लेता हूँ; तथापि ये विषय मुझे नहीं छोड़ते हैं; वहीं आकर मेरे मन को भ्रमित कर, अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। मैं क्या करूँ? इन विषयों से मैं हार गया हूँ।

हाय-हाय ! महा आश्चर्य है !! मोह-मदिरा पीनेवाला यह मिथ्यात्वी, अपने द्वारा किए गए अपराध को अन्य के सिर पर डालता है। स्वयं पर-पदार्थों को चुराकर चोर बनता है और कहता है कि पर-पदार्थ बलात्/जबरन मेरे पास आ जाते हैं – ऐसी मदोन्मत्त बातों में उलझकर, अन्य को ग्रहण करना, समाप्त नहीं करता है।

यह मिथ्यादृष्टि हीरे को काँच और काँच को हीरा मान रहा है। स्वयं भव के औपाधिक भावों से पूर्णतया पृथक् जो देव, शास्त्र, गुरु भव-दुःखों से रक्षा कर इसे अनंत, अविनाशी सुख के मार्ग में ले जाते हैं; उन्हें तो यह अपना हितकारक नहीं मानता है; परन्तु स्वयं विषय-वासनाओं में आसक्त और विषयों का लोभ दिखानेवाले, पंचेन्द्रिय विषयों के मार्ग में ले जानेवाले देव, शास्त्र, गुरु को अपना हितकारक मानकर, उनका सेवन करता है।

हाय-हाय !! कितनी महान भूल है !!! स्वयं चेतन होकर मृत्पिंड जड़ से सगाई करता है और इस सगाई के सहकारी मिथ्यादेव, शास्त्र, गुरु और मिथ्या तत्त्वों को अपना मानता है; इसकारण अतृप्ति-कारक इंद्रिय-जनित सुखाभासों को सुख मानकर, उनकी तृष्णा में दिन-रात व्यतीत करता रहता है। अंतरंग में अपने पास अटूट धन है, इसकी श्रद्धा नहीं करता है, इसका ज्ञान नहीं करता है, इसका मनन नहीं करता है। यदि एक क्षणमात्र भी इस ओर दृष्टि हो जाए तो यह अपना अपूर्व धन इस दृष्टि करनेवाले को ऐसा अपूर्व स्वाद देता है कि जिससे पुनः वह कभी इसे छोड़ नहीं पाता है। अनादि भ्रम के संस्कार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वश यदि कभी विमुख भी हो जाए तो पुनः कभी न कभी वह निजधन को सम्हालेगा ही सम्हालेगा।

खेद है ! मोह-मद-मिथ्यात्वी को इसका ज्ञान नहीं है। नर, नारक, देव, तिर्यंच – सभी इस भ्रम-बुद्धि में उल्टे लटक रहे हैं; अपनी-अपनी जड़ देह और उसमें बनी हुई इंद्रियों में आसक्त हो रहे हैं। उस देह की साता-असाता के विकल्पों में ही उस देह को छोड़कर अन्य देह धारण कर लेते हैं। देह संबंधी स्नेह ही पुनः देह होने का कारण है। इस देह-बुद्धि के कारण चारों गति के जीव सतत तृष्णा की आग में जलते रहते हैं; कभी भी निराकुल आनंद प्राप्त नहीं करते हैं।

संसार से भयभीत होकर यदि कोई इंद्रिय-सुख की लालसा को दूर करना भी चाहता है तो एकांत पक्ष को पकड़कर यथार्थ निज स्वरूप नहीं जानने के कारण मिथ्यादृष्टि ही रहता है। स्याद्वाद की कसौटी पर पदार्थों का स्वरूप जाने बिना निज-निधि कैसे प्राप्त कर सकता है ? स्वयं कौन है ? स्वयं की निधि कैसी है ? इसकी यथार्थ समझ मिथ्या-बुद्धि का तिरस्कार करनेवाली है। निज चैतन्यगुणों के भंडार, दर्शन-ज्ञान के धारी, स्वसत्ता में नित्यता रखनेवाले, स्वाभाविक गुणों से अभिन्न आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्रतीति ही भ्रमबुद्धि को निर्मूल करती है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में भूले हुए जगत के मोही जीव-पक्षी अपना समय व्यतीत करते रहते हैं। आत्म-ज्ञान-रत्न कणिका के बिना, बाह्यचारित्र को अत्यंत सुंदरतापूर्वक पाल कर कोई-कोई ग्रैवेयिक पर्यंत की सैर कर आते हैं; परंतु मिथ्यात्व गुणस्थान को नहीं छोड़ते हैं। कहीं इस गुणस्थान ने हमें नहीं पकड़ा है; हम ही इसे पकड़कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मदोन्मत्त हो रहे हैं। यदि हम अपने पुरुषार्थ को सम्हाल कर, कुमार्ग का राग त्याग कर सुमार्ग पर आ, एकांत में अथवा सुसंगति में बैठकर विचार करते हैं; तो हम अपने ही बल से कदाचित् इस गुणस्थान का त्याग करने के लिए सामर्थ्यवान हो जाते हैं।

धन्य हैं वे अनुभवी जीव ! जो इस गुणस्थान का उल्लंघन कर चौथे में जा पहुँचे हैं और वहाँ बैठकर इंद्रिय-सुखों को जीर्ण-तृणवत मानते हुए, अतीन्द्रिय सुख को ही सुख मान, अपने निर्मल भावों के बल से, विनाशीक आनंदों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद लेकर अपने जातीयत्व का अनुभव करते हैं॥१७॥

१८. सासादन गुणस्थानी को वंदना – मैं निश्चय से सिद्ध-सदृश निर्मल परमात्मा हूँ। यद्यपि अभी व्यवहार से भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म की गुफाओं के अंदर बैठा हुआ मैं अपनी शक्ति को व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ; तथापि अपनी शक्ति को सिद्धवत प्रकाशित करना और अपने अनंत सुख को प्राप्त करना मेरा अभीष्ट है। मैं अभी भी इस सम्यक् दृष्टि से परिपूर्ण हूँ कि स्व-शुद्धात्मा ही उपादेय है। मुझे यह भी निश्चय है कि अन्य सकल पर-पदार्थों से पृथक्, अनेकांत-स्वरूप मेरा शुद्धात्मा अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य का धनी है। इस संबंध में मुझे कुछ भी संशय नहीं है और न ही कुछ विपरीतता है। इस अपूर्व सम्यग्ज्ञान के प्रति 'होगा कुछ, हमें क्या करना ?' ऐसा अनध्यवसाय भी नहीं है।

इसकी भी मुझे परिपूर्ण श्रद्धा है कि सम्पूर्ण पर-पदार्थों से अपनी वृत्ति को समेट कर अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना, अपने स्वरूप में स्थिर रहना ही, तीनों गुफाओं से बाहर निकलने का और अपूर्व तेज को प्रकाशित करते हुए शुद्धात्मारूप रहने का एकमात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपाय है। इस निश्चय का धारक उपशम सम्यग्दृष्टि अपनी अनादि अविद्या के संस्कारवश जब कभी अनंतानुबंधी कषाय के वश हो जाता है; तब उसी समय श्रद्धा से पतित हो मिथ्यात्व गुणस्थान में आता हुआ मध्य में असंख्यात समयों की एक आवलीवाली अधिक से अधिक छह आवली और कम से कम एकसमय पर्यंत ठहर कर, सासादन गुणस्थान में रहनेवाला कहलाता है।

सम्यक्त्व से च्युत होते ही, सम्यक्त्व में अविद्यमान इंद्रिय-विषयों संबंधी मद-मस्ती पुनः उत्पन्न होने लगती है। वह मद-मस्ती लोभ के वश हो इसी निश्चय में पतित करने लगती है कि विषय-सुख ही सुख है। इसकी प्राप्ति करना ही उपादेय है। इन इंद्रिय-विषयों का आकर्षण कभी चित्त में माया को भी उत्पन्न कर देता है; जिससे यह विचार आने लगता है कि चाहे पर का विश्वासघात हो या पर को हानि हो; हमें तो पर-वंचकता से भी विषय-सुख की उपलब्धि इष्ट है। सम्यक्त्व गुणस्थान में जो बाह्यधर्म मोक्ष-साधन के लिए हो रहा था; वही अब मायाचाररूप हो जाता है।

कभी अनंतानुबंधी मान की तीव्रता हो जाने पर, सम्यग्दृष्टि के अविद्यमान आठ प्रकार के मदों में उन्मत्तता बढ़ने लगती है। अपनी जाति और अपने कुल के परिग्रह का विचार कर अभिमान करने लगती है। अपने रूप को सुंदर देख मद की वायु से भरने लग जाता है। अपने बल को अन्यों से अधिक मान मान से परिपूर्ण हो जाता है। अपने धन को इंद्रिय-विषयों का सहकारी जान, अन्यों को निर्धन समझ, आपे से बाहर होने लगता है। कुछ भी अपनी आज्ञा चलती देख, उस अधिकार के कारण अपना बड़प्पन मानने लगता है।

व्याकरण, छंद, अलंकार, कविता या इसीप्रकार की अन्य किसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विद्या में चतुर हो जाने पर, उससे स्वयं को बड़ा मान, अन्य अविद्या-धारकों को तुच्छ मानना प्रारम्भ कर देता है तथा स्वयं विद्या के मद में मत्त हो अपनी स्वाभाविक केवलज्ञान विद्या को भूलने लग जाता है। व्रत, उपवास, जप, तप, ध्यान आदि विशेष रीति से करता होने पर इसी मद में लव-लीन होने लगता है कि हमारे समान अन्य कौन इतना कष्ट उठा सकता है। जो जप-तप आदि कषाय कम करने के साधन हैं; वे ही इस गुणस्थानवाले को अभिमान बढ़ाने के लिए निमित्तकारण हो जाते हैं।

कभी-कभी इस गुणस्थान में अनंतानुबंधी क्रोध की तीव्रता भी सताती है; जिससे यह जीवात्मा इंद्रिय-विषयों में विघ्नकारक चेतन और अचेतन पदार्थों की ओर क्रोध की झलक में डूबने लग जाता है।

इसप्रकार इन चारों कषायों में से किसी एक का भी उदय आ जाने पर यह जीवात्मा तत्काल चौथी सीढ़ी से गिरकर पहली पर आते हुए; जैसे वृक्ष की डाली से टूटकर नीचे गिरते हुए फल को कुछ समय मार्ग में लग जाता है; उसीप्रकार मध्य में कुछ काल लगाता है; उससमय इसे सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

जैसे संध्या काल में अस्त होता हुआ सूर्य अपनी ज्योति को मंद करते हुए कुछ काल रक्त वर्ण को दिखला कर, तिमिराच्छन्न हो जाता है; उसीप्रकार शुद्धात्मा को ही उपादेय माननेवाला यह जीवात्मा अपने अपूर्व प्रकाश से पतित हो इस घोर अंधकार में आ जाता है। यहाँ अपनी वस्तु को भूलकर, सच्चे सुख के उपाय से विमुख हो, अपदों में तृप्त होता हुआ आकुल-व्याकुल होता रहता है; स्वप्न में भी स्वपद का स्मरण नहीं करता है।

यद्यपि अभी यह परमानंद स्वाधीन रस के स्वाद को प्राप्त करने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के अवसर से च्युत हो गया है; तथापि इसकी वृत्ति अनादि घोरानुघोर मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा कुछ भिन्न जाति की रहती है; जिससे इसकी वृत्ति कभी न कभी दूसरा अवसर प्राप्त कर, पुनः चौथी सीढ़ी पर चढ़कर परमानंद स्वाद को प्राप्त कर लेती है। यह निश्चित है कि यह जीवात्मा पुनः ऊपर चढ़ेगा। यदि अधिक से अधिक समय लगे तो जितना काल एक जीव को जगत के सर्व पुद्गलों को ग्रहण करते हुए एक पुद्गल परावर्तन में व्यतीत होता है; उससे आधा अर्थात् अर्ध पुद्गल परावर्तन काल ही लगता है।

वास्तव में यह सासादन सम्यग्दृष्टि भी सराहनीय है। यह कभी न कभी श्री साधु, अरहंत और सिद्ध अवस्था को अवश्यमेव प्राप्त करेगा; इस अपेक्षा यह उसीप्रकार नमस्कार-योग्य है; जिसप्रकार हम श्री श्रेणिक राजा के जीव भावी प्रथम तीर्थंकर को नमस्कार करते हैं। इस भव्यात्मा ने एक बार शिव-मंदिर की झाँकी देख ली है। उसका आकर्षण पुनः इसे अपनी ओर लाएगा और क्रम-क्रम से शिवरूप बना देगा।

हम इस समय इस त्रिलोक में विराजमान सम्पूर्ण सासादन गुण-स्थानवर्ती जीवों को निश्चय से सिद्धात्मा अनुभव कर; उनके रूप को अपने में जोड़ते हुए, समस्त इंद्रियाधीन सुखाभासों से विलक्षण, परम स्वाधीन अनुभवानंद का स्वाद लेते हैं॥१८॥

१९. मिश्रगुणस्थान का दिखाव – अपने पद में आनंद मानने-वाला, स्वानुभूति का कर्ता और भोक्ता, राग-द्वेषादि परानुभूति के कर्तृत्व और भोक्तृत्व से पराङ्मुख सम्यग्दृगात्मा, अपने पास में गुपचुप/सत्ता में विद्यमान अनंतानुबंधी चतुष्क और मिथ्यात्वादि तीन – इन सात प्रकृतियों को दबाए हुए, आत्म-उपवन की सैर करते हुए,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

षट् द्रव्यमई जगत के प्रपंच जाल में नहीं फस कर, अपने द्रव्य के गुण और पर्यायों का सभी से भिन्न अवलोकन करता हुआ, एकांत मनन के रस में भीगते हुए कुछ विश्राम लेता है कि दर्शन मोहनीय कर्म की सम्यक् मिथ्यात्व नामक प्रकृति अपने बल से उठ आती है और जहाँ मात्र प्रकाश था, वहाँ अपनी परछाई/छाया डाल कर मलिनता कर देती है; जिससे निर्मल प्रकाश धुँधले प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है।

जैसे बाल सूर्य के निकलते समय का प्रकाश अथवा अस्ताचल पर पहुँचनेवाले सूर्य का प्रकाश, कुछ काल के लिए तिमिर से मिलकर धुँधला अर्थात् तम-मिश्रित हो जाता है; उसीप्रकार इस सम्यग्दृष्टि की परमदृष्टि, मिथ्यात्व से होनेवाली अरुचि के साथ मिलकर, एक भिन्न ही जाति की अवस्था को प्रगट करने लगती है। अहा ! जो ज्ञाता-दृष्टा अभी स्वयं को ज्ञाता-दृष्टा ही मानता था; वही बात की बात में स्वयं को क्रोधादि परभावों का कर्ता भी मानने लगा है। जो आत्मा अपने निश्चय में दृढ़ था, वही एक समय के परिवर्तन से ऐसा भ्रम में पड़ा कि अपनी शारीरिक पर्याय को भी उपादेय मानने लगा है। जो भेदज्ञानी अपनी विवेक-बुद्धि से इंद्रियजनित सुख की जाति को अतीन्द्रिय सुखानुभव की जाति से पृथक् समझता था; वही एक पलक झपकते ही क्षण-भंगुर और दुःख-बीज इंद्रियसुख को भी सुख मानने लगा है।

यद्यपि प्रकाश पृथक् और अंधकार पृथक् है; दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं; उसीप्रकार सम्यक्त्व के उज्ज्वल परिणाम पृथक् और मिथ्यात्व के मलिन परिणाम पृथक् हैं; दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते हैं; तथापि सुबह और शाम के समय जैसे उन दोनों की मिश्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवस्था हो जाती है; उसीप्रकार इस गुणस्थान में इन दोनों की भी मिश्र अवस्था हो जाती है।

इस मिश्र गुणस्थानवाला अपने भावों का वैसा ही मिश्र स्वाद लेता है; जैसा कि दही और खाँड को मिलाकर खानेवाला स्वाद लेता है। यह जीव इस गुणस्थान में रुकता भी अत्यल्प समय के लिए है; इसके बाद या तो शीघ्र अन्धकार में आकर मिथ्यात्वी हो जाता है; या फिर शीघ्र प्रकाश में जाकर सम्यक्त्वी हो जाता है। इसमें जबतक रहता है; तबतक किसी भी संयम को नहीं पालता है, किसी भी आयु का बंध भी नहीं करता है, मरण भी नहीं होता है और न ही इसका मारणांतिक समुद्घात होता है।

इस मध्यम अवस्था का भोगी भी वंदनीय है। भले ही यह अन्धकार में चला जाए; तथापि एक न एक दिन पुनः ऐसे प्रकाश में स्थिर हो जाएगा; जहाँ से पुनः कभी इस मध्यम स्थिति में आना ही नहीं होगा और यह यथार्थ ज्ञानी रहकर अपने संयम मित्र के साथ वार्तालाप करता हुआ मोक्षमार्ग में गमन कर अपनी प्राण-प्रिया शिव-नारी के ध्यान में लीन हो अवश्य ही शिव-रमणी के महल में पहुँच जाएगा और वहाँ अनंतकाल पर्यंत अपनी सुंदरी से कल्लोल करता हुआ अनुभवानंद का स्वाद लेगा॥१९॥

२०. अविरत गुणस्थानी को निज-निधि-दर्शन – चिदानंदराम अभिराम निज स्वरूपावगम में विलक्षण पदार्थों के यथार्थ लक्षणों का ज्ञाता स्वात्मावरोही रहकर स्वयं को कृतकृत्य मान रहा है। इसके आत्म-बाग में शुद्ध ज्ञान की हरियाली चारों ओर दिखाई दे रही है। यहाँ शुष्कता, मलिनता, कठोरता, कंटकता का नाम-निशान भी नहीं है। इस मनोहर बाग में निर्मल स्वरसपूर्ण परम शोभायमान सरोवर के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तट पर अपनी गाढ़ रुचि रूप प्राण-प्रिया के साथ सुखासन पर बैठा हुआ, सरोवर में उठती हुई निर्मल कल्लोलों में रंजायमान होता हुआ, उस जल की निर्मलता में प्रदर्शित होनेवाले सम्मुखवर्ती अनेकानेक पदार्थों के चित्रों को यथावत् देख यह वीतरागी रहता है।

इस आत्मा की सम्पूर्ण वृत्ति जब स्वरूपानुभव में लीन हो जाती है; तब नय, निक्षेप आदि विकल्पों का अभाव हो जाता है। शांत-रस में परिणति ऐसी भीग जाती है कि उस आत्मा के अनुभव में आया हुआ संसार का समस्त संताप ठंडा पड़ जाता है। यह जीव अपने निर्मल ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि स्वभाव को ही अपना मुख्य धन मानता है। स्वयं को सदा ज्ञाता-दृष्टा और सप्तभय से रहित अनुभव करता है। स्वप्न में भी राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि भावों का कर्ता नहीं बनता है। भूलकर भी विषय-लोलुपता का भोक्ता नहीं होता है।

अपने स्वभाव में राग और मोह की स्निग्धता का अभाव होने से यह आस्रव और बंध की अपेक्षा नहीं करता है। इस सम्यग्दृष्टि का स्वभाव स्वयं संवररूप है; सम्पूर्ण परद्रव्यों से निर्जरित और मुक्तिमय है। जब यथार्थता में विराजमान है; तब सात तत्त्वों और नौ पदार्थों के प्रपंच-जाल से पूर्णतया पृथक् है, भिन्न है, अत्यंत विलक्षण है।

इस स्वरूप के मोह में मोहित हो मैं भी स्वयं को इस रूप बनाता हूँ और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती हो, अपनी गत पर्यायों की प्रणाली को अपने भ्रम का फल मानता हुआ, शुद्धाचरण और स्वयं सिद्धता को सर्वदा उपादेय निश्चित करता हुआ, उस ओर परम रुचि रखता हुआ गृहस्थ की व्यावहारिक पौद्गलिक रचना में चलता हुआ भी उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रचना से स्वयं को उसीप्रकार पृथक् रखता हूँ, जिसप्रकार जल में रहता हुआ कमल स्वयं को जल से पृथक् रखता है। इस समय मेरी अवस्था उस कैदी के समान हो रही है, जिसका कैद से छूटने का काल निश्चित हो गया है।

श्री केवली और श्रुत-केवली की पाद-सेवा के प्रसाद से जब अनंत संसार के कारणभूत मिथ्यात्व की सहकारी अनंतानुबंधी कषाय संबंधी चार प्रकृतिआँ और दर्शन-मोहनीय की तीनों प्रकृतिआँ मेरी सत्ता से दूर हो जाएंगी; तब मैं क्षायिक सम्यक्त्व का भोगी होकर अधिक से अधिक ८ वर्ष एक अंतर्मुहूर्त कम २ कोटि पूर्व और ३३ सागर काल पर्यंत पूर्व संस्कार के वश हो पुद्‌गल को इधर से उधर करता हुआ, अंत में सिद्ध निरंजन परमात्मा हो जाऊँगा।

यदि इन सातों में से छह के उपशम और एक सम्यक् प्रकृति के उदय से क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी हो गया तो भी उत्कृष्टतया कुछ अधिक ६६ सागर पर्यंत ही जड़ के अखाड़े में कसरत करता हुआ तदनंतर मोक्ष-महल में पहुँच जाऊँगा। यद्यपि इस दशा में चल, मल, अगाढ़ दोषयुक्त रहूँगा; तथापि अपनी सम्यक्त्व भूमिका का त्याग नहीं करूँगा।

इन दोनों से पृथक् औपशमिक सम्यक्त्व मुझे एक अंतर्मुहूर्त ही स्वरूप निश्चयालम्बी रख, तत्पश्चात् अपनी निर्मल परिणति से पतित कर यद्यपि मिथात्व, सासादन, मिश्र या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में रख देगा; तथापि एक बार अपने भंडार के दर्शन कर लिए होने से अब तो अवश्य ही गिरते, पड़ते, चढ़ते, उतरते जैसे बनेगा वैसे अपने भंडार को अपना बनाकर, उस पर अचल अधिकार जमा कर, परद्रव्य तो क्या ? परद्रव्यों संबंधी समस्त वासनाओं को पूर्णतया नष्ट कर दूँगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस चौथी श्रेणी की जय हो; जिसमें आते ही यह जीव संसार से पृथक् हो जाता है। इस गुणस्थान में जो जीव ठहरते हैं, वे स्वयं को सिद्ध-समान ही समझते हैं। उनका स्वरूपानुभव सिद्धपरमात्मा के आनंद की जातिवाले आनंद को प्राप्त करता है। इस अद्भुत सुख का भोगी यह आत्मा मनुष्यगति में क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य, शूद्र के कर्म करता हुआ; पशु अवस्था में सिंह, व्याघ्र, बैल, बंदर, हाथी आदि की पर्याय में जीवन बिताता हुआ; नरकगति में नारकिओं द्वारा सतत मार-काट सहता हुआ; देवगति में इंद्रिय-जनित सुखों को भोगता हुआ भी अपने स्वरूप की परमभक्ति से च्युत नहीं होता है।

यह अपने आत्मा को अपनी देह और पुद्गल-विकारमय राग-द्वेषादि से आकाशवत् पृथक् मानता हुआ, अपने अनंतगुणों में ही रंजायमान होता है। अपनी शिव-रमणी में ही आसक्त रहता हुआ; उसी के स्मरण में अन्य जगत को तुच्छ गिनता हुआ यह आत्मा अनुभवानंद का स्वाद लेता रहता है॥२०॥

२१. श्रावक का मोक्ष-महल में प्रवेश – आनंद-प्रदायिनी, साधु-मन-मोहन-रूप-धारिणी, अप्रमाण/असीम शांत कला-स्वामिनी, अद्भुत-स्वरूपवान नारी के रूप में मोहित हो एक जीवात्मा; उसके शांत सरोवर और सुगुण उपवन सहित दस मंजिलवाले महल के द्वार पर आकर उस नारी से मिलने की गाढ़ रुचि के कारण उद्यमशील हो रहा है। वह परम प्राण-प्यारी दस मंजिलवाले महल के शिखर पर विराजमान है। जो कोई साहस कर इस महल के ऊपर तक चढ़ सकता है; वही इस नारी से सम्मिलन का लाभ ले सकता है।

शिव-नारी में आसक्त चित्तवाला यह मोही, सांसारिक सर्व संयोगों को हेय जानता हुआ और अपनी परिणति में वैराग्य की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कान्ति को विस्तृत करता हुआ, इस महल पर चढ़ने की भावना करके अपना पग आगे बढ़ाता है। इस महल की मंजिलें अति विकट और घुमावदार बनी हैं। जिसके सामने अप्रत्याख्यानावरण कषाय अपना बल चलाने में असमर्थ हो जाती है; वही बलशाली इस महल की पहली मंजिल में जा सकता है।

महल की इस पहली मंजिल के ग्यारह भाग हैं। अशक्त/अल्पशक्तियुक्त मनवाला यह क्रम-क्रम से उन पर चढ़ने का व्यापार करता है। कषाय-अंशों की जैसे-जैसे हीनता होती जाती है; वैसे-वैसे ही यह आगे-आगे बढ़ता हुआ ग्यारह विभागों को पार कर लेता है। जैसे-जैसे यह चढ़ता जाता है; वैसे-वैसे ही शिव-नारी से मिलने की आशा को बढ़ाता जाता है तथा उसी के अनुसार शिवानंद की गाढ़ रुचि इसे आनंद प्रदान करती जाती है।

अष्ट मूलगुणधारी और सप्त व्यसन का त्यागी होकर यह पंच परम आत्मस्वरूप अनुभव-कारकों में भक्ति रखता हुआ पहली मंजिल के पहले भाग को प्राप्त कर लेता है।

तत्पश्चात् अतिचार रहित पंच अणुव्रत और सात शीलों का अभ्यास करता हुआ यह दूसरे भाग का पात्र होता है। इस भाग में चलनेवाला गृहस्थ षट्प्रकार-आजीविका को साधकर, अर्थ और काम पुरुषार्थ की भली-भाँति सिद्धि करता हुआ सामायिक, देवपूजा, स्वाध्याय आदि के द्वारा इंद्रिय-विषयरहित आनंद का स्वाद भी लिया करता है। महामुनिओं तथा त्यागिओं की भक्ति और वैयावृत्त्य में उत्साहित रह अपनी ज्ञान-वैराग्यशक्ति को बढ़ाता जाता है।

तीसरे भाग में आकर त्रिकाल दो घड़ी (४८ मिनिट) पर्यंत सामायिक का आरंभ कर आत्मीक-रस को प्राप्त करता रहता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चौथे में आकर प्रत्येक पर्व-तिथी में उत्कृष्टतम सोलह प्रहर (४८ घंटे) पर्यंत गृह-आरंभ-व्यापार का त्याग कर शिव-नारी का ध्यान्न किया करता है। पाँचवें में आकर उदरपोषणार्थ सचित्त भोजन-पान से भी विरक्त हो जाता है। यह दया चित्तधारी छठवें में आकर मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनापूर्वक रात्रि में चारप्रकार के आहार का त्याग करता है।

जो पहले अपने कषाय-अंशों की अधिकता के कारण उदासीन वृत्ति से जिस नारी का सेवन करता था; वह इस सातवें भाग में आकर अपनी शिव-नारी के प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण उस नारी-सेवन को भी त्याग देता है और ब्रम्हानंद में आचरण करने के लिए ब्रम्हचारी हो जाता है।

जिस आरंभ के कारण अल्प समय के लिए स्वस्थ-चित्त हो पाता था; इस आठवें भाग के मैदान में आकर, उस आरंभ को अपना विरोधी जानकर छोड़ देता है। नवमें भाग में परिग्रह की गठरी को पृथक् कर उसकी भी चिंता से मुक्त हो जाता है। दशवें भाग में आकर सभी प्रकार के आरंभिक कार्यों में अपने मन, वचन, काय से सम्मति देने का त्याग कर देता है।

दशवें भाग को पार कर जब ग्यारहवें भाग में आता है; तब क्षुल्लक अथवा ऐलक की पद्धति से अपना जीवन बिताता हुआ इस पहली मंजिल के उपरितन भाग में रह अत्यंत आनंदित होता हुआ अपना अहोभाग्य मानता है; स्वयं को धन्य मानता है कि अब मैं अपनी प्राण-प्यारी से शीघ्र मिलूँगा। इस खंड पर चढ़ना अति कठिन था। इस खंड पर विश्राम करता हुआ यह पंचम गुणस्थानवर्ती आगामी मंजिल पर जाने के लिए उत्साहित रहता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह निश्चय-साधक व्यवहार का पूर्ण सम्मान करता हुआ, शिव-तिया में आसक्त, सम्यक्त्वधारी, स्वगुण विहारी जीवात्मा पहली मंजिल की अत्यंत मनोहर शोभा को देखता है और प्रतिसमय अतीन्द्रिय आनंद को ही उपादेय मानता हुआ उसी की वासना में दत्तचित्त रहता है। इस मोही की वृत्ति भी सांसारिक वृत्ति से विलक्षण होती है। स्वात्मानुभव में इसकी स्थिरता संबंधी रुचि बढ़ती जाती है।

अपनी स्वरूप-शैया पर शयन करता हुआ, शिव-नारी के ध्यान में लीन हो आत्माराम की सैर करता हुआ, अपनी अंतर्दृष्टि द्वारा तीनों लोकों की वस्तुओं से अपना स्वभाव पृथक् करता हुआ यह अंतरात्मा, अपने अनुपम हर्ष के रंग में उन्मत्त हो ऐसा बन जाता है मानो अपने स्वरूप से बाहर किसी को जानता ही नहीं है। जगत के प्रति अंधवत्; परंतु स्वरूप का ज्ञाता-दृष्टा यह सम्पूर्ण बाह्य औपाधिक भावों से भिन्न रह, अपने निर्मल भाव में निजत्व को विस्तृत करता हुआ, स्वरूपावलम्बी रह अनुभवानंद का स्वाद लेता है। धन्य है यह पुरुष ! जिसने अपने पुरुषार्थ के बल से इस उच्च स्थान को प्राप्त कर लिया है।

जो कोई व्यवहारी इस स्वगुण-स्वादी का हृदयत: आदर करते हैं; वे भी कालांतर में स्वरस-ग्राही होकर अनुभवानंद का स्वाद लेंगे; इसमें कोई शंका नहीं है, इसमें कोई उसका विरोधी नहीं है। श्री परमात्मा की अद्भुत कृपा से यह अनुभवानंद जयवंत रहो।

इस प्रथम मंजिल सम्मुखी-स्वाद की कामना चौथे गुणस्थानवर्ती देव, नारक, नर और पशु किया करते हैं। जो जीव इस अनुभवानंद के रस को एक क्षण के लिए भी प्राप्त करते हैं; वे धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं, अनुमोदनीय हैं॥२१॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२२. प्रमत्त संयमी की अशक्तता/अल्पवीर्यता – अनुभवानंद का सागर, परमात्मस्वरूप-शुद्धता का अवलम्बी, स्वगुण समाधानी, आत्मज्ञानी, अभेद रत्नत्रयस्वरूप मैं हूँ – इस मान्यता का प्रकाशी जीव व्यवहार पथ में अपने उपयोग का अधिक दुरुपयोग होता जान; शांत, वैराग्यमय आत्मज्ञान मिश्रित उपयोग के विघ्नकारक द्रव्य और भाव पर्यायों से मोह हटा, पाँचवीं श्रेणी से सातवीं श्रेणी में आता है। जैसे किसी अत्यंत मिष्ट जल के इच्छुक को पहले उतना मिष्ट जल नहीं मिलता था; अब अपने अभिप्राय के अनुरूप मिष्ट जल को पाकर वह उसे अत्यंत अनुरागपूर्वक जी भरकर पीता है, तदनंतर वहाँ से हट जाता है; उसीप्रकार अत्यंत शुद्ध भावों का इच्छुक यह अंतरात्मा जब सातवीं श्रेणी में अपने अभिप्राय के अनुरूप शुद्ध भावों का अवलंबन पाता है, तो अपनी शक्ति भर उन भावों द्वारा आत्म-रस पिए बिना वहाँ से नहीं हटता है। शक्ति के अभाव में हटकर छठवे प्रमत्त गुणस्थान में आ जाता है।

इस गुणस्थानवर्ती आत्मा को गृह-फंद के मोह-जाल में नहीं फंसानेवाले और राग की रंगत से दूर रखनेवाले बाह्य अनेक कारण विद्यमान हैं। इनका शरीर यथा-जात नग्न है, आकाश ही उनका शरीराच्छादक वस्त्र है। निर्मल भूमि, पाषाण, शिला या तृण-संस्तर मात्र ही उनकी शैया और आसन है। वन-वृक्षों के तल, कोटर, वन-खंड, पर्वत, गुफा, एकांत उपवन तथा जिन चैत्यालय ही उनके निवासस्थान हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रम्ह और परिग्रह से ये सर्वथा दूर हैं।

आत्म-मनन को नहीं भुलाते हुए ये भूमि देखकर गमन करते हैं; हित, मित, प्रिय वचन बोलते हैं; निर्दोष और निरंतराय भोजन करते हैं; पीछी, कमंडलु, पुस्तक आदि को निरीक्षण कर रखते-उठाते हैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा भूमि देख-शोध कर ही मल, मूत्र आदि का क्षेपण करते हैं। अपनी पाँचों इंद्रियों को अपने अधीन कर सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, वंदना, स्तुति और कायोत्सर्ग रूप छह आवश्यकों को करते हुए; दिन में एक बार, याचना किए बिना, खड़े-खड़े, अपने हस्तरूपी पात्र में ही भोजन करते हैं। स्नान, दंतमंजन आदि शृंगार के कारणभूत विकल्पों का त्याग कर, जन-वस्ती/गृहस्थों के निवास-स्थानों से पृथक् रह, सदा शुद्धता के धारक ये आवश्यकतानुसार स्वहस्त से अपना केश-लोंच करते हुए; अपने अंतरंग निर्मल भावों के विरोधी भावों से अपनी रक्षा करने के लिए परम प्रीतिपूर्वक इन २८ मूलगुणों का पालन करते हैं।

इन मूलगुण पालक निर्ग्रंथ साधु की वृत्ति परम आश्चर्यरूप है। कभी यह सिद्धलोक में जाता है तो कभी संसार के आँगन में आ विराजमान होता है। थोड़े-थोड़े समय बाद ही चढ़ना-उतरना होता रहता है। कभी ये साधु सातवीं सीढ़ी में जा ध्यानस्थ हो जाते हैं तो पुनः शक्तिहीनता से छठवें में आ जाते हैं। यद्यपि इनके आहार, विहार, निहार आदि क्रियाएँ होती हैं; तथापि स्वयं को उनका कर्ता-भोक्ता नहीं मानते हुए ये उनसे सदा विरक्त रहते हैं। स्व-स्वभाव रूप शक्ति के धारी ये अपने स्वाभाविक भावों के ही कथंचित् कर्ता-भोक्ता बनते हैं।

परिणामों की यह निर्लिप्त जाति ही निर्जरा अधिक कराती है और इन्हें कर्म बंधन से बचाती है। यदि संज्वलन कषाय-वश बंध होता भी है तो वह शीघ्र छूटनेवाला, निर्बंध के समान ही है।

अपने शुद्ध, वीतराग अभेद रत्नत्रय स्वरूप भाव को ही अपने शुद्ध भावों का साधक मानते हुए ये साधु शरीर संबंधी २२ परीषहों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को सहते हुए भी आनंद मानते हैं। जन समाज के कटुक वचन इनके आत्मीक उपयोग का भेदन नहीं कर पाते हैं। अज्ञानिओं द्वारा प्रहार किए गए शस्त्र, लोष्ट (मिट्टी के ढेले) आदि यद्यपि इनके तन का छेदन कर देते हैं; तथापि आत्मीक धर्म को विकृत नहीं बना पाते हैं।

शिव-नारी की आसक्ति में सकल जगत को विस्मृत करनेवाले, लोगों की दृष्टि में उन्मत्त से दिखनेवाले, परम साध्यभाव के उद्यमी ये साधु निश्शंक रह, शिव नगरी की ओर कदम बढ़ाए चले जाते हैं और सदा ही परम रुचिरूप सम्यक्त्व के बल से स्वरूपाचरण में स्थिर रह, निजरस का स्वाद लेते हुए, पराधीन आनंदों से अतीत, अनुभवानंद का भोग करते रहते हैं॥२२॥

२३. अप्रमत्तविरत की भावना – ज्ञान-दीप को हृदयरूपी हाथ में लिए हुए, स्व-स्वभाव-अनुरागी, जगत के षट्द्रव्यमय प्रपंचों में भ्रमण करते हुए तथा निज जातीयत्व का सभी से पृथक् अवलोकन करते हुए चैतन्यराजा भेदज्ञान की अग्नि जलाकर, हर्षपूर्वक उसमें स्वयं को डाल देता है। जैसे स्वर्ण अग्नि में जलते हुए अपने वानभेद के द्वारा प्रतिसमय अधिकाधिक शुद्धता को प्राप्त करता जाता है; उसीप्रकार यह चैतन्य राजा भी प्रतिसमय विशुद्धता की वृद्धि करता हुआ स्वच्छता को प्राप्त होता जाता है।

आत्मज्ञानरूपी दर्पण में अपने उज्ज्वल मुख की उज्ज्वलता देखता हुआ परम तृप्त रहता है। प्रमाद और आलस्य से उत्पन्न होनेवाली हतोत्साहिता का विध्वंस कर यह निष्प्रमादी आत्मा स्वरूपानुभव में निश्चल रहता है; वीतराग स्वसंवेदनरूप भेदज्ञानजनित समाधि में स्थित होकर शुद्धात्मा की भावना करता है; परम-सामायिक का लाभ लेता हुआ द्रव्य-सामायिक के प्रयत्न में प्रमादी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस सप्तम गुणस्थानवर्ती साधु में धर्म्य-ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था विद्यमान है। यद्यपि यह संज्वलन कषाय के उदयाधीन है; तथापि वह कषाय इसके ध्यान में विघ्नकारक नहीं है। यह साधु इस निर्मल ध्यान के बल से क्षपकश्रेणी या उपशम श्रेणी पर चढ़ जाता है। परम अतिशयरूप सत्य ध्यान की ऐसी ही महिमा है।

यदि अतिशयरूप निश्चलता प्राप्त नहीं भी हुई तो अंतर्मुहूर्त के अंदर-अंदर अल्पसमय पर्यंत ध्यानस्थ रह, तत्पश्चात् छठवीं श्रेणी में आकर प्रमादी नाम प्राप्त कर लेता है; परंतु पुनः शीघ्र ही सातवें में जाकर विराजमान हो जाता है। इसप्रकार सातिशय सानंद ध्यान के अभाव में बारंबार परिणति को परिवर्तित करता रहता है। हजारों बार सातवें से छठवें और छठवें से सातवें में जा विश्राम करता है।

यद्यपि इसकी यह क्रिया परम, निरंजन, निष्क्रिय परमात्मा की निराकुल अवस्था से विपरीत है; तथापि निष्क्रियता की साधक अवश्य है। भवन-क्रियारूप है/अवश्य ही होनेवाली क्रियारूप है। शुद्धोपयोग का परम निश्चलभाव कार्यरूप है। जो जिसकी कामना करेगा, वह उस रूप क्यों नहीं हो जाएगा? अवश्य ही हो जाएगा। स्वरूप की भावना कार्यकारी है।

इस भावना में चिज्ज्योति का प्रकाश है, आत्मज्ञान का विकास है। इस भावना में ज्ञान-सुधा का सरोवर है, जिसमें संतजन स्नान कर अपना विभावमल दूर करते हैं। यह भावना निर्ग्रंथ अवस्था की, दिगंबर मुद्रा के बाह्य सहकारीकारण की आधारिणी है। अनेक संतजन यथाजातरूप का सेवन करते-करते परीषह और उपसर्ग को सहनकर, स्वरूप समाधि में अडिग रह, स्व-कल्याण करते रहे हैं। आपरूप पद आप/स्वयं ही है। अपनी पदवी में रहना सहज क्रिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वास्तव में पर-पदवी में रहना कठिन है। यह आत्मा अनेक बार अनेक पर-पदविओं को लेकर उन्हें स्थिर रखने की कोशिश करता रहा; परंतु अंत में असफल होकर निराश ही हुआ है। ऐसा होना उचित ही है; क्योंकि इसकी पदवी तो चैतन्यरूप ही है; पर-पदवी इससे पृथक् जड़रूप है। यह बलात् अपनी इच्छानुसार जड़ के परिणमन को उसके परिणमन के विरुद्ध नहीं कर सकता है; अतः स्वरूप ज्ञानी तो निज शिव प्राण-प्रिया की दृढ़ भावना में अत्यंत आसक्त हो, उसके ही प्रेम में आल्हादित रह, इंद्रियाधीन सुख-वासनाओं को रज-तुल्य तुच्छ समझता हुआ परम स्वाधीन अनुभवानंद का स्वाद ले संतुष्ट रहता है॥२३॥

२४. अपूर्वकरण की बारात – निज स्वरूपानंदी आत्मा अपनी शक्ति की व्यक्तता में अत्यंत लीन हो, अप्रमत्तगुणस्थान में सातिशयता को उपलब्ध कर अर्थात् संसारी जीव के शत्रु मोहकर्म की चारित्र मोहनीय संबंधी इक्कीस प्रकृतिओं का क्षय अथवा उपशम करना प्रारंभ कर, प्रथम अधःकरण में अंतर्मुहूर्त ठहर कर अपने परिणामों की विशुद्धि करता है। वीतराग सहजानंदरूप भेदज्ञान के प्रभाव से प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि को प्राप्त करता हुआ, कर्म-बंध की स्थिति को घटाता है। अपने मोक्षानंद के शुभराग के कारण प्रतिसमय पुण्य कर्म के रस/अनुभाग को अनंतगुणा बढ़ाता और असातादि पापकर्म के रस को अनंतवें भागरूप कम करता है।

इस अधःकरण के काल को व्यतीत कर ध्यान-मुद्रा में लवलीन, परमात्म-रस-वेदी अंतरात्मा शीघ्र ही अपूर्वकरण में जाकर अष्टम गुणस्थानवर्ती कहलाता है। इस श्रेणी में स्थित हो यह स्वरूपावलम्बी प्रतिसमय अपूर्व-अपूर्व विशुद्धता को उसीप्रकार प्राप्त करता रहता है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे अग्नि में पकते हुए स्वर्ण की शुद्धता प्रतिसमय अधिक-अधिक अपूर्व होती जाती है।

प्रथम शुक्लध्यान की श्वेतता में रँगा हुआ, शुक्ललेश्या के अतिरिक्त अन्य लेश्याओं का त्यागी, श्रुतज्ञान के अर्थों का मनन और परिवर्तन करता हुआ भी अपने शुद्धस्वरूप के रस को स्वादरूप करने से रुकता नहीं है। परम अतींद्रिय, शुद्धात्मोत्पन्न, परमानंद सुख रस के स्रोत को उपादेय जान, उसी के कारण और कार्य के विशेष पहिचान, उसी की शुद्ध भावना में अपना कल्याण मान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग में लीनता ठान, शिव-नारी का आसक्त, स्वरूप-मदोन्मत्त आत्मा निज रंगभूमि में कल्लोल करता है।

बारंबार रंगभूमि में आकर संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्वों को नृत्य करते हुए देखकर भी यह स्वरूप-वेदी उनकी उपेक्षा कर, अपने यथार्थ रूप के ही दर्शन किया करता है। उसे इन तीनों तत्त्वों में अपना नित्य रूप ही झलकता है। इसकी रंगभूमि में यद्यपि आस्रव और बंध तत्त्व भी अपना अत्यंत ही मंदरूप बनाकर आते हैं और चले जाते हैं; परंतु उनके पग की अत्यंत मंद चाल चैतन्य-राजा के चित्त को विकारी नहीं बना पाती है।

यह चैतन्य-राजा अप्रमत्तरूप रहता हुआ अपनी शिव-नारी से सम्मिलन करानेवाली अनुभूति सखी से उसीप्रकार प्रेम प्रगट करता है; जैसे कोई पुरुष अपनी होनेवाली पत्नी के पास से आई हुई सखी के साथ स्नेह कर, उससे स्नेहपूर्वक वार्तालाप कर, उस भावी पत्नी के गुण और रूप की महिमा को श्रवण कर, उस नारी में प्रतिसमय अधिक-अधिक स्नेह की वृद्धि करता है।

यह क्षपक श्रेणी में चलनेवाला शीघ्र ही शिव-महल में जाएगा;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अत: इसके रूप की मनोहारिता अवर्णनीय है। इस चैतन्य-राजा की बारात शीघ्रतापूर्वक शिव-घर को चली जा रही है। आत्मा के उत्तमक्षमादि अनंतगुण इस चैतन्य-राजा के अनंत बाराती हैं। सम्यग्दर्शन के वीतरागरूप वस्त्र पहिने, सम्यग्ज्ञान के आभूषणों से सुशोभित, सम्यक्चारित्ररूपी गज पर आरूढ़ हो यह दूल्हा अपनी अद्भुत विशाल और अपूर्व विभूति के मद में उन्मत्त होता हुआ परमाल्हादित हो, शोकादि नोकषाय और संज्वलन क्रोधादि चार कषाय को अपनी अपूर्व चैतन्य-शक्ति से दबाकर, निर्बल बनाता हुआ प्रतिसमय बारात की गति तीव्र करवाता हुआ बढ़ा चला जा रहा है।

दर्शक भव्यजीव इस दूल्हे की मनमोहनी बारात को देखकर अत्यंत प्रसन्न और उत्साहित हो रहे हैं और अनुभूति सखी से मिलने की कामना उत्पन्न करते हैं। धन्य है यह अंतरात्मा !! यह वीतरागी परम योगी योगीन्द्रों को भी अगोचर परमात्म-पद का दर्शन करता हुआ, भवानंदों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद ले परम तृप्त रहता है॥२४॥

२५. अनिवृत्तिकरण-स्वयंवर – देखे-सुने, अनुभव किए हुए भोगों की इच्छारूप निदान आदि समस्त संकल्पों का त्याग कर, निर्विकल्प निश्चल परमात्म-तत्त्व की एकाग्रभावनारूप ध्यान में लीन होकर यह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि एक-एक समय जितने सूक्ष्म काल में भी मोक्षमार्ग के अनंत पगों को पार करता हुआ, अत्यंत वेग से चला जा रहा है। इसे प्रतिसमय अपनी भेदज्ञानरूपी विवेक परिणति के बल से अपने आत्मद्रव्य के अंनतगुणों का अनुभव हुआ करता है।

इस अनुभव की तीव्रता को देखकर इसके अंदर में विद्यमान, पूर्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में ही निर्बल हो गए चैतन्य-धन के चोर विशेष बलहीन हो या तो गुप्तरूप से कहीं छिपकर बैठ जाते हैं अथवा अनुभवाग्नि की तीव्र ज्वालाओं से पूर्णतया मृत हो जाते हैं। संसारिओं को स्व-स्वरूप भावना से पराङ्मुख रखनेवाले दर्शनमोह के बल को प्राप्त नहीं करते हुए भी स्वद्रव्य-स्थिरतारूप यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति में बाधा डालनेवाले, ग्यारह कषायें और नौ-नो कषायें कर्म तो पूर्णतया ठंडा पाला पड़ जाने से बननेवाली स्थिति के समान या तो मृतरूप पड़े रहते हैं अथवा संपूर्णतया अस्त हो जाते हैं।

जगत का सर्वोत्कृष्ट बैरी, पाप का बाप लोभ कषाय कर्म अपनी कठोरता के कारण इस भव्यात्मा के अंतर्मुहूर्त पर्यंत मोक्षमार्ग में चढ़ने के परिश्रम से भी पूर्णतया उपशम या क्षय को प्राप्त नहीं हो जागृत रहता है और जब यह अपने सम्पूर्ण कषाय कर्म-भ्राताओं से छूटकर अकेला रह जाता है, तब इस भव्यात्मा को सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानावंरोही कर देता है; परंतु यह सम्यग्दृष्टि इस अनिवृत्तिकरण नामक नवमें गुणस्थान में ठहर कर भी अपना बहुत-सा मार्ग पार कर लेता है।

इस अनिवृत्तिकरण नामक गुणस्थान की कुछ ऐसी महिमा है कि इस श्रेणी में जितने ध्यानी पुरुष मोक्षमार्ग में गमन कर रहे होते हैं; उन सभी के शरीर-आकार आदि संस्थानों में विविधता होने पर भी उनकी प्रतिसमयवर्ती गति एक समान ही होती है। आहार-निहार-विहार-त्यागी, स्वद्रव्य-गुण-पर्याय-अनुरागी, स्व-रसास्वाद सागर में रागी, संसार-शरीर-भोगों से अत्यंत विरागी, परमात्मस्वरूप सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरण की एकता में पागी/आसक्त, क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति परीषहों और उपसर्गों के आक्रमण की निश्शंकता का भागी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परम ऋषि गृहारंभ-भागिनी स्त्री का त्यागी होकर भी एक विलक्षण नारी से अनुरागी है।

यद्यपि यह बाह्य में साधु है; परंतु अंतरंग में असाधु के समान राग रखता हुआ भी जगत-पूज्य-पद की योग्यता से वंचित नहीं होता है। इसका राग आकाशगत संध्या की लालिमा के समान लाल नहीं है; वरन् श्वेत-वर्णी है। शुक्ल लेश्या की प्रबलता के कारण इस राग का रंग चढ़ता नहीं है; वरन् प्रतिसमय वह राग अधिक-अधिक शुक्ल होता जाता है।

वास्तव में यह उचित ही है; क्योंकि जिस नारी पर यह आसक्त है, वह उसी की कामना करती है, जो शुक्ल वस्त्रोंवाला हो। उस नारी को अन्य वर्णों के वस्त्रों से वैराग्य है। वह स्वयं भी शुक्लता और शुद्धता को धारण करती हुई अपने तन को सफेद वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत रखती है। सदृश की सदृश में ही प्रीति होती है।

जिससमय इस आसक्त पुरुष की मुद्रा को यह नारी अपने समान अत्यंत शुद्ध, शुक्ल और साफ देखती है; उसी समय चिर-स्थाई, वज्रमणिमई, अनंत स्वाभाविक गुणरूपी दानों से पोई गई, श्वेत परम शोभित और मनहरण वरमाला को उस पुरुष के गले में डालकर उसके साथ एकासन पर बैठ जाती है। उससमय की शोभा अवर्णनीय तथा अचिंत्य है।

धन्य हैं वे परम साधु ! जो ऐसी सुंदर स्त्री से आसक्त-चित्त हो, उसी की भावना में मग्न हो परम आल्हादित रहते हैं और हम अवश्य शिव-तिया के वर होंगे – इस प्रतीति के बल पर साहस के साथ उद्यम करते हुए तथा इस उद्यम में नहीं थकते हुए, स्वरूप-समाधि के अपूर्व बल से विषय-सुखों को शून्य समझ; अतीन्द्रिय, अविनाशी अनुभवानंद का स्वाद लेते हैं॥२५॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२६. सूक्ष्म-सांपराय की विजय – स्याद्वादरूप से चिन्हित और सांसारिक दुःख-परंपरा के संचालक मोहनीयकर्म और उसके अनुयायी तीन घातिकर्मों का नाश कर अनंतसुख, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य को प्राप्त करनेवाले श्री अरंहत भगवानरूपी हिमवान पर्वत से विनिर्गत श्री जिनवाणीरूपी गंगा में धारावाही स्नान कर, अपने आत्म-तन को निर्मल करनेवाले परम योगीश्वर शुद्धोपयोग में लीन हो आनंद भवन की छठवीं मंजिल में सुशोभित रहकर संसार-नेता मोह के ज्येष्ठ पुत्र, अत्यंत बलवान लोभ का सत्या/सत्ता से नाश करने में उद्यमवान हैं।

पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यान से निकले हुए, तीक्ष्ण साम्यरूप वाणों की चोटों को बारंबार खाने से इस शत्रु का शरीर जर्जरित हो गया है। मोह के क्रोध, मान, मायारूप तीन पुत्र तो पहले ही नष्ट या मूर्छित हो गए हैं। इस दशवें गुणस्थान में तो मात्र सूक्ष्म लोभ ही अपने पराक्रम को जमाए खड़ा है; परंतु ऋषीश्वर के वाणों से निर्बल-सा होकर एक अंतर्मुहूर्त के अंदर नष्ट अथवा मूर्छित हो जाता है।

धन्य हैं ये मुनि ! धन्य हैं ये धीरात्मा !! ये ही सच्चे योद्धा हैं। इन्हीं वीरात्मा ने अपने ध्यान के परम प्रचंड शस्त्र से मोह की समस्त सेना मूर्छित कर डाली है।

यही परम निष्पृही साधु आत्मा के वीर्य को परम वीर्य मानकर, उसके बल से अपने स्वात्मानुभवरूपी दृढ़ आसन को नहीं छोड़ते हुए, विभावों की वासना से अत्यंत दूर रह, स्वभाव-सेवी हो, निर्मल अमृत का भोजन करते हुए, श्री जिनवाणीरूपी गंगा का स्वच्छ-शीतल जल पीकर, दशलक्षणरूपी धर्मवृक्ष से टकराकर बहनेवाली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शांततारूपी वायु का श्वासोच्छ्‌वास लेते हुए, परमात्मा होने की पूर्ण रुचि में लीन हो, ज्ञान-वैराग्यरूपी मसालों से अत्यंत स्वादिष्ट, अनुभवानंदरूपी व्यंजनों का भक्षण कर स्वात्म-तन की परम शोभा का विस्तार कर प्रफुल्लित हो रहे हैं॥२६॥

२७. उपशांतमोह की क्षणिकता – परम-प्रतापी परमात्मारूपी सूर्य के ज्ञान-तेज का सेवन कर, स्व-संवेदनज्ञानरूपी निर्मल चंद्रमा की शांत कान्ति का दर्शन कर; स्वरूप तृप्तताकारक, स्वात्मजनित सुधा का भोजन-पान कर एक सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा, अपने आत्म-तन को दृढ़ बनाए हुए, वीतराग-विज्ञानता के तीक्ष्ण भाले के अभ्यास से स्वयं को मदिरा पिलाकर बेसुध करनेवाले मोहशत्रु के पुत्र-पौत्रों रूपी २५ कषायों के आक्रमणों को टालते हुए; उन सभी को इधर-उधर मूर्छित कर तथा मोह-शत्रु को स्व-पुत्रों की मूर्छा के उपचार में छोड़, आनंद भवन की सातवीं मंजिल पर चढ़ विश्राम लेता है।

स्वरूप-मनन में स्थिरता प्राप्त कर और अपने स्वभाव का निर्मल अवलोकन कर यह स्वगुणानंदी यथाख्यातचारित्र की पदवी को भोगता हुआ, उपशांतमोह गुणस्थानी कहलाकर, मुक्ति कन्या के वरण हेतु उत्साहित होता हुआ, उसके रूप के चिंतन में मग्न हो जब स्थिर होता है, तब एक अंतर्मुहूर्त के अंदर ही, मूर्छा-प्राप्त मोह शत्रु के पुत्रों में से बड़ा पुत्र संज्वलन लोभ मूर्छा को छोड़कर अत्यंत वेग से झपटता है और अपने मोह-पाश में उसका गला फसाकर, सातवीं मंजिल से छठवीं मंजिल पर ले आता है।

इतने में अन्य पुत्र-पौत्र भी सचेत हो जाते हैं और इसके भाले की चोटों से जर्जरित होने के कारण क्रोधित हो सभी मिलकर इसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धीरे-धीरे गिराते हुए आनंद-भवन के नीचे कर देते हैं; इतने में ही मिथ्यात्व नाम का प्रबल वैरी आकर इसे आपत्ति-महल में ले जाकर गिरा देता है।

सत्य है, अग्नि को और शत्रु को दबाकर रखने से वे अपना नाश करते ही हैं। इनका तो सर्वथा क्षय ही बाधा-हारी है। ग्यारहवें रुद्र महादेव भी इसीप्रकार धोखे में आकर सप्तम मंजिल पर्यंत चढ़कर, वहाँ से गिरकर पुनः संसार-परंपरा में उलझकर, अतीन्द्रिय आनंद को छोड़ इंद्रियों के क्षणिकसुख में लुब्ध हो जगत में अपमान और हास्य के पात्र हुए हैं।

धन्य हैं वे परम साधु ! जो इसप्रकार के अपमान से स्वयं को बचाकर, अपने बल से पुनः चढ़ जाते हैं और अब भेदज्ञान की तीक्ष्ण खड्ग से मोह के क्षयहेतु उद्यमी होते हैं। जिन्हें मुक्ति-कन्या का वरण कर अनंतकाल पर्यंत सुधा-समुद्र में ही गुप्त रहना है; वे तो हजार उपाय करके भी अपनी परिणति को पुत्र, पत्नी, मित्र, शरीर आदि सभी से हटा; आत्मा को परमात्मारूप देखने में ही लगाकर, सांसारिक सुखों से विपरीत अनुभवानंद का स्वाद लेते हैं॥२७॥

२८. **क्षीणमोही अर्जुन का विश्राम** – अंध धृतराष्ट्र-मोह के पुत्रों का समररंग में विध्वंस कर चैतन्य-अर्जुन अपने ध्यान-वाण की प्रशंसा करता हुआ, उसी ध्यान-वाण की निराली एक तान में स्थिर हो एकत्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यान को प्राप्त कर गतकाल में घटित घटनाओं से उपयोग को हटाकर, शिवमहल की निर्विघ्न आठवीं मंजिल में जा विश्राम करता है। वीतरागता की मनोहर सुंदरता उसके मुख-कमल को प्रफुल्लित कर रही है।

मोह-विजयी इसके अमित तेज-प्रभाव से जगत के सम्पूर्ण सुगुण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसका आश्रय लेने के लिए परम उत्सुक हो चले आ रहे हैं। त्रिलोक राज्य की राजधानी हस्तिनागपुर के कपाट अर्थात् आवरण शीघ्र ही दूर होनेवाले हैं। इस महात्मा की शुक्लध्यानरूप बिजली अपने एक अंतर्मुहूर्त मात्र के परिश्रम से ही सम्पूर्ण स्वाद-सुख-विरोधकों को विध्वंस कर देगी। यह महात्मा अपनी प्राण-वल्लभा, सुमतिरानीरूपी द्रोपदी सती के अद्भुत शील को निष्कलंकित पाकर, उससे परम सत्य प्रीति विस्तृत करता है और उसे बारंबार धन्यवाद देता है कि उसने इसके कुल की लाज/इज्जत को, अनेक कुमति कुलटा के शत्रुओं द्वारा विघ्न आने पर भी स्थिर रखा है।

यह महात्मा अब संसार-परिपाटी मोह की फाँसी में अनंतकाल पर्यंत भी फसनेवाला नहीं है। अपने महान परिश्रम के फल को प्राप्त कर परम संतुष्ट, परम निष्कषायी, योगीश्वरों में श्रेष्ठ, क्षीणमोह गुणस्थानधारी, स्वात्माराम विहारी, परम अविकारी, निर्विकल्पता मंडप संचारी, परम स्वादिष्ट आत्माधीन सुख-भोग-अनिवारी, अपनी अपार महिमा के साथ सम्यग्ज्ञान की मनोहर शैया पर लेटा हुआ, यथाख्यातचारित्र की अत्यंत सूक्ष्म चादर को ओढ़े हुए, पंचेन्द्रिय अतीत अतीन्द्रियरस के विलास से पुष्टता धारण करता हुआ यह उत्तम ऋषि समस्त भव-बीज, आकुलतारूप सांसारिक आनंदों से अतीत अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥२८॥

२९. सत्यार्थ अरहंतदेव – स्व-समय निर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार से कार्यसमयसार की प्राप्ति कर, अपने आत्मीक रसानुभव के विरोधी चारघाति-कर्मों के नाश से पूर्ण प्रकाश का लाभ कर यह आत्म-सूर्य स्व-तेज के प्रभाव और आकर्षण से त्रिलोकवर्ती भव्य प्राणिओं के मुँदित हृदयकमल को प्रफुल्लित करता हुआ उन्हें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपना निकटवर्ती बनाता है। शत इंद्र परम आल्हाद से इस अमित तेज भानु की उष्णता से पुष्ट होने के लिए अपने परिवार सहित आकर सूर्यमंडल समवसरण की भूमि में स्थित हो दिव्यवचन किरणावलिओं का लाभ ले अपने अंतःकरण को पुष्ट करते हैं।

इन तेरहवें गुणस्थानधारी जिनेंद्र आत्मा की महिमा वचन-अगोचर, अगाध है। जिस निजात्मदेव को ये बारहवें गुणस्थान पर्यंत परोक्ष दृष्टि से देखते थे, उस देवाधिदेव को ये प्रभु अब साक्षात् अवलोकन कर प्रत्यक्षीभूत करते हैं। जिसे प्रत्यक्ष देखने की कामना करते हुए भी दीर्घकाल से जिसका मात्र परोक्ष विचार ही करता था; सहसा वह प्राण-प्रिया उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गई हो तो उस व्यक्ति को कितना आनंद होगा ?

इस त्रिलोकीनाथ के सुख की महिमा अपार है। शिवकन्या के मनोहर महल की नवमीं मंजिल पर यह पहुँच गया है। मात्र एक मंजिल को पार करने के बाद ही यह शिवकन्या से परम संभोग के आनंद को अनंतकाल पर्यंत एक ही स्थान में विराजमान हो प्राप्त करेगा। इस समय परमौदारिक शरीररूप घर में स्वयं को व्याप्त रख ये चिदानंद प्रभु भव्यजीवों के पुण्य प्रभाव से, अपनी इच्छा के बिना ही आत्मीक धर्म-स्रोत की निर्मल अमृतरूप वृष्टि करके जीवों के अनादि अज्ञानतम को विध्वंस करते हैं।

इस समय इन प्रभु के अलौकिक अतिशयों का समागम है। धन्य है यह आत्मानुभव ! धन्य है यह परम शुक्लध्यान !! धन्य है यह उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधि !!! जिसके प्रभाव से कोसों पर्यंत के जीवों के परिणामों की द्वेषाग्नि शांत हो गई है; प्राकृतिक वैरी भी परस्पर मित्रता का व्यवहार कर रहे हैं; वनों में शुष्क और फलरहित वृक्ष भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस समय हरे-भरे और फूलों-फलों से विकसित प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कोसों पर्यंत के जीवों की दरिद्रता प्रयाण कर गई है।

इन आत्मप्रभु की महिमा इन्हीं के ज्ञान-गोचर है, जो स्वयं इन प्रभु से अपनी अंतरंग लौ लगाकर, पंचेंद्रिय ग्रामों को प्रलय कर समाधि के सागर में निमग्न हो जाते हैं। लोकालोक के ज्ञान से परिपूर्ण यह ज्ञान-सूर्य अपने परम तेज के कारण सभी प्रकार की अज्ञानता से पूर्णतया रहित है। यह सत्य ही है; क्योंकि जहाँ पूर्ण प्रकाश है, वहाँ अंधकार का अंश संभव ही नहीं है। भव्यात्मा ऐसे ही आत्मदेव को सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी कहकर अपना आप्त अर्थात् पूजने-योग्य देव मानते हैं तथा इनके अतिरिक्त अन्य समस्त सांसारिक रागी-द्वेषी देवों को मोक्षमार्ग में सहायक नहीं जानते हैं।

स्वात्मानुभव के उत्कृष्ट फल-भोक्ता श्री अरहंतदेव परमात्मा जीवन्मुक्त अवस्था में रहकर, अनेकों को कल्याण-पथ प्रदर्शित करते हुए अपनी प्रिय सखी अनुभूति से वार्तालाप करते हुए, अनुपम, निर्विकार, स्वाधीन अनुभवानंद को उपलब्ध कर परम आल्हादित हो रहे हैं॥२९॥

३०. अयोगकेवली – शिव महल की दशमीं मंजिल में विराजमान चतुर्दश गुणस्थानवर्ती वहाँ अ, इ, उ, ऋ, लृ – इन पाँच लघु अक्षर उच्चारणमात्र समयपर्यंत स्थित रह तृतीय और चतुर्थ शुक्लध्यान के बल से पहले ७२ और बाद में १३ कर्म-प्रकृतिओं को अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप की शक्ति से बिना किसी प्रयत्न के दूर करते हुए ये शुद्धात्मा समस्त मल से रहित हो, निर्मल दर्पण-समान परम सुंदर होकर शिवमहल के शिखर पर जाते हैं और शिव-नारी से मिलकर अकथनीय आनंद को प्राप्त करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसके स्नेह के वश हो समस्त विषय-सामग्री को त्याग कर ये मुनि वन और पर्वत की गुफाओं में वास करते थे और प्रतिसमय वही रटन वही लौ लगा रखी थी कि जैसे भी हो; परम तृप्तताकारिणी, स्वाधीन सुख-विस्तारिणी, अनंतकाल पर्यंत भी संयोग को नहीं छोड़नेवाली शिव-तिया से मेरी भेंट होना ही चाहिए। आज उसी अद्‌भुतरूप धारिणी शिव-तिया को प्राप्त कर इन सिद्धपरमात्मा को जो स्वजन-सुख का अनुभव हो रहा है; उसकी तुलना करने के लिए जगत में कोई भी पदार्थ नहीं है।

तीनलोक की प्रभुता के धारण करनेवाले परमात्मा सर्व संकल्प-विकल्पों से रहित हो, निर्विकल्प, प्रमाण-नय-निक्षेप के व्यावहारिक कथनों से अतीत, शुद्ध स्वर्ण के समान परम शुद्ध, निर्द्वंद्व और निराबाध हो जाते हैं। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंत-वीर्यमयी मुख्य गुणों के आधाररूप परम सूक्ष्म रसमयी, स्व-अवगाहना संयुक्त पर को अवगाहना देने में समर्थ, अगुरुलघुगुण से व्याप्त, परम अव्याबाधमय रह, अनंतकाल पर्यंत स्वभावजन्य परमतृप्तता का संभोग करते हैं।

वे न तो पर-वस्तुओं के कर्ता हैं, न जगत के न्यायकर्ता हैं और न ही अपने शुद्ध प्रदेशों से लोक-व्यापक हैं। वे पवित्रात्मा कर्मांजन से रहित हो अपनी शुद्ध परिणति रानी के साथ ऐसे एकमेक हो जाते हैं कि द्वित्व का नाम-निशान भी नहीं रह जाता है। वे परम मोक्ष पुरुषार्थ का लाभ ले अत्यंत कृत-कृत्य, कृतार्थ हो स्व-रस-मग्न हो जाते हैं; स्व-समयरूप कार्यसमयसार को प्राप्त कर अजर-अमर हो पंचपरावर्तनरूप संसार के संसरण से रहित हो जाते हैं।

परम ब्राम्हण, ब्रम्हचारी होकर भी ये शिव-नारी का वरण कर गृहस्थी का सा चरित्र करते हैं। षट्‌गुणी हानि-वृद्धि का व्यापार कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सतत परम अमृत रसमय धन का लाभ लेते हैं और उस धन से स्वयं को और स्वयं से अपृथक्भूत शिव-नारी को तृप्ति देनेवाली, परम आल्हादित करनेवाली स्वरूप-संभोग की सामग्री उपलब्ध कर निराकुल रहते हैं तथा शांत, कोमल समता की शैया पर शुद्ध गुणों की चादर बिछा, शुद्ध परिणामों की रजाई ओढ़कर अपनी निजरूप मयी शिव-तिया के साथ कल्लोल करते हैं। जगत के क्षणिक आनंदों से अतीत, परम अनुभवानंद का अनुभव करते हुए, स्वयं को स्वयं के समान सर्वथा शुद्ध देखते हुए उत्कृष्ट ब्रम्हचारी की दशा में रह, स्वाधीन आनंद का विलासी बन, परमोत्साहित और परमगुणानंदी रहता है॥३०॥

३१. शिव-तिया-संगम – पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल – इन पाँच द्रव्यों में छिपा पर इनसे पूर्णतया पृथक् यह आत्मा अपनी परमात्म-शक्ति को परिपूर्ण मानकर, अपने सहायक, अपने आश्रय में स्थित समस्त गुणरूप सेवकों को साथ लिए हुए अपने सत्ता-मैदान में उपस्थित हो; स्वयं की असावधानी से, स्वयं में प्रविष्ट मोह-शत्रु और उसकी सेना को भगाने के लिए उद्यमशील हो गया है।

मोह-शत्रु कायर है, यह आत्मा सर्वोत्कृष्ट वीर है। मोह-शत्रु अज्ञानी है, यह आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। मोह-शत्रु अधीर है, यह आत्मा धीर-वीर है। मोह-शत्रु अतृप्त है, यह आत्मा अत्यंत तृप्त-संतोषी है। मोह-शत्रु आकुलता-कारक है, यह आत्मा निराकुलता का ही साधक है। मोह-शत्रु मिथ्यारूप है, आत्मा यथार्थ सम्यक्त्ववान है। मोह-शत्रु बाधा-प्राप्त है, आत्मा अव्याबाध और निर्विघ्न है। मोह-शत्रु अपनी रंगत को बाहर दिखाकर स्थूलता प्रगट करनेवाला है; आत्मा अत्यंत गुप्त, मन-इंद्रियों से अतीत रह सूक्ष्मता का संभोगी है। इसप्रकार इन दोनों के बलों में अत्यधिक अंतर है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यही कारण है कि सत्ता मैदान में आत्मा की सर्वांग सुंदर, शांत मुद्रा देखकर, मोह अपना मुँह छिपाए रहता है; उसका संपूर्ण तन भय से काँपा करता है और गुप्त रह कर ही अपनी ओर के योद्धाओं को आत्म-वीर का सामना करने के लिए भेजता है। क्रोध, मान, माया, लोभ – इन चार सुभटों और हास्यादि नो कषाय वीरों में से जो भी आत्म-वीर के सम्मुख आता है; वही इस आत्मा की अभेद रत्नत्रयरूप परम सामायिकभाव की फुँकार खाते ही डर कर भाग जाता है।

यह आत्म-वीर सत्ता-मैदान में अत्यधिक सावधान होकर खड़ा रहता है। यदि कोई इधर-उधर से निकट आ भी जाता है तो यह उसे सम्यग्ज्ञान की खड्ग से खंडित कर देता है। यदि कोई विषय-इच्छारूप डायन इस आत्मा पर अपना दाव फैंकती है; तो यह धीर-वीर उसीसमय वैराग्य की ढाल से उस चोट को पीछे पटक देता है।

मन, वचन, काय की गुप्तिमय त्रिगुप्तिरूप संवर के अश्व पर सवार हो मैदान में खड़ा-खड़ा यह आत्मा किसी भी कर्म-शत्रु को अपने पास ठहरने नहीं देता है। जो भी आते हैं, वे यों ही अपना सा मुँह लेकर चले जाते हैं। अपने सत्ता-मैदान में छिपकर बैठे शत्रुओं को दग्ध करने के लिए यह निर्मल ध्यान की ऐसी अग्नि वहाँ लगाता है; जिसकी लपटें स्वयं आत्मा और उसके अनंतगुणों को तो दग्ध नहीं करती हैं; परंतु उस मैदान की अनेक झाड़िओं में छिपे शत्रुओं को जला डालती हैं।

इसप्रकार मैदान में पर की वासना भी शेष न रख यह आत्म-वीर अपने तेजमय अत्यंत तीव्रगामी संवर अश्व पर चढ़, अपनी प्रिया मंगलमति मुक्ति-तिया के द्वार पर पहुँच जाता है और शीघ्रतापूर्वक उस अश्व से उतर कर शिव-नारी से मिलता है। वहाँ उसके साथ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परस्पर ज्ञानानंद की गोष्ठी कर, सम्पूर्ण विकल्पों से अतीत, सहज, स्वाभाविक, अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥३१॥

३२. मेरा भाग्योदय – हाय ! आज मैं महा आश्चर्य में हूँ !! वनों और पर्वतों की गुफाओं में रहते हुए तथा शिलाओं पर तप तपते हुए मुझे कितने वर्ष बीत गए हैं; परंतु अभी तक कष्ट ही कष्ट प्रतीत हुआ है। दूसरों को तो अनेक ऋद्धि-सिद्धिआँ भी हो जाती हैं; मैं अभी तक क्यों रिक्त रहा ?

आ हा !! सत्य है। जिस स्व-संवेदन ज्ञान के द्वारा यह जीव सम्पूर्ण जगत को स्वयं से पृथक् करता है, जिस सम्यग्ज्ञान के द्वारा यह जीव पर-स्वरूप से अपने भाव को हटाता है, जिस आत्मज्ञान के द्वारा यह जीव स्व-स्वरूपावलम्बी होता है, जिस आत्मानुभव के द्वारा यह जीव सहज, स्वाभाविक, निर्मल और बंधरहित अमृतमय सुख का स्वाद लेता है तथा जिस स्वभाव परिणति के द्वारा यह जीव इंद्रादि और चक्रवर्तिओं की संपदा और इंद्रियजनित भोगों को भी अपने मनन के विरोधी और बंधकारक समझता है; वह आत्मज्ञानरूपी दीपक अभी तक मेरे हृदय-मंदिर में प्रज्वलित नहीं हुआ है।

मुझे अलौकिक ऋद्धिओं से क्या प्रयोजन है ? वे हों या नहीं हों; मुझे उनसे क्या ? जिन आत्मज्ञानी योगिओं को ये ऋद्धिआँ हो भी जाती हैं, वे भी इनसे अपनी महानता कहाँ मानते हैं ? उन्हें तो इनसे कुछ काम लेने की भी कामना नहीं होती है। सत्य है ! यह यह मेरी महा मूर्खता है !! जो मैं ऋद्धिओं की अभिलाषा करके, गृहस्थावस्था त्याग कर भी, गृहस्थ के समान ऋद्धिधारी धनवान होना चाहता हूँ। यह क्षणिक विभूति मेरे आत्मावलोकन से विलक्षण है। मुझे अब सचेत होना चाहिए और शीघ्र ही इस जगत की संपदा,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इंद्रियों की आशा और अपनी असत् मान्यता की तृष्णा को हटाना चाहिए और निर्विकल्प समाधि के आँगन में जाकर कल्लोल करना चाहिए।

इस निर्मल आँगन में नानाप्रकार के नय-विकल्पोंरूप काँटे-कंकड़ नहीं हैं; नयों के पक्ष का अभाव है तथा गुणस्थानरूप ऊँच-नीचपना भी नहीं है। इस स्वच्छ, निर्मल आँगन में ही रमण करना मेरे लिए हितकर है। इस आँगन में आते ही मेरी प्रिया स्वानुभूति मेरे निकट आ जाती है; जिसके साथ अनेकप्रकार के संभाषण और परस्पर प्रीति का प्रादुर्भाव अद्भुत आनंददायक है। उस परम सामायिक में मेरा आत्म-शरीर ही मानों सम्पूर्ण ज्ञानज्योति का पुंजरूप हो झलकता है।

यद्यपि अन्य ज्ञेयपदार्थ भी झलकते हैं; परंतु वे भिन्न ही रहते हैं और मैं भिन्न ही रहता हूँ। मेरा स्वरूप वास्तव में अव्याबाधमय है। यदि त्रिलोक के तीव्र और मंद शब्द, तीव्र और मंद गंध, तीव्र और मंद रस, तीव्र और मंद स्पर्श तथा भारी और हलके पुद्गल-स्कंध – सभी मेरे आँगन में स्वाभाविक वेग संपन्न हो चले आएँ; तथापि मेरे आँगन पर कुछ भी असर नहीं होता है, कोई मलिनता नहीं आती है, कोई उद्वेग खड़ा नहीं होता है।

यह मेरी अनुभूति का ही प्रताप है, जिसके कारण मुझे कोई लाख बाधाएँ देने आए; तथापि मैं स्वभाव दृढ़ रहकर निजानंद का स्वाद लेता रहता हूँ। वास्तव में मेरी ज्ञान-दृष्टि अब खुली है, मेरे भाग्य का अब उदय हुआ है, अब मेरे अंतरंग की सम्पूर्ण व्यथा दूर हो गई है। अहा !! अब मैं अवश्य ही भव-कारण, दुःखरूप आनंदों से अतीत अनुभवानंद का स्वाद ले, सदा स्वरूप उन्मत्त रहूँगा॥३२॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

३३. वीर पुत्र – ज्ञानामृत को पीनेवाला भव्यात्मा अपने ज्ञान दर्पण में सम्पूर्ण विकारों से रहित, स्वाधीन, निजमुख का अवलोकन कर अत्यंत सुख-अवस्था को प्राप्त हो रहा है। असंख्यात लोकप्रमाण कषाय परिणामों के राग से विरुद्ध हो, यह ज्ञानी वैराग्य खड्ग से मोह वैरी के प्रत्येक सैनिक का विध्वंस कर रहा है और वीतरागता के शांत, मनोहर जल में नहा-नहा कर, मोह-युद्ध के खेद को मिटा रहा है।

यह तत्त्वज्ञानी जब-जब किसी भी कषाय-वैरी को ठंडा करता है, तब-तब विजय के आनंद में मस्त हो त्रिलोक-आँगन में अपनी भेद-ज्ञान-परिणति से नृत्य कराकर और उसके अद्भुत चिन्नाद को श्रवण कर परम आल्हादित होता है। यह स्वरूप अनुभवानंदी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सम्यक्ता और एकता का एक ही काल अनुभव कर स्वरूप-उन्मत्त हो रहा है तथा इस विकट आत्मज्ञानरूपी मद में झूलता हुआ ज्ञेयरूप परवस्तुओं के आने, न आने, दिखने, न दिखने की कुछ भी अपेक्षा नहीं करता है।

इस परमात्म रस-वेदी की वेदन-शक्ति परोक्ष श्रुतज्ञान के द्वारा ही शुद्धात्मरस के स्वाद में मुग्ध हो गई है; यह भी इस स्वाद को लेते हुए अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की कुछ भी इच्छा नहीं करता है और केवलज्ञान को अपने से भिन्न नहीं जानता है। यह तो अपने विद्यमान श्रुतज्ञान को ही केवलज्ञान मानता है; क्योंकि इस पर एक परोक्षता का पर्दा पड़ा है, उसे उठाते ही वही श्रुतज्ञान केवलज्ञान कहलाने लगता है। वस्तु एक ही है, गुप्त और प्रगट की अपेक्षा नामभेद है।

मैं शुद्ध स्वरूपरूप, सिद्धसम अविनाशी, स्वभावनंदी और अनाकुल हूँ – यही भावना शुद्धस्वरूप की साधक है। अंतरंग की दृढ़ भावना,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव्य वस्तु को प्राप्त करानेवाली अवश्य ही होती है। जैसे-जैसे भावना दृढ़ होती जाती है,वैसे-वैसे अंतरंग रुचि दृढ़ होती जाती है; जैसे-जैसे स्वसंवेदनरस का अनुभव शीघ्र-शीघ्र होने लगता है, वैसे-वैसे स्वाधीन आनंद का विकास होता जाता है; यह सम्पूर्ण प्रकाश आत्मज्ञान का है।

जिनके अंतरंग में आत्मज्ञानरूपी स्नेह है, उनके अंतरंग में विकारमयी राग-द्वेषरूप जल नहीं ठहर सकता है। स्वभाव-तन्मयता की अपूर्वता परम आनंद की साधक है। जिन भव्यजीवों को स्ववस्तु की चाह है; उन्हें परवस्तु की चाह नहीं हो सकती है। जहाँ अंत:करणपूर्वक स्वस्त्री से संभोग है, वहाँ परस्त्री का संभोग नहीं हो सकता है। जो परवस्तु की चाह नहीं करते हैं, पर स्त्री-संभोग की इच्छा नहीं करते हैं; वे निरपराधी हैं। उन्हें कर्म-कालिमारूपी कोई बंधन जकड़ नहीं सकता है। वे शरीर में रहते हुए भी सदा मुक्त हैं। उनके उपयोग को दबानेवाला कोई नहीं है।

वे अपने ही उपयोग में सभी को धारण कर, उनके भेद कर, वस्तुस्वरूप के विचार से स्वयं उन्हें दबा लेते हैं; अपने उपयोग को दबने नहीं देते हैं।

ये वीर पुत्र ही महावीर स्वामी के सच्चे पुत्र बनकर, अपने वीरत्व और धैर्य से सम्पूर्ण अंतरंग और बाह्य शत्रुओं से निर्भय हो, सकल भयों से सहित आनंदाभासों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद लेते हैं। धन्य है यह अंतरात्मा ! यह आज परमवीरता को धारण कर, स्वभाव-मयता में लीनता प्राप्त कर, चिन्मय ज्योति के दर्शन में लुब्ध हुआ, अनुभवानंद का रस लेकर संतोषित हो स्वयं को सुखी अनुभव कर रहा है॥३३॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

३४. आत्मीक रेलगाड़ी – परमात्मतत्त्व-वेदी स्व-परवस्तु का वेत्ता रहकर आत्मानंद में लीन रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मज्ञान के बल से इस विकल्प को भी अपने में नहीं होने देता है कि मैं सुखी हूँ या दुःखी हूँ। उसका सत् स्वभाव सदा उसके अनुभव-गोचर है; सदा अस्तित्व रूप रहनेवाला जीव का जीवत्व भाव, उसकी दृष्टि के सम्मुख है। निरालंब पदार्थ का अवलंबन ही इस निरावलंबी के लिए स्वावलंबन है। यह पराश्रित स्वावलंबन निश्चय निरावलंबन का साधन है।

जिस साधन के साधक साधु-समाधि में समाधान/संतुष्ट रहकर, सत् स्वरूप की सत्ता और उसकी साम्यता का स्वाद लेते हैं; उनकी सम्यक् दृष्टि में त्रिलोक एक नाट्य-शाला है; जिसमें षट्द्रव्यों का नाटक हो रहा है। इस नाटक का ज्ञाता-दृष्टा नाटक को देखते हुए भी अपनी ज्ञान दृष्टि में सत्-चित-आनंदमय परमात्मा की छवि का पुनः-पुनः अवलोकन कर संतुष्ट और प्रसन्न रहता है।

जिसे अनेक पर्यायें भी अपने फंदे में फसा नहीं पाती हैं, जिसे कोई विकल्परूपी लता बेढ़ती/लिपटती नहीं है, जिसे कोई कर्मरूपी बैरी भुला नहीं सकता है – ऐसा वह प्रवीण चतुर, सम्यक् दृगात्मा अपनी निधि का स्वामी बन, उसके मान में मग्न हो रहा है। इसकी लगन निरंतर निज, निर्भय, निष्कंटक निधि पर है, पर-निधि पर कदापि नहीं है।

वास्तव में जो अपने ही धन में संतुष्ट रहे और उसी से स्व-योग्य व्यापार करे, वह ही एक निरपराधी साहूकार है। इससे विपरीत जो परनिधि को या उसके अंशमात्र को भी ग्रहण करे; वह सापराधी और चोर है। जो निरपराधी, वीतरागी है; वह कभी भी कर्म-बंधन को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त नहीं होता है और चोरों के समान दुःखी भी नहीं होता है; वरन् वह अनादिकाल से चुराई हुई वस्तुओं को अपने पास से फेंकता जाता है; क्योंकि उनका संबंध ही उस ज्ञानी को चोर और परवस्तु ग्राहक के अपयश में रखनेवाला है।

वह सम्यग्ज्ञानी अपनी भाव-परिणतिरूपी रेल से आत्म-अनुभवरूप ऐंजिन (इंजन) को जोड़े हुए चला रहा है और स्वयं उसमें बैठा हुआ शिव-नगर की ओर चला जा रहा है। उस आत्मानुभवरूपी ऐंजिन को मार्ग में शास्त्र-स्वाध्यायरूपी जल पिलाता रहता है; जिससे वह अपनी तीव्रगति में शिथिल न हो/उसकी गति मंद न हो जाए। इस ऐंजिन में वैराग्यरूपी कोयला ध्यानाग्निरूप हो रहा है। शिव-नगर की इस दीर्घ लम्बी यात्रा के मार्ग में यह रेल देवगति और मनुष्यगतिरूपी स्टेशनों पर ठहरती जाती है। कहीं अधिक, कहीं कम विश्राम लेती है।

जब-जब ऐंजिन में शिथिलता आती है; तब उसे दृढ़ किया जाता है। रेल में बैठा हुआ भावावलंबी जीव विश्रांति के स्थान में इस रेल से उतर कर विभाव-स्थान में बैठकर यद्यपि क्षुधा, तृषा आदि की वेदना मिटाता है; परंतु शिव-नगर में शीघ्र पहुँचने के उत्साह से, इस वेदना को और इसके उपाय को भी एक संकटरूप ही समझता है। धन्य है यह शिव-तिय-आसक्त सम्यग्दृष्टि !! यह अपने स्वरूप के स्वाद को लेकर उन्मत्त हो रहा है और भव-वासी आनंदों से अतीत, अनुभवानंद का रस ले तृप्त हो रहा है॥३४॥

३५. तत्त्वरूपी अंजन – आत्माराम अभिराम केवलधाम स्व-कल्याण के सम्मुख हो, अपने उन सभी शत्रुओं से मुख मोड़ रहा है, जिन्हें थोड़ी देर पहले अपना मित्र समझ रहा था। अनादि की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूल मिटाकर अब यह स्व-पथ का अवलंबी हुआ है। इसने अपनी सब उन्मत्तता बहा डाली है तथा शम, दम और यम से यह परम शांत, विवेकी और आचारवान बन गया है। जिनेन्द्रकथित स्याद्वादरूप परमागम द्वारा प्रदर्शित तत्त्वरूपी अंजन को लगाकर अब इसने अपनी मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि कर लिया है।

मोक्षमार्ग के साधक और बाधक – इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का सत्यस्वरूप इसने पहिचान लिया है। इसके अंतरंग में भवरुचि टूट गई है, इंद्रिय-सुखों की तृष्णा विघट गई है तथा कषायों की प्रसरता सीमित हो गई है। इसने अब अपने रूप को देख लिया है, अपनी गुप्त-निधि को पहिचान लिया है। अब यह पर का सम्पूर्ण कर्ज चुकता/अदा कर, अपने ही मूल धन से, अपनी ही नगरी में, अपनी ही निधि द्वारा व्यापार करना चाहता है। मोक्ष-सुख का पिपासु हो अतींद्रिय ग्राम में पहुँचना ही, इसका मंतव्य है। वीतरागता का सुहावना भोजन ही इसे प्रिय है।

यह आत्माराम अपने स्वरूप की ओर देखता-देखता तृप्त नहीं होता है। दृष्टि निर्बल होने से यद्यपि यह अधिक देर पर्यंत एक-सा नहीं देख पाता है, रुक-रुककर पुनः-पुनः अवलोकन करता है; एकरूप अवस्था नहीं हो पाने के कारण किंचित् आकुलित भी रहता है; तथापि इसका यह बारंबार देखना, इसकी ज्योति की शक्ति को बढ़ाता है; यहाँ तक कि कालांतर में इसकी ज्योति उस दृश्य में ऐसी स्थिर हो जाती है कि फिर कभी वहाँ से हटकर नीचे नहीं गिरती है।

जब यह आत्माराम अपनी दृढ़ शक्ति को पकड़ लेगा; उससमय यह मोहादि कर्म-शत्रुओं के आक्रमणों की कुछ भी चिंता नहीं कर, सभी को भगाता हुआ, ध्यान के विमान में बैठकर स्वस्थान की ओर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सीधा चला जाएगा और लोकाग्र पर सिद्ध-शिला में बैठकर अनंत काल के लिए सुखी हो जाएगा। उसके परिवार के अनंतगुण उसका साथ कभी भी नहीं छोड़ेंगे। वह वीरात्मा स्वाभाविक मनोज्ञता को प्राप्त कर, शिवनारी को मोहित करके, उसे अपने में लीन कर लेगा और उसके सहज विलास में आनंदित हो, परम संतुष्ट होते हुए स्वानुभव के परमामृत का आस्वादन करेगा॥३५॥

३६. भेदज्ञान-साबुन – समस्त संकल्प-विकल्पों को दूर कर, निर्विकल्पदशा में रह जो कोई स्वानुभूति रानी के मोह में लीन हो स्वयं को इंद्रिय विषय-ग्रामों से हटाकर, अतीन्द्रिय परम मनोहर नगर में विराजमान करता है; वही पुरुष वीरों का वीर महावीर है। यह उसी की शक्ति है कि जो अष्ट महाकर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ले; जिसके वश में हो ये संसारी जीव सदा आकुल-व्याकुल रहते हैं और अपने निश्चय ब्रम्हस्वरूप में चर्या नहीं कर पाते हैं; उस कामदेव का सत्यानाश/जड़-मूल से नाश कर डाले।

स्व-स्वरूप, उसके अनंतगुण और उसकी अनंत पर्यायें एक ही काल में जिस परमात्मा की ज्ञान दृष्टि में शोभायमान होते हैं; उसी परमात्मा के परम मनोहर मंगल आनन/मुख का अवलोकन कर जो तृप्त रहते हैं; वे ही सुधा-समूह चंद्रमा की अनुपम कला को पाकर स्वामृत का पान करते हैं। ये सुख-समुद्र चिन्मय परमतपस्वी जब निज निर्विकल्प समाधि में आरोहण करते हैं; तब तीनलोक को अपने से पृथक् देख और स्वयं को एकाकी अनुभव कर, 'मैं स्वयं ही परमात्मा हूँ' – ऐसा सम्यक् विचार करते हैं। यह विचार उन्हें संसार-कानन/वन से हटाकर, हरे-भरे चित्ताल्हादरूप उपवन में ले जाता है।

उस उपवन में अनंतगुणरूप वृक्षों को देखता हुआ, उनकी वैराग्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रूप सुगंध को प्राप्त कर अतिशय तृप्त होता हुआ सम्यग्दृगात्मा समरस-सरोवर में निमज्जन करता है और चिर-लिप्त कर्मकालिमा को भेदज्ञान साबुन से धोता हुआ अपने अंतर्मुख कमल को प्रफुल्लित करता है। इससे परम पवित्रता प्राप्त कर ऐसा आल्हादित होता है कि मानों मैं स्वयं सिद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञानपुंज और सुखधारा-धर हूँ। यह आल्हाद इस तत्त्वज्ञानी के आत्म-तन को पुष्ट करता है और यह जीव अपने बहुत से रोग मिटाकर, आत्म-पुष्ट हो, अपने रागादि शत्रुओं से लड़ता हुआ, प्रत्येक चोट में उनकी शक्ति को हीन कर, विजयानंदरूप अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥३६॥

३७. आत्मीक हलवाई – निजस्वरूपानंदी, परमस्वभावग्राहक, भवविलास हेय-अभ्यासी, सिद्ध-सुख-दर्शनाकांक्षी आज समस्त भवनारिओं से उदास हो, शिव-नारी के मोह में मोहित हो गया है। महा आश्चर्य की बात है कि इसकी दशा बहुत ही विलक्षण-सी हो रही है। स्वात्म-मनन रस से बनी अत्यंत तीव्र मदिरा को पीकर अपने अंतरंग स्वयं में बेसुध हो रहा है।

जगत के संसारी नर-नारी इसकी चेष्टा देख हँसते हैं, इसे अपने काम में उत्सुक नहीं देखकर घृणा भी करते हैं; परंतु इस ज्ञान-संतोषी को इस बात की कुछ भी चिंता नहीं है। यह निज आत्मीक व्यापार में चतुर हो अपने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का अवलंबन कर; अपनी शुद्ध भावना की भट्टी जला, ज्ञान-वैराग्यरस को पका-पका कर स्वामृतमय मनोहर व्यंजन तैयार कर स्वयं भी खाकर अपनी अनादि की क्षुधावेदना मिटाता है और अन्यों को भी सुंदर, सलौने शब्दरूपी दोंनों में भरकर देता है। पानेवाले भी उसके बदले में सुंदर शब्दों द्वारा अपनी भाव-भक्ति उसे प्रदान करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस व्यापार को करते रहने से इस अंतरात्मा को बहुत बड़ा अभ्यास हो जाता है; जिससे यह जगत में ज्ञानवानों की श्रेणी में मान्य हो जाता है। इस उद्यम के बल से जब यह प्रचुर आत्मीक धन का धनी हो जाता है; तब लेन-देन के व्यापार से अवकाश ग्रहण कर, परम संतोषित हो, अपने स्वधन के मान में उन्मग्न हो जाता है तथा अन्य किसी की कामना न कर अपनी स्वाभाविक संपत्ति के बल से शिवतिया को ही रंजायमान करने का प्रयत्न करता है।

इसप्रकार चेष्टा करता हुआ अतिशयरूप धर्मध्यान के बल से, विघ्नकारक कर्मों का क्षय कर शुक्लध्यान में पहुँच जाता है। इसमें प्रथम शुक्लध्यान के तीव्रतम बल से मोह-शत्रु का क्षय कर; द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय कर्मों का नाशकर; स्वाभाविक सुख पा, शिवरमणी से संभाषण कर, जीवन्मुक्त हो, अनुभवानंद का अनुपम स्वाद लेता है॥३७॥

३८. निजगुण गणना – परम पुरुषार्थधारी, शिव-विहारी, ज्ञानानंद रस-संचारी सम्यग्दृष्टि आत्मा जब अपने आत्मीक धन की गणना करता है; तब गणना करते-करते कभी अंत को प्राप्त नहीं होता है। अपनी शक्ति की हीन प्रगटता के कारण थोड़ी-सी ही गणना करके थक जाता है और आराम लेने के लिए अपने शुभ गुणों से अन्य, अनेक शुभभावों की गणना में लग जाता है। ऐसा करते हुए भी अपने आत्मीक धन की गणना का लक्ष्य तिरोहित नहीं होता है; इसकारण शीघ्र ही निज-शक्ति को सम्हाल कर निजधन की गणना में लवलीन हो जाता है।

यही जाप इसे शांति देती है और अपने प्रत्येक सम्मिलन में इस जापी आत्मा को स्वामृत रस की एक बूँद प्रदान करती है। इस बूँद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का स्वाद ले यह स्व-स्वादी, दूसरी बूँद के लिए पुनः उत्सुक हो जाता है।

जैसे संसार-कूप में लटकता हुआ पथिक, स्वयं भयानक अजगर के मुख में गिरने की बात को नहीं गिनता हुआ, मधु-मच्छिका के छत्ते से गिरे हुए एक मधु बिंदु को चखकर, पुनः उसे पाने की आशा में मुँह फैलाए रहता है; उसीप्रकार यह स्वरसवेदी संसार की ओर से निर्भय रह, निजरस बिंदु की आशा करता है। सम्यक् पुरुषार्थी होने से यह मात्र आशा करके ही शांत नहीं होता है; वरन् इसकी रुचि इसे शीघ्र ही स्वसंवेदन रस का अनुभव कराती है।

मिथ्यादृष्टि जिन पदार्थों के साथ संबंध कर उन्हें अपना मान लेता है तथा मन को प्रिय लगनेवाले पदार्थों में राग और प्रिय न लगनेवाले पदार्थों में द्वेष करने लगता है; वहीं त्रिलोक के षट्द्रव्यमय पदार्थों की सम्यक् श्रद्धा करनेवाला यह सुधी, उन सम्पूर्ण पदार्थों के प्रति किसी भी प्रकार का सांसारिक राग-द्वेष नहीं करता है। यह यथार्थवेदी ही वास्तव में आत्मज्ञानी और सुखमय है; यही वीतराग-विज्ञानतारूपी अपूर्व शक्तिसंपन्न-देवी का वास्तविक उपासक है।

यही परम उत्सवमय आत्मीक अखाड़े में समस्त त्रिलोक जनसमूह के सम्मुख ज्ञानानंद नामक नृत्य कर उसीप्रकार अपने मोक्ष-राजा को प्रसन्न करता है; जिसप्रकार धन का धनी इंद्र, उस धन के सुखमय मद में ऐसा उन्मत्त हो जाता है, जिससे अन्य की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं रखता है।

यह भी सभी से पूर्णतया निरपेक्ष हो एक निज अनुभूति का ही प्रिय रहता है, उसी में रति करता है। इसके स्वरूप में दृढ़ सम्यक्त्व की अचल महिमा प्रतिभासमान होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह ज्ञानी अपने आनंद अनुभवरूपी देश का राज्य करता है और स्वतंत्र अतीन्द्रिय होकर इंद्रिय-विषयों की अपेक्षा नहीं रखता है, स्व मन को स्व-मनन में मग्न कर स्वरूपावलंबी रहता है। इस ध्यानी भेदविज्ञानी की शक्ति जैसी स्वात्म-श्रेणी के आरोहण में उत्साहित होती है; उसीप्रकार इसकी वचन-प्रणाली पर को स्वात्म-सुधार में स्थिर करने के लिए अत्यधिक दृढ़तापूर्वक कार्य करती है।

वचन में जैसी दृढ़ता और अपूर्वता प्रगट होती है; उसीप्रकार इसके शरीर से संपादित किए हुए समस्त कार्य सम्यक्, पर को बाधा नहीं देनेवाले और न्यायमार्ग की ओर झुके हुए होते हैं। व्यवहार प्रवृत्ति भी ज्ञान-वैराग्य से पूर्ण होती है। इन्हीं सब कारणों से इस आत्मा को अपराधी बनने का बहुत कम भय रहता है।

वास्तव में यह बात सत्य है कि जो ज्ञाता-दृष्टा रहता है और कर्तापने या भोक्तापने का अहंकार नहीं करता है; उसे बंधन में पड़ने की शंका ही क्यों हो ? जो पर की क्रिया को अपनी क्रिया मानता है; वही अपनी मिथ्याबुद्धि से पर का कर्ता और भोक्ता बनता है तथा इस अपनी असत् बुद्धि से वृथा संक्लेश उठाता हुआ कर्मों को बाँधता है।

जो जगत में शुद्धनय की डोर को दृढ़ता से पकड़े हुए क्रिया करता है, वह क्रिया करता हुआ भी अक्रिय है। उसके अंतरंग में भेदज्ञान का जल निरंतर बहा करता है। धन्य है यह शांत जल ! जिसकी ठंडक इसे संसार के क्षणिक आतापों से पृथक् रखती है। यह इस आत्मा को वैसा ही आल्हाद देती है; जैसी पूर्णमासी के चंद्रमा की कला, दर्शक को हर्ष उत्पन्न करती है। इस परमानंद के विलास में लीन होकर यह अंतरात्मा वीतराग-विज्ञानी रहकर, शिव-तिया के मोह में रति करते हुए निरंतर अनुभवानंद का स्वाद लेता है॥३८॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

३९. गतिमार्गणा में मैं ही हूँ – त्रिलोक का स्वामी, शिव-रमणी का वर, आत्मीक अनंतगुणरूप धन का धनी वास्तव में मैं ही तो हूँ। मेरा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य मुझमें ही है। मेरे निवास का स्थान मेरे ही आत्मा का असंख्यात प्रदेशमयी चैतन्य-नगर है। मैं गतिमार्गणा से भिन्न हूँ। मुझे कोई चारों गतिओं के स्वाँगों में ढूँढना चाहे तो मैं कहीं भी नहीं मिल सकता हूँ।

इन गतिओं का हेतु, स्वरूप, कार्य और फल – समस्त ही मेरी निर्मल शुद्ध परिणति से विपरीत है। अहमिंद्र, इंद्र, सुर, असुर – सभी निजस्वभाव से पृथक्, पर, पुद्गल कर्ममयी वर्गणाओं के निमित्त से अपने-अपने रूप, पद, कार्य और स्थान में लवलीन हैं। उनकी सारी क्रीड़ा, उनका सम्पूर्ण भ्रमण, उनकी समस्त धर्म-क्रिया मेरी शुद्ध पारिणामिक क्रिया से सर्वथा विरुद्ध है।

चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि सभी नर अपने-अपने पुद्गलों के अहंकार में अथवा यदि वैराग्य हुआ तो उनसे वैराग्यभाव की भावना करने में, पर की ही चिंता करते हुए, मेरी स्वाभाविक निश्चलता से पराङ्मुख हैं।

अष्टापद, सिंह, गज, अश्व, मयूर, महामत्स्य आदि थलचर, नभचर, जलचर तथा समस्त ही द्वींद्रियादि विकलत्रय; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति और साधारण निगोद राशि आदि प्राणधारिओं के शरीर और चेष्टाओं में झाँककर देखा जाए तो सब ही पुद्गल का नाटक कर रहे हैं। उनका यह नाटक मेरे समयसार के अद्भुत नाटक से सर्वथा निराला है।

सातों नरक पृथ्विओं के नारकी निरंतर, अशुभ शरीर, अशुभ विक्रिया, अशुभ परिणाम और कषाय के वशीभूत हो परस्पर मारन,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ताड़न आदि की कुक्रिया करते हुए दुःख से विलाप करते रहते हैं। परस्पर छेदे-भेदे जाते हुए भी वे अपने स्थूल शरीर का त्याग नहीं कर सकते हैं। इन नारकिओं की आकुलतामयी चेष्टाएँ मेरी निराकुल, स्वानंदरूप सुखधाम, अभिराम, गुणग्राम की स्वभाव-भोगनेरूप क्रिया से पूर्णतया पृथक् हैं।

चारों गतिओं में मार्गणा/खोज करने से किसी को भी मेरा पता मिलना दुस्वार/कठिन है। यद्यपि मैं गति से भिन्न सुगतिरूप और निर्द्वंद्व हूँ; तथापि यदि कोई चर्म-चक्षु बंदकर, सम्यग्ज्ञान की दृष्टि से इन चारों गतिओं में भी मुझे देखना चाहे तो मैं अवश्य ही दिखाई दे सकता हूँ। यद्यपि चारों गतिओं के प्राणधारिओं की आकृति और क्रियाएं भिन्न-भिन्न हैं; परंतु सम्यक्त्वी को तो मैं इन गतिओं के अंदर भी एकरूप, शुद्ध ही दृष्टिगोचर होता हूँ।

वास्तव में मेरा आकार, मेरे गुण, मेरा स्वरूप, मेरी पर्यायें यथार्थ में तो यथावत ही रहती हैं। क्या कभी रत्न की ज्योति मिट्टी से लिप्त हो जाने पर मटियाली होती है? क्या कभी सालि का चावल भूसी में लिप्त रहने से भूसीरूप होता है ? समस्त संसारिओं में लीन रहने पर भी क्या कभी तैजस शरीर अतैजसरूप परिणमित होता है ? क्या कभी अन्य काष्ठ के साथ जलता होने से चंदन का काष्ठ अपनी निराली सुगंध को छोड़ देता है? नहीं; इसीप्रकार निश्चय से मेरी शुद्ध अनुभूति नित्य ही मेरे साथ रहती है। मेरी अनुभव शक्ति का कोई घात नहीं कर सकता है।

चाहे मैं चारों गतिओं की ८४ लाख योनिओं और एक सौ साढ़े निन्यानवे लाख करोड़ कुल कोटि में भ्रमण कर आऊँ; परंतु मेरे गुणों को कोई क्षीण नहीं कर सकता है। मैं अपनी स्वाभाविक संपदा को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लिए हुए नित्य ही संतुष्ट रहता हुआ और अपनी अनुभूति सखी से गोष्ठी करता हुआ स्वभाव से ही अनुभवानंद का स्वाद लेता रहता हूँ॥३९॥

४०. इंद्रियमार्गणा की ओछी/हीनशक्ति – अतीन्द्रिय आत्माराम का रचा हुआ आराम अत्यंत मनोहर, सुखप्रद, गुणशाली और चिंतातीत है। इस मनोहर आराम में परमात्माराम विश्राम करता हुआ, शिव-नारी के सातामय स्पर्श का भोगकर, अटूट अमृत के स्वाद को लेता हुआ, इंद्रिय-ग्रामों में परिभ्रमण करके उनकी सैर देखने का कभी विचार ही नहीं करता है। वास्तव में आत्माराम इंद्रिय मार्गणा से सर्वथा भिन्न है।

अनादि कर्मबंध की संतान को भोगनेवाला संसारी जीव मति ज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम का कारण पाकर एकेंद्रिय की पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति की काय में मात्र एक स्पर्शन इंद्रिय प्राप्त कर, चार हाथ का एक धनुष वाले ४०० धनुष दूर क्षेत्र पर्यंत के पदार्थों संबंधी कोमल, कठोर, हल्का, भारी, रूखा, चिकना, उष्ण, शीत – इन आठ स्पर्शित विषयों को मूर्च्छा/ममत्व बुद्धि से ग्रहण करता हुआ दुःखी-सुखी होता रहता है।

धन्य है यह अतीन्द्रिय आत्मा ! जिसे यह आकुलतामय, पराधीन, क्षणिक, सुख-दुःख नहीं है।

दो इंद्रियरूप त्रसपर्याय को धारण करते हुए विकलेन्द्रिय जीव पूर्वोक्त कर्म के क्षयोपशम से उत्कृष्ट की अपेक्षा ८०० धनुष दूर क्षेत्र पर्यंत स्थित स्पर्श करने-योग्य पदार्थों के विषयों को और ६४ धनुष दूर क्षेत्र पर्यंत स्थित स्वाद लेने-योग्य पदार्थों के विषयों को जानकर मोहित हो, अपने आत्मीक अनुभव-ज्ञान से पराङ्मुख रहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धन्य है शिव-रमणी का वर ! जिसकी इस पराधीनता के जाल से मुक्ति हो गई है।

तीन इंद्रियधारी चींटी आदि त्रस जीव निजकृत कर्माधीन पड़े हुए, मानों कर्म के मद से स्वयं चकनाचूर हुए स्पर्श-योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट १६०० धनुष पर्यंत के क्षेत्र से, स्वाद लेने-योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट १२८ धनुष पर्यंत के क्षेत्र से और सूँघने-योग्य पदार्थों को उत्कृष्ट १०० धनुष पर्यंत के क्षेत्र से जानकर, तन्मय हो अपनी पर्याय को शीघ्र पूर्ण कर पर्यायांतर होते हैं।

खेद है कि रात्रि-दिवस विषय-ग्रहण करने के लिए परिश्रम करने वाले बेचारे इन जीवों को स्वात्म-तन्मयता की गंध भी प्राप्त नहीं होती है।

चार इंद्रियवाले मक्षिका, भ्रमर आदि जीव आत्म-रुचि-कारण मानसिक वृत्ति को प्राप्त नहीं करते हुए उत्कृष्टता से स्पर्श-योग्य पदार्थों को ३२०० धनुष दूर क्षेत्र से, स्वाद लेने-योग्य पदार्थों को २५६ धनुष दूर क्षेत्र से, सूँघने-योग्य पदार्थों को २०० धनुष दूर क्षेत्र से और देखने-योग्य पदार्थों को २९५४ योजन दूर क्षेत्र से जानकर, उनके मोह में अपनी जानकारी किसी समय भी नहीं करते हुए क्षोभित होते हैं।

धन्य है निजानंदी जीव ! जिसे इस क्षोभ के फंदे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

सत्यासत्य, हिताहित विचारशक्तिधारक मन को नहीं पाकर और त्रिलोकालोक ज्ञाता परमात्मा के दर्शन से विमुख रह असैनी पाँच इंद्रियवाले जीव उत्कृष्टतया स्पर्श-योग्य पदार्थों को ६४०० धनुष दूर क्षेत्र से, स्वाद लेने-योग्य पदार्थों को ५१२ धनुष दूर क्षेत्र से, सूँघने-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

योग्य पदार्थों को ४०० धनुष दूर क्षेत्र से, देखने-योग्य पदार्थों को ५९०८ योजन दूर क्षेत्र से और सुनने-योग्य पदार्थों को ८०० धनुष दूर क्षेत्र से जानकर, मूर्छित बुद्धिपूर्वक उनके राग में तन्मय रहते हुए स्वरस स्वाद का लाभ नहीं ले पाते हैं।

मन के धारी छद्मस्थ दशावाले तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि उत्कृष्ट पंचेंद्रिय जीव भी उत्कृष्टतया स्पर्श-योग्य, स्वाद-योग्य और सूँघने-योग्य पदार्थों को ९-९ योजन दूर क्षेत्र से; देखने-योग्य पदार्थों को ४७२६३ $\frac{७}{२०}$ योजन दूर क्षेत्र से तथा सुनने-योग्य पदार्थों को १२ योजन दूर क्षेत्र से ज्ञात कर भी तृप्त नहीं होते हैं और अपने मन में इस बात का खेद करते हैं कि श्री अरहंत, सिद्धपरमात्मा के समान हममें ऐसी शक्ति व्यक्त क्यों नहीं होती है, जिससे हम तीनलोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थों को, इंद्रियों की सहायता के बिना ही, उनके समस्त विषयों सहित एक ही समय में जान लें ? इसके अभाव में ही ये भी आकुलताओं के प्रपंचों से दूर नहीं हो पाते हैं। वास्तव में क्षायोपशमिक ज्ञान-वीर्य आदि की पहुँच कहाँ तक हो सकती है ? नियम से मर्यादित ही रहेगी।

पुद्गल के विकारों का संबंध आत्मा को विकारी बनाता है। इस संबंध का मोह ही आत्मा को पराधीन, दुःखी, रागी, द्वेषी और आकुलित करता है। धन्य हैं वे वीर आत्मा ! जो वैराग्य की मनोहर छटा को प्राप्त कर, भेदज्ञान की अग्नि जला कर्मकांड को भस्म कर, आत्मा के पग को मुक्त करते हैं तथा निज अनंत गुण-वृक्षों से प्रफुल्लित बाग में कल्लोल कर, निज अनुभूति-दासी की सहायता से शिव-तिया के साथ परम पवित्रतापूर्वक वार्तालाप करते हुए, निज अनुपम आत्मीक अनुभवानंद का स्वाद ले उन्मत्त रहते हैं॥४०॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४१. कायमार्गणा में आकुलता – सुख-संतोषी, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन, ब्रम्हविद्या-अभ्यासी, **शुद्ध निश्चय दृष्टि से परमात्मा,** व्यवहार में स्वपद से पृथक्‌भूत अंतरात्मा अपने अद्‌भुत ज्ञान के बल से किसी पर-पदार्थ संबंधी राग और द्वेष को अपने में नहीं आने देता है। दृढ़ अचल सुमेरु के समान निज अनुभूति में स्थिरता को स्थिर नहीं रख पाने के कारण तृप्त नहीं होता हुआ सुधा के उच्च स्रोत से अमृत की धारा का पान किया करता है। अपने आत्मा की चैतन्यमय काय के अंदर निज-अनुभूति अर्धांगिनी को लपेटे हुए ऐसा स्वरूप मूर्छित रहता है कि अपने जड़मयी कार्यों की अपेक्षा ही नहीं रखता है। औदारिक, तैजस, कार्मण – इन तीनों शरीरोंमय अनंत कर्म-नोकर्म वर्गणाओं का मिलना-बिछुड़ना प्रतिसमय होते रहने पर भी इन कार्यों का उपादानकारण जड़ को अनुभव कर, इन जड़ों के हानि-लाभ से अपनी हानि नहीं करता हुआ, अपने चेतनराम को इनसे पृथक् रखता है।

धन्य है यह शूरवीर ! जो इस कायमार्गणा में अपनी परिणति को नहीं लगाता हुआ स्वरूप-मग्न रहता है।

इस कायमार्गणा में घूमते हुए एकेंद्रिय पृथ्वी, जल, तेज, वायुकायिक जीव क्रमशः मसूर व चने के समान गोलाकार, जलबिंदु सदृश गोल, सूची/सुई के समान ऊर्ध्व बहुमुख, ध्वजा सदृश चौकोर आकारवाले; उत्कृष्ट या जघन्य घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना को घेरे हुए, (बादर) निगोद रहित, अदृश्य शरीरवाले, समूहरूप में संगठित न होने पर्यंत इंद्रियगोचर नहीं होनेवाले ये सभी मूर्छित रहते हुए जड़मय बने रहते हैं। इस कायमार्गणा में उस अनुभवी का गमन नहीं होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक जीववाली अप्रतिष्ठित प्रत्येक और अनेक बादर निगोद जीव-आश्रित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जघन्य घनांगुल के असंख्यातवें भागवाली और उत्कृष्ट छोटे योजन से कुछ अधिक १००० योजन लंबे, १ योजन चौड़े गोल कमल की काय में पड़े हुए संसारी जीव छेदन-भेदन आदि के दुःख सहते हुए आकुलित रहते हैं। आत्मानंदी का इस काय के मोह में पतन नहीं होता है।

जघन्य घनांगुल के संख्यातवें भाग अनुंधरी और उत्कृष्ट बारह योजन लम्बी शंख की पर्याय में इत्यादि दो इंद्रिय जीव; जघन्य अनुंधरी से संख्यातगुणी कुंथु और उत्कृष्ट ग्रीष्मकाल में उत्पन्न होनेवाले ३ कोस लंबी कायावाले इत्यादि तीन इंद्रिय त्रस जीव; जघन्य कुंथु से संख्यातगुणी काण-मक्खी और उत्कृष्ट १ योजन लंबी भ्रमर की कायावाले इत्यादि चार इंद्रिय जीव; जघन्य काण-मक्खी से संख्यातगुणी सिक्थक मत्स्य और उत्कृष्ट एक हजार योजन लंबी महामत्स्य की कायावाले इत्यादि तथा गर्भज की अपेक्षा तीन पल्य की आयुवाले तीन कोश लंबे शरीर आदि पंचेंद्रिय जीव शरीर-मोही रह, मिथ्यादर्शन के कारण मूर्छा और वियोग से दुःख पाते हैं; परंतु हर्ष है कि स्वात्म-अवलोकी सम्यग्दृष्टि को इस दुःख का अनुभव नहीं है।

जो भेदविज्ञान के शस्त्र को धारण कर शूर-वीरता का जल पीते हैं, उन्हें काय की सुरूपता-कुरूपता कुछ भी प्रभावित नहीं कर पाती है। वे सनतकुमार चक्रवर्ती और उनके मोही देवों के समान यौवन की क्षण-भंगुरता का विचार कर, अपूर्व यौवनधारी निज जीवतत्त्व के विलास में आनंदित रहते हुए, समता नदी के जल को पीते हुए, वैराग्य-मंत्र द्वारा राग-द्वेष शत्रुओं को अति दूर रखते हुए, स्वरूप गुप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो हर्षित होते हुए, सदा अनुभवानंद का स्वाद ले चिर सुखी रहते हैं।।४१।।

४२. मैं अकाय हूँ – निज रसकूप, शिव नगरी भूप, चैतन्यरूप अविनाशी परमात्मा के मनन में मोहित हो भव्य अंतरात्मा आत्म-सत्ता के रमणीय-कानन में पहुँच जाता है और उस कानन के अंगरूप अनंतगुणमय अनेक वृक्षों का क्रम-क्रम से अवलोकन करता हुआ, इस मनोहर वन में अपनी स्थिति और आचरण ही जानकर अपने चित्त को प्रसन्न करता है। प्रसन्नता के साथ एक आश्चर्य भी करता है कि इस आत्मवन में एक-एक गुणरूप वृक्ष के प्रदेश अर्थात् स्थान में अपने अन्य सम्पूर्ण गुण-तरुओं की सत्ता विद्यमान है। प्रत्येक वृक्ष की सुंदरता में अनंत वृक्षों की सुंदरता झलकती है।

इस अतिशयरूप वन के प्रभाव से इस अंतरात्मा को आत्मा का ही विचार है। इसी में अपने परिणमन को स्थिर करता रहता है। मेरे कार्मण, तैजस और औदारिक शरीर है भी कि नहीं – इसके विकल्प से भी पृथक् रहता है। वास्तव में यह शरीर पुद्गल की वर्गणाओं से ही उत्पन्न है। पुद्गल के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण संबंधी २० गुणों में से आत्मा में कोई भी नहीं हैं। यह क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य, शूद्र भी नहीं है। ये सभी नाम शरीर के हैं, आत्मा के नहीं हैं।

जिसका निरंतर पूरण-गलन स्वभाव है, जो अंदर मल-मूत्र आदि से परिपूर्ण है। जो स्वयं अपवित्र है तथा इसका स्पर्श करनेवाले को भी यह अपवित्र करनेवाला है – ऐसे इस तन में निस्पृह हो जो चैतन्य तन की पवित्रता में तन्मय रहता है, अकायी रहकर स्वसमय के स्वाद में मग्न रहता है; उस अनुभवी को अहमिंद्रों का वैक्रियिक शरीर भी भिन्न ही प्रतीत होता है। वह तीनकाल में भी इन तनों की कामना नहीं करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब जड़ तन ही भिन्न है; तब तन के संबंधी माता, पिता, भाई, बंधु, पुत्र, पुत्री, स्त्री, धन, धान्य, क्षेत्र, महल आदि तो स्वतः ही आत्म-स्वरूप से पृथक् हैं। जो मोही इनके मोह में पड़कर, अपने स्वरूप को भुलाता है; वह अपना ही शत्रु; द्रोही और अकल्याण करनेवाला है। जिसे निजरस या किसी पररस के स्वाद की कामना नहीं होती है, वह रसिक स्वसंवेदनज्ञान, अमल, गुणवान, भवोदधि-तारण यान पर आरूढ़ हो, प्रतिसमय विशुद्ध भावों में वृद्धि करता जाता है और अपने सुखमय स्वरूप में लवलीन रह, शिव-नारी को मोहनेवाले अद्भुत आकर्षण में प्रवेश कर, क्षणिक सुखों से अतीत, सार समतास्वरूप अनुभवानंद का ध्यान करता है॥४२॥

४३. योगमार्गणा में डगमगाहट – परम समताधारी, स्वपद रुचि विस्तारी, भवहारी, सर्वज्ञ-वीतराग गुणधारी को नहीं पाकर भवाटवी भ्रमणकारी संसारी भवजाल में फँसा रहकर, चारों गतिओं में अपने योग्य शरीर को धारण कर, योगों की परिणति में उलझा हुआ; अयोग, अलिप्त, अनंत, अमिट, अपूर्व और आनंदमय पर्याय को प्राप्त नहीं कर पाता है। यह इसकी मूढ़ता ही इसे सदैव दुःख देनेवाली है।

योगमार्गणा में पड़ा हुआ यह पर-पदार्थ को अपने में आकर्षण करता है और अपने स्नेह या अस्नेह भाव के निमित्त से स्वयं कर्मबंध का रोग अपने साथ लगा रोगी बनता है। परिपाटीरूप अनादि और संबंध-वियोग की अपेक्षा सादि पुद्गल विपाकी नामकर्म के उदय से संसारी जीव स्वयं में ज्ञानावरणादि कर्म और औदारिकादि नोकर्म की वर्गणाओं को ग्रहण करने की शक्तिरूप भावयोग और इससे आत्मा के प्रदेशों में हलन-चलनात्मक परिस्पंदरूप द्रव्ययोग को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धारण कर; इस योग के १५ भेदों में फंसकर, अपनी स्वतंत्रता से विमुख हो स्वयं ही दुःख भोगता रहता है।

सत्यार्थ ज्ञान को उत्पन्न करने की शक्तिरूप मानसिक भाव व वचन, इसके विरोधी भाव व वचन, सत्यासत्य मिश्रित भाव व वचन और सत्यासत्य कहे जाने की शक्ति से रहित अवक्तव्यरूप सत्य, असत्य, उभय, अनुभयमय चार भेदरूप मन-वचन योग के ८ भेद तथा औदारिक, अपर्याप्त अवस्था में औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण – इन काय संबंधी ७ भेद मय योगों की विक्रिया से वृथा ही पर-पदार्थ द्वारा अपने प्रदेशों को डगमगाता रहता है।

सत्य और अनुभय वचनयोग से प्रगट हुई दिव्यध्वनि द्वारा आत्मधर्म की प्रगटता होती है। जिसे प्राप्त कर व्यवहारी जन निश्चय की ओर मुख करते हुए व्यवहार की सीढ़ी से चढ़ते हैं और योगों के हलन-चलन से रहितपना प्राप्त कर अयोगी हो सिद्धालय में निवास करते हैं।

प्रकृति और प्रदेशबंध का कारण योग है – ऐसा जानते हुए भी इसकी उपेक्षा कर योगीश्वर ध्यान द्वारा निश्चलता प्राप्त करते हुए स्वरूप-मग्न रहते हैं तथा परम प्रतापी आत्माराम के सद्गुण पुष्पों की सुगंध लेते हुए ऐसे मोहित हो जाते हैं कि फिर कभी जगत के पौद्गलिक पुष्पों की अपेक्षा नहीं रखते हैं। निज अद्भुत सत्ता में निवास करते हुए वे उसी भूमि में ही चलना योग्य समझते हैं; अतः उससे बाहर किसी भी परवस्तु की सत्ता में गमन नहीं करते हैं।

गुणरत्नों से जड़ित निजसत्ता परमसुखदायक है। यही इसका स्व-पद और स्वरूप है। जो निरालंब हो इस स्व-पद में ठहरते हैं; वे महारमणीय, सुख-भाजन वीतरागमई पर्वत पर आत्मज्ञानमयी सिंहासन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में बैठ जाते हैं और अष्ट कर्मजाल से रहित, तैजस वर्गणाविहीन आत्मस्वरूप की शुद्धता का मनन करते हुए; विनाशीक रसों से रहित; अरस, अगंध, अस्पर्श, अवर्ण, अशब्दमय स्व-रस सुधा-पुंज-समूह का विलास करते हुए, पर अनुभव से रहित, सत्य अनुभवानंद का स्वाद लेते हुए परम तृप्त रहते हैं॥४३॥

४४. वेदमार्गणा की आकुलता – शशि सम उज्ज्वल गुणधारी, अविकारी, अत्यंत निकट भव्यजीव कुमुद-विस्तारी, अज्ञान-निशि-तमहारी, भवाताप-संतप्त-सत्त्व-शमनकारी, परवस्तु-आधार-रहित, निराधार-परिणति, आकाश-विहारी, अनंतगुण कला भंडारी परमात्मा के समान अंतरात्मा आज सम्पूर्ण त्रिवेदरूप तीव्र संक्लेशता से रहित हो, वेदरहित, मुक्ति-तिया के स्मरण में दत्तचित्त हो रहा है और स्वयं को संसार में रहते हुए भी संसारावस्था से पृथक् मान रहा है।

जिस वेद मार्गणा में भ्रमण कर यह अज्ञानी जीव अपना संसार बनाता है, उस वेद के विचार को जब 'हेय' निरीक्षित किया जाता है; तब स्वतः स्वभाव से ही अंतरात्मा का पग मोक्षमार्ग में बढ़ता चला जाता है। जिस पुरुष वेद की तीव्रता ने त्रिखंडी रावण का विध्वंस कर उसे नरक-वास दिया; ग्यारहवें रुद्र सात्यकी का स्पर्श चिन्ह/लिंग छिदवा, भ्रष्ट करा, नरक पहुँचाया; दुःशासन को सभा में अपमानित करा कुगतिधाम बसाया तथा जिस पुरुष वेद के मोह में पड़े संसारी जन स्त्री में लुब्ध हो, निज शील-रत्न को मलिन करते हैं; उस पुरुष वेद को जो निज अरि/शत्रु जानकर, उसका त्याग कर, ब्रम्ह-स्वरूप में रमण करते हैं; वे सच्चे अंतरात्मा ब्राम्हण और ब्रम्हचारी हैं।

जिस स्त्रीवेद की उत्कटता ने चंद्रनखा का मन सहसा पुत्र-शोक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से हटा, उसे श्री रामचंद्र महात्मा के रूप पर लुब्ध करा, अपमानित करा यहाँ पर्यंत क्रोधित कराया कि उसका यही क्रोध महासती सीता पर उपसर्ग आने, राक्षस वंश के क्षय होने और युद्ध में संख्यात वीरों के नाश होने का कारण बना; जिस स्त्रीवेद की तीव्रता से चंपापुर की रानी ने श्री सेठ सुदर्शन जैसे शीलवान को शूली पर चढ़वाया और जिस वेद के तीव्र मोह में पड़कर स्त्री समाज काम-वेदना से आकुलित हो, निज निजानंद अविनाशी शिवनाथ के मोह से च्युत रह, सांसारिक पुरुषों की इच्छा कर; नरक, तिर्यंच आदि योनि में वास करती है; उस स्त्री वेद को हेय समझ जो जीवात्मा उसका त्याग करते हैं; वे ही निर्वेद अवस्था प्राप्त कर स्वात्म-स्वरूप में मग्न होते हैं।

जिस नपुंसक वेद में पड़े नारकी, नर और तिर्यंच काम की तीव्र ज्वाला से दग्ध होते हुए सम्यक्-दृष्टि का लाभ नहीं कर, आत्म-स्वरूप को पहिचान नहीं पाते हैं; उस षंड/नपुंसक वेद को सर्वथा हेय समझ अंतरात्मा आंतरिक मनोहरवृत्ति का अवलंबन ले, सुख-संपन्न स्वभाव धारण करते हैं।

जो इस शरीर, शरीर के अवयव, इंद्रिय-विषय और राग-द्वेषादि कषाय – इन सभी को अपने स्वरूप से पृथक् जानते, मानते और अनुभव करते हैं; वे जीव भवकारी, निराकुलताहारी सुखों से अतीत, भवहारी, निराकुलताकारी, अनुभवानंद का सुधामय रस पी, अत्यंत तृप्त रह, कृत-कृत्य का अंबर ओढ़ दिगंबरपने की महत्ता प्रगट करते हैं॥४४॥

४५. कषायों की बंचकता – परमब्रम्ह-स्वरूप-विकासी, सम्यक् आनंद-अभिलाषी, ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-पद-प्रकाशी, भव-तम-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नाशी की सुधामय मूर्ति का अवलोकन भव्यजीव सम्यग्दृष्टि के तन को रोमांचित करता हुआ एक ऐसा शांत जल का प्रवाह बहाता है कि जिसकी अमलधारा कर्म वर्गणाओं के शिथिल और ध्वस्त समूह को आत्म-प्रदेशों की बंध-अवस्था से सहसा हटाती हुई, आत्मा को निर्भार करती हुई, मोक्ष विमान में निज निष्कंटक राज्य करने के योग्य बनाती जाती है।

वीतराग-विज्ञान पति का स्पर्श अनुभूति-नारी को ऐसा अनुपम बल प्रदान करता है, जिससे मोह राजा के सेवक चार कषाय आदि सभी योद्धाओं का आक्रमण और उनका भ्रम-जाल इस अनुभूति को अचेत नहीं कर पाता है तथा सचेत अवस्था में रखकर मोह के जालों से बचने का अपूर्व बल प्रगट करता है।

संसारासक्त जीवों का भ्रमण कषाय मार्गणा में इतना प्रबल रहता है कि बाह्य में कषाय-रहित वैरागी दिखने पर भी अनंतानुबंधी आदि किसी भी कषाय की उत्कटता, उस जीव का पीछा नहीं छोड़ती है। शास्त्रोक्त व्यवहारचारित्र का यथार्थ पालन करते हुए और यथार्थ मार्ग का उपदेश देकर हजारों को सम्यक् मोक्षपथ पर चलाते हुए भी द्रव्यलिंगी मुनि कषाय-बैरी द्वारा ऐसे दबाए जाते हैं कि जिससे श्रावकधर्म की प्रथम सीढ़ी सम्यक्त्व अवस्था को प्राप्त नहीं कर ये भव-विपिन/वन के कष्टों को दूर नहीं कर सकते हैं।

देवों को तीव्र लोभ और नारकिओं को तीव्र क्रोध, अन्य कषायों की अपेक्षा अधिक विह्वल रखते हैं और परिणामों को पौद्गलिक वासनाओं से हटने नहीं देते हैं; परंतु जिन देव-नारकिओं के अंतरंग में भेदज्ञान का दीपक जलता है, उन्हें कषायों की पवन अंधकारमय नहीं कर सकती है। वे स्वात्म-प्रकाश में स्वरूप-तन्मयतारूपी मोक्षमार्ग को पा आनंद की झलक से पृथक् नहीं होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नारकी जीव जिस अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत लोभ को रखते हैं; उससे संख्यातगुणा, संख्यातगुणा अधिक काल पर्यंत क्रमश: माया, मान और क्रोध का अनुभव करते हैं। देव जिस अंतर्मुहूर्त पर्यंत क्रोध को भोगते हैं; उससे संख्यातगुणा, संख्यातगुणा अधिक काल पर्यंत क्रमश: मान, माया और लोभ को धारण करते हैं। मनुष्य और तिर्यंच जिस अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत लोभ कषाय को रखते हैं; उससे संख्यात-गुणा, संख्यातगुणा काल पर्यंत क्रमश: माया, क्रोध और मान के आक्रमणों को सहन करते हैं।

वास्तव में चारगति में उत्पन्न नानाप्रकार के सुख-दु:खरूप धान्यों को पैदा करनेवाला, इस संसारी वैश्य का भृत्य-सेवक कषाय ही है। यही बंधरूपी क्षेत्र को तैयार करता है और मिथ्यादर्शनमय जीव के संक्लेश परिणामरूप बीज को बोता है। जिसके कभी कड़वे, कभी मीठे फल भोग-भोग यह जीव मीठे फलों के लोभ में तरसा करता है; परंतु अमृतमयी स्वरूप-भोग्य फलों को प्राप्त नहीं कर, वृथा ही पर में सुख मान कर आकुलित होता रहता है और अंतरात्मा के समान निष्कषाय भाव से रचित शांत भाव के सुखप्रद अमृतों को नहीं पाकर अनुभवानंद के रस से वंचित रह भवभ्रमण करता रहता है।

धन्य हैं कषाय-विजयी वीरात्मा ! जिनकी आत्मभूमि को कषायों का वेग किसी भी प्रकार से मलिन नहीं कर सकता है; जो निरन्तर आत्मज्ञान का सुधारूप रसपान करते हैं; वे ही भव के क्षणिक सुखों से अतीत, अतींद्रिय, अविनाशी अनुभवानंद को भोगते हुए तृप्त रहते हैं।।४५।।

४६. ज्ञानमार्गणा की महत्ता – स्व-संवेदनज्ञान द्वारा मनन-योग्य, सदा शुद्ध, परम-पारिणामिकभाव के स्वामी, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

एक स्वभाव की सहज समाधि लीन, निर्विकार पदचारी, निराकुल ध्यान कलाधारी, भवहारी, संतों को सुखकारी, अत्यंत प्यारी, मनोहारी छविमय अटल बहार जिससमय अंतरात्मा के उदासीन तन प्रदेशों पर आ धारित हो जाती है; तब ऐसा प्रतिभासित होता है, मानो आसमानी वस्त्र पर हीरे-रत्न के छोटे-छोटे टुकड़े जड़ दिए गए हों।

चंद्रकांत मणि की प्रभा के समान प्रभावान आत्मद्रव्य जब शशिमय उज्ज्वल परमात्मा से भेंट करता है, तब उसके अंग-अंग से अमृत की धारा बरसने लग जाती है। जब श्रुतज्ञान की पवन से दीप्तिवान धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानरूपी अग्नि; अनादिकाल से आत्माराम को अचेत करनेवाले कर्मों को जलाती है तो सहसा लोकालोक को देखनेवाली स्वप्रभा उदित हो जाती है। इस केवलज्ञान-मय प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान में विराजमान आत्मा सकलपरमात्मा हो, अपने विहार से जगत के निकट भव्यों को मार्ग दिखाता हुआ, अटल स्वभाव में रहकर अनंतसुख को भोगता है।

निज तप की शुद्ध भावना से रहित, शुभ अनुराग की उज्ज्वलता से यद्यपि योगीराज अवधिज्ञान प्राप्त कर रूपी पदार्थों को देखते हैं और भूत-भावी भवों को भी जान लेते हैं अथवा मन:पर्ययज्ञान उपलब्ध कर दूसरों के मन में विद्यमान सूक्ष्म, सरल, वक्ररूप रूपी विषयों का ज्ञान कर लेते हैं; तथापि इन दोनों ज्ञानों से अपने शुद्धात्मा के अनुभव में कुछ भी सहयोग नहीं मिलता है। इस अनुभव के लिए तो इन्हें भी गुणवान, सुखथान, श्रुतज्ञान की ही शरण लेनी पड़ती है।

इंद्रिय और विषय के संयोग के बाद होनेवाला वस्तु का सत्तामात्र सामान्य निर्विकल्प अवलोकन दर्शन है। तदनंतर देखे हुए पदार्थ का वर्ण, संस्थान आदि विशेष ग्रहण अवग्रह नामक मतिज्ञान है। तत्पश्चात्

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसी के विशेषरूप को जानते हुए निर्णय कर लेना और उसे कालांतर में नहीं भुलाना इत्यादि सभी मतिज्ञान है। पाँच इंद्रिय और मन के द्वारा पदार्थ के विषय का ज्ञानमात्र होना मतिज्ञान है; परंतु इसके बाद उस ज्ञान से सुखी या दुःखी होना अथवा प्रयोजन को पहिचान कर, हेय-उपादेय समझना इत्यादि सम्पूर्ण कार्य महिमावान श्रुतज्ञान के ही हैं। वृक्षादि एकेंद्रिय भी स्पर्शन इंद्रिय द्वारा मात्र स्पर्श-विषय को जानकर, अपने साथ विद्यमान अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कारण ही दुःख-सुख का वेदन करते हैं।

धन्य है अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, जिसके अपुनरुक्त अक्षर ६४/२ द्विरूपवर्गधारा ऋण एक अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ अर्थात् २० अंक प्रमाण संख्यावाले हैं तथा इनके बने हुए आचारांगादि द्वादशांग में समाए हुए पद ११२८३५८००५ अर्थात् दश अंक प्रमाण हैं। एक पद में १६३४८३०७८८८ अर्थात् ११ अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं। अवशेष अंगबाह्य में ८०१०८१७५ अर्थात् ८ अंक प्रमाण अक्षरों में सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक होते हैं।

इतने विस्तारमय सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के धारी श्रुतकेवली यद्यपि सर्व वस्तुस्वरूप को जानते हैं; तथापि यह श्रुतज्ञान अगाध केवलज्ञानरूप समुद्र का एक बिंदुमात्र ही ज्ञान है। जिस ज्ञानमार्गणा में वस्तु की अनेकांतता प्रतिभासित होती है, उस ज्ञानमार्गणा के धनी एक अकेले आत्माराम में अपूर्व ज्ञाता-दृष्टापने की शक्ति है। धन्य हैं वे आत्मा! जिनके प्रत्येक शुद्ध निर्मल प्रदेश में यह अपूर्वशक्ति व्यक्तभाव सहित विद्यमान है।

शुद्ध निश्चयनय से सम्पूर्ण विश्व के अनंतानंत आत्माओं का ऐसा ही स्वभाव है। जो कोई अंतरात्मा इस शुद्ध निश्चयनय की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकत्व दृष्टि से सर्व जीवों में स्थित शुद्धस्वभाव की एकता का अनुभव करते हैं। वे एक ब्रम्हमयी शांत समुद्र में डूबकर अद्वैतरस की शीतलता उपलब्ध करते हुए परमानंदमयी, सुधा-स्वरूप अनुभवानंद का अनुपम स्वाद ले परम तृप्तता के पात्र बन अजर-अमर पदवी के भोगी होते हैं।।४६।।

४७. **संयममार्गणा में स्वरूप-विकास** – सुधासमुद्र अवगाही, गुणसमूह प्रवाही, निराकुल पद ध्या चेतनता समुदायी, शिवराजा चेतनराम जब निज अनुभव के विलास में उल्लसित होता है; तब पर-पदार्थों के समूह अपनी सम्पूर्ण चंचलता और विकटता को लेकर आत्माराम की वीतराग भूमि से विदा हो जाते हैं। उनके जाते ही उस वीतरागमयी पृथ्वी में ऐसी स्वच्छता प्रतिभासमान होती है कि उस आत्मा के ज्ञान के सम्मुख स्वभाव से ही आए हुए पदार्थ अपनी यथार्थता को दिखलाते हुए माया और कपट के परदों में छिपे रहते हुए भी कभी भी चतुर चैतन्य को अचैतन्य नहीं कर सकते हैं।

संसारी अंतरात्मा निज शुद्धात्म गुफा-प्रवेशरूप संयम का उत्साही हो जब अपनी रक्षा के यत्न में लग जाता है, तभी पंचेंद्रिय-विषयों की और मन की विषय-प्रवृत्ति रुक जाती है तथा उस अंतरात्मा की ओर से षट्काय के जीवों को अभय-दान प्राप्त होने लगता है। असंयम भाव में स्थित हुआ जीव भी यद्यपि विषय-निरोध और परदया की प्रगटता से वंचित होता है; तथापि जब शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायकाकार, टंकोत्कीर्ण, एक निजस्वरूपानंद में अनंतानुबंधी कषाय के दबने से स्वरूपाचरण चारित्र के द्वारा, एक निमेष मात्र के लिए भी मग्न हो जाता है; तब स्वतः स्वभाव से ही निश्चयसंयम को पाकर आनंद का अनुभव कर लेता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशम/अनुदय होने पर इस अंतरात्मा में ऐसी शक्ति व्यक्त हो जाती है कि यह इंद्रिय-विषयों को रोकने में और परजीवों की रक्षा में अपने परिणामों को चढ़ाता हुआ देशसंयम को प्राप्त कर पहली प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमापर्यंत आरोहण कर शीघ्रातिशीघ्र शुद्धात्मगुफा में प्रवेश करने का ऐसा उत्साह और उद्यम करता है कि मानो इसे भव-स्थितिकारी परिणामों से ग्लानि ही उत्पन्न हो गई हो।

यह श्रावक पदधारी कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अधिक व हीन आरंभ भी करता है व परिग्रह पोट भी धारण करता है; परंतु ये सभी कार्य उस अपराधी चोर के समान करता है, जो मुक्त होने का इच्छुक होने पर भी दूसरों के द्वारा कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

संज्वलन कषाय की स्थूल/तीव्र तथा मंद अवस्था को प्राप्त कर जब यह अंतरात्मा सकल संयम में प्रविष्ट होता है; तब छठवें से नवमें गुणस्थान पर्यंत सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहार विशुद्धि संयमों के द्वारा ऐसा स्वरूप-मग्न होता है कि ध्यानावस्था से विचलित होना एक महाकष्ट समझता है और अपने प्रशंसनीय संयमभाव से शुक्लध्यान को ध्याता हुआ निश्चयस्वरूप के स्वाद में आनंदित हुआ करता है।

जब इस अंतरात्मा के निकट मात्र एक संज्वलन लोभ की झलक रह जाती है; तब यह सूक्ष्म-सांपराय संयम को प्राप्त कर ध्यान की दृढ़ता से मोह-वीर का घात कर यथाख्यात संयम को प्राप्त कर लेता है। इस समय निजध्येय में द्वैततारहित स्थिरता के बाद पुनः कभी अनंतानंतकाल के बाद भी निजस्वभाव को नहीं छोड़ता है। त्याग करने-योग्य और ग्रहण करने-योग्य विकल्पों से पृथक् रह यह आत्म-द्रव्य, स्वात्मा को ही निजात्मा के द्वारा निजानंद अनुभव के लिए

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्याता हुआ, निज से/निज की प्रगटता को, निज में पाता हुआ जगत के प्रसारों से ऐसा गुप्त हो जाता है कि फिर कभी भी नहीं लौटता है तथा निर्मल स्फटिकमयी वीतरागमय शैया पर लेटा हुआ ऐसा आत्म-निद्रित हो जाता है कि प्रतिसमय विच्छेदरहित अनुभवानंद को भोग सदा के लिए अतृप्त रहता है।।४७।।

४८. दर्शनमार्गणा का अवलोकन – पर-पद-उन्मुखता-धारक, निज सम्मुखता-कारक, मन्मथ-मद-हारक की शांतिमय प्रतिमा भव-तिमिर को नष्ट करती हुई निज गुण-पर्यायों में ऐसी चमत्कारिकता प्रदर्शित कर रही है कि जिसकी आभा के सामने कोटि सूर्य और चंद्र लज्जित हो जाते हैं। वस्तु का स्वाभाविक धर्म कभी भी धर्मी से भिन्न नहीं होता है। आत्मा में अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य सदैव विद्यमान हैं। वे न कभी आवर्णित होते हैं और न कभी खुलते हैं। स्वपद की शुद्धता को ग्रहण करनेवाला शुद्धनय मुमुक्षुओं को ऐसा ही उपदेश करता है।

यद्यपि व्यवहारनय इसी आत्मा को कर्मसंबंधजनित भावों से कभी लिप्त और कभी अलिप्त कहता है; तथापि जो स्व-समाधि में लीन हो, निज सुधामय सरोवर से उपयोग की अंजुली द्वारा स्वामृत का पान करते हैं; उन्हें नयों का विकल्प आकुलित नहीं करता है। अनंतगुणों से सहित, अनंत धर्मों के धनी आत्माराम के अनुभव का प्रतिसमयवर्ती रस-वेदन उसीप्रकार हुआ करता है; जिसप्रकार एक सहस्र जड़ी-बूटिओं से बनी गोली का रस-वेदन किसी औषधि-सेवी को होता है।

जबतक अद्वैतता का परम स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता है; तबतक यह ध्याता, ध्येय का ध्यान करता हुआ औषधि-सेवी के रसानुभव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के समान आचरण करता है। परम स्वास्थ्य-लाभ करने पर यह स्वयं रस-सागर हो जाता है और अपनी अव्यक्त तरंगों में स्वयं ही रंजित होता हुआ कभी भी अपने सत्त्व को स्वभाव से प्रतिकूल नहीं करता है।

यद्यपि अनंतदर्शन आत्मा का स्वभाव है; तथापि संसारी आत्माओं के चरित्रों को देखते हुए, उनके इस स्वभाव की प्रगटता पृथक्-पृथक् रूप में हो रही है। चतुरिंद्रिय और पंचेंद्रिय जीव तो चक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से अपने नेत्रों द्वारा रूपी पदार्थों का चक्षुदर्शन संबंधी सामान्य अवलोकन करते हुए भी उसका विशेष समाचार/स्वरूप तो अपने मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा ही जानते हैं।

वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। सामान्य का अवलोकनरूप ग्रहण आत्मा का दर्शन गुण करता है और विशेष को जानना ज्ञान गुण के अधीन है। खेद है कि यह चक्षुदर्शन अरूपी आत्माराम के अवलोकन से वंचित रहता है। एकेंद्रिय से असैनी पंचेंद्रिय पर्यंत के जीव अचक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से अचक्षुदर्शन द्वारा रूपी पदार्थों का स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इंद्रियों द्वारा अवलोकन कर लेते हैं; परंतु अरूपी निजवस्तु के दर्शन में अपनी गति को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

मनसहित/सैनी पंचेंद्रिय अरूपी पदार्थों के दर्शन में भी शक्तिमान होते हैं; परंतु सम्यग्दर्शन-मित्र की सहायता के बिना अपने आत्म-स्वरूप को नहीं देख सकते हैं। जो जीव अवधिदर्शन की लब्धि सहित होते हैं, वे दूरवर्ती परमाणु से महास्कंधपर्यंत रूपी पदार्थों को देख सकते हैं; परंतु उसके द्वारा अरूपी आत्मा के दर्शन करने में शक्तिमान नहीं होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धन्य है केवलदर्शन ! जो एकसमय में लोक-अलोक को देखता है। यह केवलज्ञानी अरहंत की शक्ति की अपूर्वता ही है कि जिससे केवली के अनंतगुण एक ही समय में युगपत् अपना कार्य करते हैं। जिससमय केवलदर्शन देखता है और केवलज्ञान जानता है; उसीसमय केवली निजस्वरूपानंदी वस्तु का स्वाद लेते रहते हैं।

दर्शनमार्गणा में भेदों की कल्पनारूप आत्माओं का अवलोकन होता है; परंतु दर्शनमार्गणारहित अवस्था में इस मार्गणा का कहीं भी चिन्ह नहीं होता है। शुद्ध, बुद्ध, निराकुल पद-आरोही आत्मा अभेदरूप रह निज स्व-संवेदन सिंहासन पर बैठा हुआ, अपनी मनोहारी यथार्थता का अनुभव करता हुआ ऐसा स्वरूप-मग्न रहता है कि निज अनुभवानंद के लाभ को कभी भी नहीं छोड़ता है।।४८।।

४९. लेश्यामार्गणा में भव-भ्रमण – निष्कषाय, निरावरण, निर्लेप, निर्लेश्य, निर्द्वंद, निराकार, सत, सुखी, समाधितंत्रलीन, सर्वदोषहीन, अक्षीण, निजगुणरत्नाकराधीन, समीचीन चैतन्यस्वरूप के अनुभव की रागिनी इस भव्यजीव के रोम-रोम को प्रफुल्लित कर रही है; जिससे यह आत्मा पुण्य कर्मों का अतिशयरूप बंध करता हुआ भी अबंध, अकर्म सिद्धस्वरूप की उपलब्धि के लिए अत्यंत विह्वल हो रहा है।

यह स्वरूप-कंटकमय वृक्षों के वनों से भाग कर आम्रफलों से पूरित, सघन स्वगुण वृक्षों की आत्मसत्तारूप वाटिका की छाया में जाता है और एकांतता की अनुपम सुगंध को लेता हुआ ऐसा मग्न हो जाता है कि सकल संसार को भुलाकर, एक अपूर्व संसारातीत वस्तु की भावना करता हुआ, परमानंदरस का वेदन करता है।

धन्य है यह संतोषी आत्मा ! जो बड़ी कठिनता से निज-सुधा-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समुद्र के तट पर आया है। मंद कषाय से लिप्त इसकी आत्म-परिणति शुक्ललेश्या की महिमा को प्रगट कर रही है।

बैरधारी, भंडक्रिया-स्वभावी, हिंसापरायण, दुष्ट, हठी, स्वतंत्रमार्गी जो जीव पर-नाश में हर्षित होते हैं; मात्र आम्रफल की कामना से सम्पूर्ण आम्रवृक्ष को जड़मूल से उखाड़नेवाले के समान परिणामधारक वे कृष्णलेश्या के धारी होकर तीव्र कर्म का बंध कर नारकी, तिर्यंच अथवा कभी दुष्ट नर और भवनत्रिक हो जाते हैं।

खेद है इन्हें आनंद धाम, शिवराम, अभिरामी की जानकारी तक भी नहीं होती है और यदि कभी किसी को सम्यक्त्व के कारण इसकी श्रद्धा हो भी जाती है तो वह सतत अनुभव में प्रवृत्ति नहीं रख पाती है।

आम्रफल हेतु आम्रवृक्ष के स्कंध को तोड़ने के लिए उत्सुक व्यक्ति के समान परिणामधारी जो जीव निर्बुद्धि, विषय-लोलुपी, मानी, मायाचारी, आलसी, निद्रालु, धन-धान्य के प्रति तीव्र अनुरागी होते हैं; वे जीव नीललेश्यास्वभावी होकर तिर्यंच, दुष्ट मनुष्य, भवनत्रिक या पंचम नरक पृथ्वीपर्यंत जाकर दुःख ही भोगते हैं; स्वाधीन सुख के नित्य अनुभव से वंचित रहते हैं।

आम्रफल के लिए आम्रवृक्ष की आम्रफलयुक्त बड़ी शाखा को तोड़ने की कामनावाले व्यक्ति के समान परिणामधारी जीव रोषधारी, पर-निंदक, परदोष-आरोपक, शोकी, भयभीत, आत्म-प्रशंसक, अश्रद्धालु, सेवा-प्रिय, हानि-वृद्धि के विवेक से शून्य, स्तुति किए जाने पर प्रसन्न हो जानेवाला, रण में मरण को उद्यत, नाम के लिए अपना सर्वस्व दे देनेवाला, निज कार्य को नहीं गिननेवाला इत्यादि लक्षण संपन्न कापोत लेश्या से कर्म-बंध करते हुए भवनत्रिक देव,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मनुष्य, तिर्यंच या तीसरी नरक पृथ्वी पर्यंत जाकर दुःख का ही अनुभव करते हैं। इस लेश्यावाले कोई जीव काललब्धि की निकटता से सम्यक्त्वधारी असंयत हो आत्मसुख की श्रद्धा से कुछ साताभाव का भी उपयोग कर लेते हैं।

पुण्य के उदय से जो जीव कार्य-अकार्य, सेव्य-असेव्य के ज्ञाता होकर, सभी को समदृष्टि से देखते हुए, दया-दान में रत और कोमल स्वभावी होते हैं; वे जीव आम्रफल के लिए आम्रवृक्ष की छोटी डाली तोड़ने को उत्सुक व्यक्ति के समान परिणामवाले तेजो/पीत लेश्या के धारक हो, पुण्य बाँधकर, चौथे/माहेंद्र स्वर्ग पर्यंत जाकर, इंद्र या ऋद्धिधारी देव होते हैं; मनुष्यों में बलभद्र व चक्रवर्ती भी हो सकते हैं; वे साक्षात् आत्मानंद के रस का वेदन करते हैं।

जो जीव त्यागी, भद्र परिणामी, सुकर्मकर्ता, क्षमाशील और साधु पुरुषों की भक्ति में रत रहते हैं; वे जीव आम्रफलों को तोड़कर खानेवाले व्यक्ति के समान पद्म लेश्यावान हो सुकृत बाँध, मरण कर तीसरे/सानत स्वर्ग से बारहवें/सहस्रार स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न हो जाते हैं तथा यदि सम्यक्त्व की कृपा हुई तो सहजानंद की मिठाई भी खाते हैं।

जो जीव पक्षपात और निदानरहित स्नेह संपन्न होते हुए भी राग-द्वेष के त्यागी, सर्व पर समभावी होते हैं; वे जीव जमीन पर पड़े हुए आम्रों को खाने के इच्छुक व्यक्ति के समान शुक्ल लेश्यावान हो ग्यारहवें/शतार स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यंत पहुँच जाते हैं। नवमें ग्रैवेयिक के ऊपर तो सभी सतत स्वात्मानंद का स्वाद लेते हुए द्रव्यों की चर्चा में रत रहते हैं।

धन्य हैं वे जीव ! जो क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ललेश्या धारण कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

१४वें गुणस्थान में अलेश्य हो, पर्याय त्याग कर, लोकाग्र पर जा, सिद्धभाव के अमल, अतीन्द्रिय सुख को भोगते हुए, लेश्यामार्गणा से सर्वथा, सदा के लिए भिन्न हो, निर्मल स्फटिक घट में भरित निजसुधा का स्वाद ले परम अनुभवानंद में तृप्त रहते हैं।।४९।।

५०. भव्याभव्य-विकल्प न करना – भवोदधि-नौकाधारी, स्वप्रताप-विस्तारी, अविकारी आज अत्यंत प्रसन्न वदन हो शीघ्र-शीघ्र भवसमुद्र के दुःखरूप खार जल को पार करता हुआ, नव शिव-द्वीप की ओर बढ़ा चला जा रहा है। इसका भव-समुद्र इसी के घटरूप मध्यलोक में विराजमान है। सम्यक्त्वरूपी नौका के द्वारा यह भव्यात्मा पाप-पुण्यरूप जल को हटाता हुआ भावों की विशुद्धता-रूप शीघ्र गति से भवोदधि तट के निकट चला जा रहा है।

इसके कंठ में अपने करों को डाले हुए इसकी वीतराग स्वसंवेदन-जन्य अनुभूति-तिया आनंदरूप मंद, सुगंधमय पवन की गतिओं से इसे उन्मत्तता की दशा में देखकर तथा स्वयं भी उन्मत्त होती हुई एकाग्रता के भाव में सम्पूर्ण विश्व का विस्मरण करती व कराती हुई, शिवानंद का आल्हाद मना रही है। मध्य-मध्य में परममिष्ट ध्वनि के साथ अनुभूति-तिया सोऽहं का गान गाती है और चेतनराम स्वरूप-भावना का हारमोनियम बजा, तान में तान मिला, एक तान गति की महिमा को विस्तृत कर रहे हैं।

उपशमता, संवेगता, वैराग्य, आस्तिक्य, भक्ति वात्सल्य, अनुकंपा, क्षमा आदि अनुभूति-तिया की सखिआँ चेतनराम और अनुभूति की रक्षा में विधिवत् दत्त-चित्त हैं तथा बारम्बार सेवा और वैयावृत्त्य कर अपनी हार्दिक प्रीति प्रगट कर रही हैं।

धन्य हैं वे जीव ! जो दुःखसागर में स्वधन को लूटनेवाले पंचेंद्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयरूपी चोरों के बृहत् जालमय जहाज के आक्रमण से अपने यान की रक्षा करते हुए, तीव्र कषायों की पवनों से उसे बचाते हुए, परम हर्षपूर्वक स्वकार्य के सम्मुख हो रहे हैं। ये ही अत्यंत निकट भव्य जीव हैं। इन आत्माओं में शुद्ध होने की जो योग्यता अनादिकाल से विद्यमान थी, वह योग्यता अब अपने कार्य की प्रगटता-हेतु उद्यमवंत हो रही है तथा शीघ्र ही पंचमधाम के आनंद को प्राप्त कराएगी।

यद्यपि अभव्य जीवराशि युक्तानंत की संख्या प्रमाण ही है; शेष सभी भव्यराशि है; तथापि अनंतानंत भव्यजीवों में से निकट भव्यता पाना अत्यंत दुर्लभ है। क्या शुद्ध स्वर्ण होने की योग्यता रखनेवाला सम्पूर्ण स्वर्ण-पाषाण स्वर्ण हो जाता है? कभी नहीं; उसीप्रकार आसन्नभव्यों का परिमाण अल्प है।

वीतराग, सर्वज्ञ के वचन प्रमाणभूत हैं; क्योंकि वे वीतराग, सर्वज्ञ अन्यथावादी नहीं होते हैं – इस आगम-प्रमाण द्वारा भव्यमार्गणा का स्वरूप जानकर, जो इस विकल्प में नहीं उलझते हैं कि हम भव्य हैं या अभव्य; वरन् पुरुषार्थ की डोर हाथ में ले, धर्म अश्व पर आरूढ़ हो चले जाते हैं; वे ही वीर, पुरुषार्थी हैं।

वे यदि अभव्य हुए तो नवमें ग्रैवेयिक पर्यंत की यात्रा कर आते हैं और यदि भव्य हुए तो साक्षात् आत्माधीन आनंद का विलास पाते हुए, अंत में अनंत सुख के धनी हो जाते हैं।

बाह्य में मुनि-सदृश व्रत पालते हुए, 'मैं आत्मभावना करता हूँ'-यह भी ज्ञान रखते हुए जो अंतरंग में मिथ्यात्व कर्म की प्रबलता से विषय-लालसा का रंग नहीं छुड़ा सकते हैं और अतीन्द्रियसुख की जाति को नहीं पहिचान सकते हैं; वे द्रव्यलिंगी मुनि अपने पुण्य के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फल से ही अपनी विषय-खाज खुजलाया करते हैं; परंतु धन्य हैं वे भावलिंगी भव्य साधु! जो भव्य मार्गणा आदि विभाव-विकल्पों से सर्वथा पृथक् रह, निजरस सुधा-समुद्र में मग्न हो, तीन रत्न को निकाल, अपने अनुभव-मुकुट में जड़कर ऐसे शोभायमान होते हैं कि मानो मोक्ष-कन्या का वरण करने के लिए उत्सुक वर ही हैं। जो भव्य सुरस-समाधि में प्रवीण हैं; वे ही समस्त क्षण-भंगुर सुखों से बाह्य अविनाशी अनुभवानंद का स्वाद ले परम संतोषित रहते हैं॥५०॥

५१. सम्यक्त्वमार्गणा की झलक – परमधर्मधारी, निजाराम-विहारी, अविकारी, शुद्धस्वरूप-संचारी, भवहारी, गुणसमूह-आधारी, रंजित शिवनारी, आत्मानंदकारी भव्य आज धर्म्यध्यान-मेघ द्वारा वर्षित सुधासदृश जल का पान कर अनादि तृषा को नष्ट कर, निज प्रिया की भेंट को उद्यमवंत हो रहा है। धन्य है यह जीव ! जो मन सहित, पर्याप्तक, जागृत, सद्लेश्यावान और ज्ञानी हो, पाप से चित्त मोड़, जिनवाणी से अनादिकालीन अज्ञान-बंधन को तोड़कर, अपने कर्मों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर कर प्रायोग्यलब्धि द्वारा प्राप्त विशुद्धि को प्रतिसमय अनंत गुणी विशुद्ध करनेवाली करणलब्धि की महिमा से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है।

इससे संसार में अनादि से रुलानेवाली मिथ्यात्व प्रकृति अनंतानुबंधी कषायरूप अपने चार सहकारी योद्धाओं के साथ इसके पास में छिपकर, निष्क्रिय हो पृथक् बैठ गई है; परंतु बैठे-बैठे इसने अपने एक रूप के तीन रूप कर लिए हैं। उनमें से एक का नाम तो मिथ्यात्व ही रहने दिया है; शेष दो के नाम इसने मिश्र/सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय रख लिए हैं। यद्यपि मिथ्यात्व प्रकृति उपशमित हो गई है; तथापि उसकी यह स्थिरता कम से कम एक समय अधिक

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक आवली और अधिक से अधिक एकसमय कम ४८ मिनिट पर्यंत ही रह सकती है।

इस अंतर्मुहूर्त के समाप्त होते-होते ही मिथ्यात्व के तीनों रूप और सहकारी चारों योद्धा पृथक्-पृथक् इस बेचारे आत्मा के निर्मल परिणाम पर आक्रमण करने की चेष्टा करते हैं। उसमें यदि मिथ्यात्व का जोर लग गया तो यह बेचारा तत्काल मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यदि चारों सहकारी योद्धाओं में से किसी का दाव पड़ गया तो गिरते हुए सासादन अवस्था में कम से कम एकसमय और अधिक से अधिक छह आवली का काल व्यतीत कर, मिथ्यात्व की भूमि में चला जाता है। यदि मिश्र मोहनीय का वश चल पड़ा तो वह औपशमिक सम्यक्त्वी दही-गुड़ के समान मिले हुए सम्यग्मिथ्यात्व श्रद्धान में अंतर्मुहूर्त के लिए आ जाता है और यदि कुछ मंदतम पाप के उदय से सम्यक्त्व-मोहनीय ने ही पकड़ लिया तो सम्यक्त्व से सर्वथा न गिरकर; निर्मल भाव से चल, मल, अगाढ़रूप श्रद्धा भाव में आ जाता है। यहाँ इसका नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी हो जाती है तथा इस भाव को अधिक से अधिक ६६ सागर और कम से कम एक अंतर्मुहूर्त पर्यंत नहीं छोड़ता है।

शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा सम्यग्दर्शन इस आत्मा का स्वाभाविक गुण है; परंतु व्यवहारनय की अपेक्षा यही दर्शन गुण अनादि या सादि दर्शनमोहनीय के द्वारा सर्वथा आवरणित रहने से मिथ्यात्व के नाम से कहलाता है। इसीप्रकार इस एक दर्शन गुण (पर्याय) के ही नाम सासादन, मिश्र, औपशमिक और क्षायोपशमिक हो जाते हैं। जब किसी क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी को कर्मभूमि में उत्पन्न होकर, मनुष्य भव में केवली या श्रुतकेवली की परम कार्यकारी संगति प्राप्त होती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; तब वही सम्यक्त्व गुण मलिनता का त्याग कर क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है। वास्तव में यही गुण (पर्याय) आत्मा का व्यक्तरूप सम्यक्त्व गुण है।

आश्चर्य है कि एक ही गुण परद्रव्य के संबंध के वश से अपने छह नाम धारण कर, अपनी छहप्रकार की अवस्था को बतलाता है; परंतु धन्य है इसका स्वाभाविक दर्शन गुण ! जब यह क्षायिक सम्यक्त्व की अवस्था में निर्मल हो जाता है; तब फिर इस शिव-तिया आसक्त जीव को अपनी प्राण-प्रिया के साक्षात् दर्शन करने में और उसके संभोग का आनंद लेने में अधिक देर नहीं लगती है। शिव-तिया संबंध को मिलानेवाली स्वरूप संवेदनमय अद्भुत गुण को धारण करनेवाली अनुभूति सखी चिरकाल के लिए उसके साथ ही हो जाती है और जघन्यतया उसी भव से तथा उत्कृष्टतया कुछ अधिक तेतीस सागर के अंदर-अंदर तीसरे या चौथे भव से उसे अटलधाम में पहुँचा, मंगलमयी हर्षनाद बजा, शिवतिया को प्रफुल्लित करा, अनुपम, अपतित, अमिट संबंध करा विश्राम लेती है।

चेतनराम शुद्ध कानन में जा, अपनी प्रिया सहित ऐसे तन्मय होते हैं कि पुनः अनंतकाल पर्यंत भी उसकी एकता का त्याग नहीं करते हैं और सम्यक्त्व मार्गणा के जाल से रहित हो, अपनी शुद्ध श्रद्धा से उत्पन्न, भवानंदों से अतीत, अनुभवानंद का स्वाद लेते हुए परम तृप्त रहते हैं तथा संसार-सम्मुख भावों की परंपरा से सदा के लिए अवकाश ग्रहण कर लेते हैं॥५१॥

५२. संज्ञी-असंज्ञी की कल्पना – परमसुखकारी, समता आराम-विहारी, निज मुक्तितिया-अटल भक्तिधारी, स्वसत्ता-प्रेम संचारी चैतन्य नाथ अपने विमल स्फटिक मणिमय विशाल महल के ऊपर बैठा हुआ, त्रिलोकमयी आकाश की छवि इस अनुपम वीतराग दृष्टि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से देख रहा है कि जो विचित्र पदार्थ संसारी इंद्रियविषयाधीन व्यक्ति को कभी रागी, कभी द्वेषी, कभी मोही, कभी शोकी, कभी आतुर, कभी आकुलित करते हैं; वे ही पदार्थ इस समदृष्टि धारी को अपनी एकाग्रदृष्टि से हटा नहीं सकते हैं।

जो निजस्वरूप परिणति की अटल सुदर्शन मेरुवत अडिग श्रद्धा में लीन हैं; उन्हें चक्रवर्ती की संपदा और अनेक उपसर्ग तथा परीषहों की युगपत् आपदा भी कभी विकारी नहीं बना पाती है; अनेक सेवकों द्वारा गाई गई प्रशंसा और द्वेषिओं द्वारा की गई निंदा, दृढ़ पर्वत के समान उनके उपयोग के ऊपर से मेघधारा के समान बहकर चली जाती है। वे साधु महात्मा, भव-भव-भ्रमणकारी कर्मचक्र के अंदर पुनः प्रविष्ट होने से उन्मुख रहते हैं। इनके अंतरंग में स्वरूप स्व-संवेदनधारा-धर नित्य, अमल, अनुपम अमृत की वर्षा किया करता है।

ये भव्यजीव इस वर्षा से भवाताप को हरते हुए, अपने अंतःकरण की स्वच्छ भूमि में भेदज्ञान-बीज डालकर, आत्मध्यानरूपी अंकुर को अंकुरित कर, स्वात्मीक धर्मरूपी वृक्ष को बढ़ाते हैं। जिसकी उत्तमक्षमारूपी शाखाओं में कोमल मार्दवगुणरूपी पत्तों को देख, आर्जवगुणरूपी रंगों की बहार ले, शौचगुणरूपी निर्मलता पर मोहित हो, सत्यता पवन की मंद हिलोरों को स्पर्श करते हुए, संयम परिणतिरूपी वृक्ष की सुडौल सघनता को देखते हुए, तपरूपी मनोहर पुष्पों से निकली हुई त्यागरूपी सुगंध की सुवास ले, आकिंचन्यरूपी भ्रमरों को मोहित करनेवाली तान को सुनते हुए ब्रम्हचर्यमय शीतल छाया में बैठकर मुमुक्षु जीव रोमांचित वदन होते हैं तथा इस वृक्ष की संगति से परमशुद्ध कार्यसमयसार के मिष्ट फलों को प्राप्त कर, उनका स्वाद ले, स्वयं को त्रिकाल विजयी जानते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खेद है कि ऐसे सुखदायी वृक्ष की ओर मनरहित, अनंतानंत असंज्ञी जीव, हमारे भ्राता किसी भी प्रकार से पहुँचने की योग्यता नहीं रखते हैं। वे न तो शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं; न विचारपूर्वक क्रिया कर सकते हैं; न उपदेश सुनकर समझ सकते हैं, वार्तालाप कर अभिप्रायों को बतला व जान नहीं सकते हैं; कार्य करने के पहले तर्क द्वारा सुकार्य व अकार्य ही पहिचान नहीं कर सकते हैं; तत्त्व-कुतत्त्व का ज्ञान नहीं कर सकते हैं; नाम लेकर पुकारने से आ भी नहीं सकते हैं; वरन् नो इंद्रियावरण कर्म के अधीन रहकर इसी अज्ञान अवस्था में पर्याय पूरी करते हैं।

जो देव, नारकी, पशु और मनुष्य नो इंद्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से इन सभी कार्यों की योग्यता रखते हुए मनसहित संज्ञी कहलाते हैं; उनमें से अनेकों तो मिथ्यात्व के वश हो उस धर्म वृक्ष के निकट ही नहीं जाते हैं।

धन्य हैं वे अत्यंत निकट भव्य ! जो अपनी मानसिक शक्ति का वास्तविक उपयोग विचार कर, परमधर्मरूपी वृक्ष की सेवा करते-करते ऐसे बेहोश/स्थिर हो जाते हैं कि संज्ञी होते हुए भी संज्ञी-असंज्ञी विकल्प से दूर रह, संज्ञीमार्गणा से अतीत, परमतत्त्व की भावना कर, भव विकारी सुखों से विलक्षण, अनुभवानंद का स्वाद ले, परम उन्मत्त के समान, निजस्वरूप के आँगन में ही नित्य नृत्य क्रिया करते हैं।।५२।।

५३. आहारकमार्गणा का विकल्प – स्वरूप-खोजी, समरस-भोजी, निज निष्कंटक राज्य संयोगी सम्यग्दृष्टि आत्मा अपार समुद्रवत संसार की भयावनी मूर्ति से अत्रासित होता हुआ; निज को शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी परमात्मा मानता हुआ; त्रिलोकपतिपने के महत्त्व से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं को अतिशय प्रभावशाली देखता हुआ; सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के विकल्प भाव से छूटा हुआ; तीनों के रस से प्रत्येक प्रदेश में भीगा हुआ, शुद्ध अनुभूति-तिया के रमण में उन्मत्त होता हुआ, अपने आप में सिद्धशिला का स्थान रखता हुआ, वीतरागता की मनोहर तरंगों से उछलता हुआ अत्यंत हर्षित हो रहा है।

इसके हर्ष के प्रकाश के सम्मुख आकुलता का अंधकार विलय को प्राप्त हो गया है तथा चिरकाल से अप्राप्त अमृतमय, शुद्ध स्वरसमय व्यंजन का लाभ लेने लगा है। उनका स्वाद लेते हुए यह ऐसा पुष्ट हो गया है कि इसमें अनुपम वीर्य का प्रादुर्भाव हुआ है और पुद्गलमय आवरण अस्तभाव को प्राप्त होता जा रहा है।

यद्यपि यह आत्मा स्वयं ही शुद्ध और सिद्ध है; तथापि अनादि परसंबंधजनित कर्मों के संयोग से अशुद्ध हो रहा है। इस अशुद्धता के निमित्त से ही निरंतर द्रव्यकर्म और नोकर्म की वर्गणाएँ आत्मा के निकट आती हैं और जीव के सूक्ष्म या स्थूल शरीरों में प्रविष्ट हो जाती हैं।

जब तक यह आत्मा योगरहित केवलज्ञानी अरहंत नहीं हो जाता है; तबतक कोई एकसमय भी ऐसा शेष नहीं है, जिसमें यह आत्मा द्रव्यकर्मों को आकर्षित नहीं करता हो; यही कारण है कि द्रव्यकर्म की अपेक्षा को न गिनकर ही इस जीव को कभी आहारक और कभी अनाहारक कह दिया करते हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारकयोग्य आहारवर्गणा तथा भाषा और मनोवर्गणा को आकर्षित करने के कारण इस जीव को आहारक कहते हैं तथा यह जब इन्हें आकर्षित नहीं करता है, तब अनाहारक कहलाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब यह संसारी जीव एक स्थूल शरीर को छोड़कर अन्य स्थूल शरीर प्राप्त करने के लिए जाता है; तब मध्य में इसकी अवस्था को विग्रहगति कहते हैं। इस अवस्था में, मूल परमौदारिक शरीर में रहते हुए भी तीनलोक में अपने आत्मप्रदेशों को व्याप्त करानेवाले समुद्घातदशा के धारी केवली में, अयोग केवली में और श्री सिद्ध जीवों में नोकर्मों का प्रवेश नहीं होता है; इसकारण इन नोकर्म ग्रहण-रहित आत्माओं को अनाहारक कहते हैं।

यह सम्पूर्ण कथन व्यवहारनयाधीन है। शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा आहारकमार्गणा के विकल्पों से रहित नोकर्म और द्रव्यकर्म से तीनों कालों में भी स्पर्शित नहीं होनेवाला यह टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव स्व-समाधि की मनोहर नौका में बैठा हुआ, भव-समुद्र की मंजिल को तय करता हुआ चला जा रहा है। मार्ग में कषाय-शत्रुओं के आक्रमण से अपने चैतन्य-धन की रक्षा करता हुआ कभी भी प्रमाद की निद्रा में अचेत नहीं होता है।

पथ का काल अत्यंत विस्तारयुक्त होने से यह स्वरूपासक्त उसी नौका में प्राप्त हो जानेवाले उपशमभाव के शांत जल को तथा समता-भाव के मिष्ट स्वादिष्ट आहार को ग्रहण करता हुआ, मुक्त दीप की ओर दृष्टि लगाए हुए, सोऽहं की सुरीली तान गाता हुआ, भव के क्षणिक सुखों से अतीत, अनुभवानंद का उपभोग करता हुआ परम तृप्तता का लाभ ले रहा है।

पंचव्रतों की छटा संपन्न, अबंध, अकाल, अरूपी, अजर, अमर, अनूप, अटूट, आनंद-स्वरूपी आत्मा आज अपनी अनोखी आभा के आकार में आभास करता हुआ शशि की पूर्ण कला को लज्जित कर रहा है। निष्कलंकता की ध्वजा फहराता हुआ यह विशाल आत्म-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मंदिर शिखरमय स्व-स्वरूपस्थित अगुरुलघुगुण द्वारा षट्गुणी हानि-वृद्धि से ध्वजा का हलन-चलन करता हुआ, अति-आसन्न-भव्यजीवों को निज-निकट आह्वान कर रहा है।

जो जीव स्वरूप-सम्मुख होकर उस शशि मुख पर अपनी दृष्टि की टकटकी लगाते हैं; वे जीव ताप को मिटा, शांतता को पा, शशि-निर्गत सुधा-बिंदुओं का पान कर स्व-जन्म कृतार्थ करते हैं। जो जीव द्रव्यश्रुत के रसिक हो, उसी रस के मद में मत्त हो भावश्रुत को उपलब्ध नहीं करते हैं; वे जीव वृथा ही बालू पेलकर तेल की आशा करते हैं।

जिस तत्त्व में १४ गुणस्थान और १४ मार्गणास्थान का प्रवेश नहीं है; जो तत्त्व सात नय और उपनयों से दूर है; जहाँ नामादि निक्षेपों का व्यवहार नहीं हो सकता है; उस तत्त्व की हरी-भरी शोभा ही मन को प्रसन्न करती है और इस मन को एक क्षण के अंदर ही अमन कर देती है। मन का अमन होना इंद्रियों को शून्य करता है और तब आत्मा का उपयोगरूपी जल सभी ओर से सिमट कर आप थल में आकर अपने में स्वच्छ नदी की धारा बनाता है।

इस धारा में आप ही आप नहाता है, जल-क्रीड़ा करता है, अनुभूति नारी के स्वच्छ तन पर जल की पिचकारिआँ छोड़ता है और चिरकालपर्यंत रमता हुआ भी कभी थकता नहीं है। इसकी यह क्रीड़ा जगत के अंदर लिप्त जीवों को सुहाती नहीं है। वे इस क्रीड़ा की बात को भी सुनकर अनसुनी-सी कर देते हैं।

धन्य हैं जग उदासी जीव ! जो अणुव्रत और महाव्रतों के प्रपंच में न पड़कर, अपने स्वभाव की रक्षा के लिए त्रिगुप्ति गुप्तता का एक ऐसा मनोहर वृत्त बनाते हैं; जिसके अंदर किसी विभावभाव का प्रवेश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हो पाता है। स्वभाव का स्वभावमय होना ही अहिंसा है; स्थिर हो विकारी नहीं होना ही असत्य-त्याग सत्यता है। किसी पर-चैतन्य और अचैतन्य के अनंतगुण और पर्यायों का एक अंशमात्र भी लेकर स्वभाव में नहीं रखना ही चोरी-त्याग अचौर्यता है। स्वभाव में स्वरूपसत्तारूपी तिया की गाढ़ प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी देवी, मनुष्यनी, तिर्यंचनी; काष्ठ, पाषाण, चित्र आदि की स्त्री पर अनुरक्तता का नहीं होना तथा अन्य जाति की अपेक्षा लोक-व्यापी निज ब्रम्ह में आचरण करना ही मैथुन-त्याग ब्रम्हचर्य अवस्था है। स्व-स्वभाव में निज सुधासमूह धन के अतिरिक्त समस्त अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का लेशमात्र भी संसर्ग नहीं करना ही परिग्रह-त्याग अपरिग्रहता है।

एक निजस्वभाव में ही पाँचों व्रतों को प्राप्त कर यह संयमी व्यवहार के अभूतार्थ जाल से पृथक् रह, निज में निजमग्नता को धारण कर, सदा भवसुखों से विलक्षण, अनुभवानंद का अनुपमरस पान किया करता है॥५३॥

५४. अनुभवसुख ही सार – परमसुखदायी, सहजस्वरूप फलदायी, स्वात्म मननकारी भव्यजीव परम स्वरूपाचरणचारित्र का लाभ ले, भववन में एक अकेला स्वयं को कोटिसूर्य सम प्रभावान, परम तेजस्वी, अनंत दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य का धनी, मोहतम नाशक, स्व-पर-प्रकाशक अनुभव कर रहा है। अरूपी आत्मपदार्थ यद्यपि इंद्रियों से अतीत है, मन के अगोचर है; तथापि जैसे कोई आम्रफलों का स्वरूप अन्य के द्वारा जानकर, आम्र के गुणों का भली-भाँति निश्चय कर, जब उस आम के रस का स्वाद लेता है अर्थात् जब अपने उपयोग को रस के साथ एकरूप करता है; तब उसकी विलक्षण मिष्टता का अनुभव करता हुआ, उसके रस में मुग्ध हो जाने से साता मानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार यह तत्त्वज्ञानी आत्मा के स्वरूप का प्रमाण और नयों के द्वारा यथार्थ ज्ञान कर निश्चय करता है और जब अपने अमूर्तिक आत्मा के उपयोग को इंद्रिय ग्राम और मन मर्कट से पृथक् कर परम पारिणामिकभाव के धनी कारणपरमात्मा में मोड़ देता है; तब इस अपूर्व संबंध के होने में ही अनुभव की कला क्रीड़ा-कलाप करती है।

जैसे पुद्गल परमाणुओं के बंध में दो गुण अधिक स्निग्धता या रूक्षता कारण है; उसीप्रकार इन अमूर्तिक शुद्ध भावों के परस्पर बंध में स्व-स्वरूप उज्ज्वलता कारण है। जैसे चंद्रकला और चंद्रकांत मणि का संयोग जलरूप रस को उत्पन्न करता है; उसीप्रकार उपयोग जब स्व-समता से रंजित हो साम्यता और शांतता के पुंज श्री कारण परमब्रम्ह में संयोग करता है तो अपूर्व, अनुपम, लौकिक सुधा से विलक्षण, परम स्वादिष्ट अमृतरस की धारा बहने लगती है। यही परम अनुभव रस है। इसी रस के भोगनेवाले को अनुभवानंद का विलास होता है। जो इस सुखमय धारा का शांत जलपान करते हैं, वे अजर-अमर हो जाते हैं।

शुद्ध निश्चयनय से इसी स्वरूप की एकाग्रता में 'मैं सिद्ध, अचल, परमात्मा, अतीन्द्रिय सुख-भोगी हूँ' – ऐसा गाढ़ निश्चय झलक कर सम्यग्दर्शन रत्न का विकास कराता है; इसी स्वरूप समता में संशय, विमोह, विभ्रमरहित अपनी अनंतगुण-शक्तिओं का ज्ञान, सम्यग्ज्ञान की प्रादुर्भावना बताता है; इसकी ही स्व-समाधि में लीन होकर, मधु के गोले में आसक्त मधु-मक्खी के समान, उसी में लिप्त हो जाना, सम्यक्चारित्र की सुंदरता झलकाती है।

व्यवहारनय सें ये तीन भिन्न-भिन्न नामधारी हैं; परंतु निश्चयनय से वहाँ एक चैतन्यमात्र ही द्रव्य है। यद्यपि ध्याता-ध्येय के विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के समय दो चैतन्य गुणों का संबंध है; तथापि इस संबंध के मध्य में किसी अचैतन्य की पहुँच नहीं है। प्रथमावस्था में यह विकल्प रह क्रमशः दोनों का ऐसा संघात हो जाता है कि निर्विकल्पता का समा छा जाता है। उससमय द्वैत भाव हट जाता है और अद्वैतता का रंग आ जाता है। उस काल के अगाध आनंद को या तो त्रिकाल और त्रिलोक वेदी सर्वज्ञ जानते हैं या वह ध्यानचक्र का धनी जानता है।

जगत में मार्ग-खोजी आत्माओं को निश्चय करना चाहिए कि यह त्रिलोक में सार हैं, अन्य सर्व संसार असार है। यही मार्ग निराकुल आनंद का स्रोत और भवोदधि का पोत है। शिव-रमणी के महल में जाने का यही एक पथ है। इसी के आश्रय से सुखसागर के मध्य में स्थित मुक्तिद्वीप में जा पहुँचता है और तब अनंतकाल के लिए अनुभवानंद में लीन हो जाता है॥५४ ॥

इसप्रकार श्री 'अनंत सुखार्णवे/सुख-सागर में 'अनुभवानंद' का प्रकरण समाप्त हुआ।

इसप्रकार 'पंडित श्री दीपचंदजी कासलीवाल' द्वारा रचित 'अनुभवानंद' ग्रंथ का हिंदी अनुवाद समाप्त हुआ।

॥शुभं भूयात्॥

❖❖❖

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥२०६॥

गाथार्थ – यह (ज्ञानस्वरूप) पद कर्मों से वास्तव में दुरासद है और सहजज्ञान की कला के द्वारा वास्तव में सुलभ है; इसलिए निजज्ञान की कला के बल से इस पद को अभ्यास करने के लिए (अनुभव करने के लिए) जगत सतत प्रयत्न करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अन्य कोई उपाय नहीं है...

श्रद्धा में निर्णय किया कि ज्ञानस्वभाव जाननेमात्र है, राग करे या निमित्त को लाये-हटाये - ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है, किन्तु वह तो राग अथवा निमित्तादि का जाननेवाला है। ज्ञान निश्चय से अपने को जाननेवाला और स्व-पर प्रतिभासरूप है। दर्शन देखनेमात्र है। विकार को उत्पन्न करे, नष्ट करे अथवा संयोगों को लावे-हटावे - ऐसा उसका स्वरूप नहीं। सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त है। निरन्तर नई दशा उत्पन्न हो, पूर्व पर्याय नष्ट हो और स्वयं कायम रहे - ऐसी सत्ता है। अन्य का कुछ करे ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा वीर्यगुण से पर को चलाये अथवा पर को समझाये - वैसा बल आत्मा में नहीं है। वस्तु में अनन्त गुणों की सामर्थ्य की प्राप्तिमात्र कार्य वीर्य का है - ऐसी श्रद्धा करनी चाहिए। आत्मा केवल ऐसे गुणों का पिण्ड है - ऐसा प्रतीतिभाव करने को श्रद्धा कहते हैं। आत्मा ऐसे गुणोंवाला है - ऐसा जो देव-शास्त्र-गुरु कहते हैं, उनके प्रति रागसहित श्रद्धा को व्यवहार श्रद्धा कहते हैं और निजस्वरूप की श्रद्धा को निश्चय श्रद्धा कहते हैं - ऐसी श्रद्धा करने से और आनन्दकन्द में केलि करने से सुखी हुआ जाता है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

श्री परमात्म-पुराण

अनुवादिका/संपादिका
ब्र. कल्पना जैन, सागर
एम.ए., शास्त्री

प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट
173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

विषयानुक्रमणिका

विषय-वस्तु	पृष्ठांक
भूमिका	१
सभी गुणों में वर्णव्यवस्था	२
सभी गुणों में आश्रमव्यवस्था	५
संन्यासाश्रम के अंतर्गत प्रत्येक गुण में भिक्षुक के चारों भेद	१५
द्रव्यत्व गुण को सत्ता ऋद्धि	१६
वस्तुत्व ऋषि	१९
अगुरुलघु में ऋषि आदि चार भेद	२२
प्रमेय के चार भेद	२४
ज्ञानगुण के चार भेद	२६
दर्शन के चार भेद	२९
परमात्मा राजा के पदाधिकारिओं के नाम	३१
गुण, गुण-परिणतिरूपी नर-नारिओं के भोग-विलास का वर्णन	३१
सत्तागुण में नवरस का वर्णन	३६
मंत्रिओं द्वारा परमात्मा राजा की सेवा का वर्णन	४०
सम्यक्त्व सेनापति का वर्णन	४४
परिणाम कोतवाल का वर्णन	४६
परमात्मा राजा का वर्णन	४७
सवैया टीका	५१

ॐ

श्री परमात्मने नमः

कविवर शाह दीपचन्दजी कासलीवाल कृत

श्री परमात्म-पुराण

मंगलाचरण

(दोहा)

परम अखंडित ज्ञानमय, गुण अनंत के धाम।
अविनाशी आनंद अज, लखत लहे निज ठाम॥

अर्थ – परम/सर्वश्रेष्ठ, अखंडित, ज्ञानमय, अनंतगुणों से सम्पन्न, अविनाशी/शाश्वत, आनंदस्वरूप, अज/अजन्मा/अनादि सत्तास्वरूप (आत्मतत्त्व) को देखने से/उसमें ही स्थिरता से निजगृह/सिद्धदशा की प्राप्ति होती है।

भूमिका – अचल, अतुल/अमाप, अनंत महिमा से मंडित, अखंडित. तीनलोक के शिखर पर विराजित/सुशोभित, अनुपम, अबाधित/निराबाध/शाश्वत शिव द्वीप/मोक्षस्थान है। उसमें (प्रत्येक) आत्मा के असंख्य देश/प्रदेश हैं। उनमें से प्रत्येक देश/प्रदेश अनंत गुणरूपी पुरुषों से व्याप्त है। उन गुणरूपी पुरुषों के गुण की परिणति/पर्यायरूपी नारी/पत्नी है। परमात्मा/परमात्मदशा को प्राप्त आत्मा उस शिवद्वीप/मोक्षस्थान का राजा है। उसकी चेतना-परिणतिरूपी रानी है। उसके दर्शन, ज्ञान और चारित्र – ये तीन मंत्री हैं; सम्यक्त्व फौजदार/सेनापति है; सभी देशों का परिणाम (असंख्यप्रदेशों की एक स्वभाव व्यंजनपर्याय) कोतवाल है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वहाँ गुणरूपी पुरुषों के गुणों की सत्तारूपी भवन हैं। **परमात्मारूपी** राजा का परमात्मा की सत्तारूपी महल बना है। वहाँ उसे **चेतना** की परिणतिरूपी मनमोहक पत्नी के साथ केली/क्रीड़ा करते हुए परम अतींद्रिय, अबाधित आनंद उत्पन्न होता है। गुण अपने-अपने लक्षण की रक्षा करते हैं; अतः सभी गुण क्षत्रिय कहलाते हैं। गुण अपनी परम्परा के अनुसार सतत परिणमनरूपी व्यापार/कार्य करते हैं; अतः **वैश्य** हैं। सभी गुण ब्रम्हरूप/अपने सर्व प्रदेशों में व्यापक होने से **ब्राम्हण** कहलाते हैं तथा अपनी परिणतिरूपी वृत्ति से स्वयं स्वयं की सेवा करते हैं; अतः शूद्र हैं।

सभी गुण ब्रम्ह का आचरण करते होने से ब्रम्हचारी हैं। अपने **गुण** की परिणतिरूपी पत्नी के साथ विलास को छोड़कर अन्य किसी **की** परिणतिरूपी पत्नी का सेवन नहीं करते हैं; अतः वे परस्त्री त्याग-**रूप** (स्वदार सन्तोष व्रत) ब्रम्हचर्य के धारी ब्रम्हचारी हैं। अपने **चेतना**वान को धारण किए हुए (अनंतगुण सम्पन्न चैतन्यात्मक आत्मा के साथ) प्रस्थान/प्रकृष्टरूप से स्थित/विद्यमान रहने के कारण (वे गुण) वानप्रस्थ हैं। अपने-अपने लक्षणरूप निजगृह में रहने के कारण (वे गुण) गृहस्थ हैं।

अपने-अपने स्वरूप के साधक होने से वे साधु कहलाते हैं। अपने-अपने गुणों की महिमारूपी ऋद्धि के धारक होने से ऋषि हैं। सभी में प्रत्यक्षज्ञान व्याप्त हो जाने के कारण वे मुनि हैं तथा परभाव को जीत लेने के कारण वे सभी यति हैं।

अब इन सभी का विशेष वर्णन करते हैं –

सभी गुणों में वर्ण-व्यवस्था

क्षत्रियत्व-वर्णन – सभी गुण परस्पर सभी गुणों की रक्षा करते हैं; उसे ही कहते हैं – **प्रथम तो सत्तागुण के आधार से** सभी गुण

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं; इसप्रकार सत्ता सभी की रक्षा करती है। यदि सूक्ष्मगुण नहीं होता तो चेतनसत्ता इन्द्रिय-गोचर हो जाने से उसकी अतीन्द्रियत्व प्रभुता का अभाव हो जाता, महिमा नहीं रहती; इसप्रकार सूक्ष्मत्व समस्त अतीन्द्रिय प्रभुता की रक्षा करता है। यदि प्रमेयत्वगुण नहीं होता तो वीर्यादि सभी गुण प्रमाण करने-योग्य/जानने-योग्य नहीं होते/उनका ज्ञान नहीं हो पाता; इसप्रकार प्रमेयत्व सभी का रक्षक है। अस्तित्व के बिना तो सभी का अभाव ही हो जाता; इसप्रकार अस्तित्व सभी का रक्षक है। यदि वस्तुत्व नहीं होता तो सभी का सामान्य-विशेष भाव ही नहीं रहता; इसप्रकार वस्तुत्व सभी की रक्षा करता है। इसप्रकार सभी गुणों में रक्षा करने का भाव है; अत: (उन सभी में) क्षत्रियपना सिद्ध हुआ।

वैश्यत्व-वर्णन – अपनी-अपनी रीति/परम्परा के अनुसार सभी वर्तना/परिणमनरूप व्यापार/कार्य करते हैं। दर्शन (गुण) देखनेमात्र, मात्र निर्विकल्प रीति-वर्तना, स्व-पर को देखने की रीति-वर्तनारूप व्यापार करता है। सत्ता 'है' लक्षणयुक्त निर्विकल्प रीति-वर्तना विशेष द्रव्य है। रीति गुण है, रीति-वर्तना/परिणमन-व्यापार पर्याय है। रीति वर्तनारूप व्यापार करती है। वस्तुत्व में सामान्य-विशेषरूप वस्तुभावमय निर्विकल्प रीति वर्तनामय; ज्ञान में सामान्य-विशेष रीति वर्तनामय; सभी गुणों में सामान्य-विशेष रीति वर्तना/परिणमनमय व्यापार हो रहा है। प्रत्येक गुण को प्रमाण करने-योग्य/जानने-योग्य निर्विकल्प रीति वर्तना तथा गौण-मुख्य प्रक्रिया के माध्यम से नय द्वारा प्रमाण करने/जानने-योग्य विशेष वर्तना/परिणमनरूप व्यापार प्रमाण/ज्ञान गुण करता है। इसप्रकार सभी गुणों में निर्विकल्प रीति और विशेष रीतिपूर्वक वर्तना/परिणमनरूप व्यापार हो रहा है; अत: सभी को वैश्य कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ब्राम्हणत्व-वर्णन – ज्ञानगुण निजस्वरूप है। ब्रम्हज्ञान/आत्मज्ञान से एक अंश भी अधिक या हीन/कम नहीं है। ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान के बिना (आत्मा) जड़ हो जाएगा; वह ज्ञानत्व के बिना सर्वज्ञ नहीं हो सकता है (और सर्वज्ञत्व के बिना) ब्रम्ह (आत्मा) की अनंत ज्ञायकशक्ति नहीं रहने पर ब्रम्हपना नहीं रहेगा; अतः ज्ञान ब्रम्ह में व्यापक, ब्रम्हरूप है। इसप्रकार ज्ञान में ब्राम्हणत्व सिद्ध हुआ।

दर्शन स्वरूपमय है। दर्शन के कारण ब्रम्ह में सर्वदर्शित्व शक्ति है। ब्रम्ह में दर्शन के बिना देखने की शक्ति नहीं होती है। दर्शन सम्पूर्ण ब्रम्ह में व्यापक होकर ब्रम्हरूप हो रहा है; अतः ब्रम्हस्वरूप हुआ दर्शन ब्राम्हण कहलाता है।

प्रमेय गुण के कारण सभी द्रव्य, गुण, पर्याय प्रमाण करने-योग्य/जानने-योग्य हैं; अतः प्रमेय ब्रम्हस्वरूप है; इससे प्रमेय के ब्राम्हणत्व की सिद्धि हुई। इसप्रकार सभी गुण ब्राम्हण हुए।

शूद्रत्व-वर्णन – अपनी पर्यायवृत्ति (उत्पाद-व्ययरूप कार्य) द्वारा प्रत्येक गुण सभी गुणों की सेवा करता है; उसका वर्णन करते हैं –

सूक्ष्मगुण की पर्याय की अनंतता के कारण ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, वीर्य सूक्ष्म, सत्ता सूक्ष्म है। यदि सूक्ष्मगुण अपनी सूक्ष्मपर्याय इन्हें नहीं देता तो वे सूक्ष्म नहीं होते। (सूक्ष्मता के अभाव में) स्थूल हो जाने से इन्द्रिय-गोचर हो जाने पर उनमें जड़ता आ जाने का प्रसंग प्राप्त होता है। सूक्ष्मगुण अपनी सूक्ष्मपर्याय देकर सभी गुणों का स्थिति भाव (ध्रुवस्वभाव) शुद्ध यथावत कार्यरूप में व्यवस्थित रखता है। इसप्रकार सूक्ष्मगुण की सेवावृत्ति सिद्ध हो जाने से सूक्ष्म गुण को शूद्रत्व विशेषण घटित हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'सत्ता' 'है' लक्षणवाले सत्तागुण ने अपनी अनंत पर्यायें सभी को दीं; तब सभी गुण अस्तिभावरूप हुए। उस (सत्तागुण) ने अपनी अस्तिभावरूप पर्याय देकर उनके अस्तिभाव की सुरक्षा का कार्य संभाला है। उनके सत्तारूप कार्य को संभालने से उस (सत्तागुण) की सेवावृत्ति हुई; इससे सत्ता को 'शूद्र' ऐसा नाम मिला। इसीप्रकार सभी गुणों में शूद्रता होती है।

सभी गुणों में आश्रम व्यवस्था

अब सभी गुणों पर चार आश्रम-भेद घटित करते हैं –

१. ब्रम्हचर्याश्रम – सभी गुण ब्रम्हरूप आचरण करते होने से ब्रम्हचारी हैं। ज्ञान एक ब्रम्हरूप है; अतः ब्रम्हरूप आचरण करता होने से वह ब्रम्हचारी है। दर्शन ब्रम्हरूप होने से दर्शन ब्रम्हचारी है। वीर्य सम्पूर्ण वीर्य ब्रम्ह को शक्तिसम्पन्न रखता है। वीर्यशक्ति के कारण ब्रम्ह भी ब्रम्ह हुआ। वीर्य भी ब्रम्ह के आचरणरूप होने से वीर्य ब्रम्हचारी है। सत्ता ब्रम्हरूप होने से सत्ता ब्रम्हचारी है। इसीप्रकार सभी गुण ब्रम्हचारी हैं।

२. गृहस्थाश्रम – निज ज्ञानरूप सत्तामय गृह (घर) में रहने के कारण ज्ञान को गृहस्थ कहते हैं। अपने दर्शनरूप सत्तामय गृह में स्थिति के कारण दर्शन गृहस्थ है। अपने वीर्यरूप सत्तामय गृह में निवास के कारण वीर्य गृहस्थ है। अपने अनाकुल लक्षण सुख-सत्तागृह में स्थिति के कारण सुख गृहस्थ है। इसीप्रकार सभी गुण गृहस्थ हैं।

३. वानप्रस्थाश्रम – अपने निज 'वान'/स्वरूप में 'प्रस्थ'=बैठना/रहना, वानप्रस्थ है। अपने निजरूप 'वान' में रहना, वानप्रस्थ है। ज्ञान अपने 'जाननापना' रूप में रहता है, दर्शन अपने दृश्य चेतनारूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में स्थित है, सत्ता शाश्वत लक्षणरूप में सदा विराजमान है, प्रमेय अपने प्रमाण करने/जानने-योग्यरूप में सदा अवस्थित है। इसप्रकार सभी गुण अपने-अपने निजरूप में रहते हैं।

ज्ञान का निज वान/स्वरूप ऐसा है कि विशेषों को जानने में प्रकाशरूप है और स्वयं स्वयं को जाननेरूप से परिणमित है। स्वयं को जानने से अपनी शुद्धता व्यक्त हुई है। स्वरूप शुद्धरूप से व्यक्त हो जाने के कारण सहज ज्ञायकता के विलास ने अपने अनंतगुणों का प्रकाश विकसित किया है। उसमें प्रत्येक गुण के सभी अनंत पर्याय भेद भासित हुए; अनंतशक्ति की अनंत महिमा ज्ञान में प्रगट हुई।

प्रश्न – ज्ञेयों का प्रकाश/प्रतिबिम्ब ज्ञान में झलकने से 'ज्ञेयों को जाना', कहना तो उपचार है; तब फिर अपने गुणों को जानना कैसा है?

समाधान – परज्ञेय की सत्ता (ज्ञान की सत्ता से) पृथक् है; निज गुण की सत्ता ज्ञान की सत्ता से पृथक् नहीं है। ज्ञान की ज्ञायकता के प्रकाश में (उन सभी अपने गुणों की) एक (अभिन्न) सत्ता ज्ञात हुई है। यदि उन्हें जानना उपचार होता (तो) उन्हें जानने से आनंद नहीं होता।

प्रश्न – (यदि उन सभी अपने गुणों को जानने से) आनंद होता है (अत: वे सभी एक सत्तावान हैं); तब फिर गुण में गुण का उपचार क्यों कहा जाता है?

समाधान – ज्ञान में दर्शन ज्ञात हुआ; परन्तु ज्ञान दर्शनरूप नहीं हुआ; क्योंकि उस (दर्शन) का 'देखना' लक्षण ज्ञान में नहीं है। वीर्य का 'निष्पत्तिकरण सामर्थ्य' (रचना करने की शक्ति) रूप लक्षण ज्ञान में नहीं है। इसीप्रकार अनंतगुणों के लक्षण ज्ञान धारण नहीं करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; इसलिए लक्षण-अपेक्षा उपचार कहा जाता है। ज्ञान उन (गुणों) के लक्षण धारण नहीं करता है; तथापि 'वे ज्ञान में आए' – ऐसा कहा जाता है; अत: उपचार हैं; परन्तु सत्ता-भेद नहीं है। अन्य-अन्य होने के कारण ज्ञान सत, दर्शन सत, वीर्य सत, सुख सत – ऐसी कल्पना करके (उनमें) भेद कहा; परन्तु पृथक्त्व भेद (प्रदेशों की अपेक्षा भिन्नता) नहीं है; इसलिए सत लक्षण की अपेक्षा भेदाभेद का विशेष जानना चाहिए।

ज्ञान द्रव्य-गुण-पर्यायमय निजस्वरूप को जानता है; ज्ञान ज्ञान को जानता है, उससे आनंद-अमृत-रस सागर प्रगट होता है। सभी द्रव्य-गुण-पर्यायों को ज्ञान ने प्रकाशित किया; तब वे प्रगट हुए (उनकी सत्ता ज्ञान में ज्ञात हुई) ज्ञान ने उनकी महिमा प्रगट की। ज्ञान का ऐसा (स्व-पर प्रकाशक) स्वरूप ज्ञान का 'वान' है; ज्ञान उसमें रहता है, अत: वह वानप्रस्थ है।

दर्शन का वान अर्थात् दर्शन का स्वरूप सभी द्रव्य-गुण-पर्यायों की सामान्य-विशेषरूप वस्तु का निर्विकल्प सत्त्व अवलोकन करता है। यहाँ भी लक्षण का भेदाभेद, उपचार आदि सभी कथन-व्यवहार ज्ञान के समान जान लेना। आनंद का प्रवाह निज अवलोकन से होता है। निर्विकल्प रस में भेद-भावरूप सभी विकल्प नहीं हैं। निर्विकल्प रस ऐसा है कि जिसमें विकल्प नहीं होते हैं।

प्रश्न – दर्शन जब दर्शन को देखता है, तब तो निर्विकल्प है; परन्तु ज्ञानादि अनंत गुणों के अवलोकन के समय विकल्परूप हुआ कि निर्विकल्प रहा ? यदि आप कहेंगे कि निर्विकल्प रहा तो अन्य गुणों के अन्य-अन्य लक्षण देखने पर निर्विकल्पपना कैसे रहा ? और यदि विकल्परूप कहोगे तो दर्शन निर्विकल्प है – ऐसा कहना संभव नहीं होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान – ज्ञेय को देखना तो उस (दर्शन) में उपचार से है। दर्शन में दर्शन के बिना जो (अपने) अन्य गुण दिखते हैं; वहाँ लक्षण की अपेक्षा तो उपचार से सभी के लक्षण दिखते हैं; परन्तु सत्ता अभिन्न ही है। अन्य-अन्य (अन्यत्व) का भेद है, पृथक्त्व-भेद (प्रदेशों की अपेक्षा भेद) नहीं है। सभी की निर्विकल्पसत्ता है; अवलोकन की अपेक्षा निर्विकल्प है। दर्शन दर्शन को देखता है, दर्शन की शुद्धता निर्विकल्प है। अपना निज देखना तो अपने दृष्टा लक्षण से व्यापक, तन्मय, लक्षण से अभेद है। दर्शन द्रव्य, देखना गुण, देखनेरूप परिणमन पर्याय – (ये तीनों) निश्चय से अभेद हैं; कथनमात्र में दर्शन का भेद करना व्यवहार है।

निजरूप को देखने से (दर्शन में) सभी गुणों का देखना तो हो जाता है; परन्तु धारण तो मात्र 'देखना' गुण/लक्षण को करता है, अन्य लक्षणों को धारण नहीं करता है। अपने स्वगुण के प्रकाश में स्व जाति चेतना की अपेक्षा (चेतना के अविनाभावी होने से) अन्य गुण भी प्रकाशित हो जाते हैं। जिस सत में वह अपना गुण प्रकाशित होता है, उसी सत में सभी गुण प्रकाशित हो जाते हैं; परन्तु यदि उनके लक्षण को धारण करता तो विकल्पी हो जाता (ऐसा नहीं होने से वह निर्विकल्प ही रहता है)। (वह दर्शन) ज्यों का त्यों अपना प्रकाश मात्र देखनेरूप रखता है। अपनी दर्शनरूपी दर्पणभूमि में परज्ञेय विजातीय (अपने से भिन्न) रूप में भासित होते हैं। एक सत्तारूप में जो निज चेतना प्रगट हुई है, वह युगपत समस्त गुणों के दर्शन प्रकाश के साथ प्रगट हुई है।

इसमें अपना निर्विकल्प प्रकाश तो जैसा है, वैसा ही रहता है। विजातीय परज्ञेय, स्वजातीय पृथक् चेतना ज्ञेय, अपृथक् चेतना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वजातीय ज्ञानादि अनंतगुणादि ज्ञेय – ये सभी (उस निर्विकल्प प्रकाश में भी अपने-अपने) लक्षण को नहीं छोड़ते हैं। किसी को उपचार से देखना, किसी को स्वजातीय उपचार से देखना; किसी को पृथक् भेद से, किसी को अपृथक्तापूर्वक देखना; अभेद चेतना जाति होने से यद्यपि ऐसा देखना होता है; तथापि अपने निर्विकल्प प्रकाश लक्षण के साथ अखंडित दर्शन निर्विकल्प रहता है। यह दर्शन 'वान' अर्थात् निजरूप में रहता है; अत: दर्शन वानप्रस्थ कहलाता है।

प्रमेय सामान्य है, सभी में व्यापक है। द्रव्य प्रमाण करने/जानने-योग्य प्रमेय के कारण है। प्रमेय की पर्याय ने सभी गुणों को प्रमाण करने/जानने-योग्य किया। प्रमेय की पर्याय के कारण सभी जानने-योग्य होते हैं। प्रमेय प्रमाण करने/जानने-योग्य लक्षण से सम्पन्न है। यदि प्रमेय नहीं होता तो सभी अप्रमाण/अज्ञात ही होते। इसप्रकार प्रमेय गुण अपने प्रमाण करने/जानने-योग्य रूप/स्वरूपमय है। सत्ता गुण को प्रमाणमय प्रमेय ने किया। सत्ता 'सदा शाश्वत विद्यमानता' लक्षण सम्पन्न है। इसे जब सम्यग्ज्ञान ने प्रमाण किया/जानकर स्वीकार किया, तब उसे 'प्रमेय' नाम प्राप्त हुआ।

प्रश्न – सत्ता स्वयं ही प्रमाण करने-योग्य अपने लक्षण से सम्पन्न है। वह प्रमेय के कारण प्रमाण करने-योग्य है – (ऐसा आप यहाँ) क्यों कहते हैं ? अपनी-अपनी अनंत महिमा से मंडित सभी गुण अपने-अपने लक्षण द्वारा प्रमाण करने-योग्य हैं। वे प्रमेय के कारण (प्रमेय) हैं – (ऐसा आप) क्यों कहते हैं ?

समाधान – प्रत्येक गुण अपने से अन्य सभी गुणों की सापेक्षता-सम्पन्न है। प्रत्येक गुण से (अन्य) सभी गुणों की सिद्धि है। जैसे चेतना गुण ने सभी को चेतनारूप किया है, सूक्ष्मगुण ने सभी को

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सूक्ष्म किया है, अगुरुलघु ने सभी को अगुरुलघुरूप किया है, प्रदेशत्व गुण ने सभी को प्रदेशवान किया है; उसी प्रकार प्रमेयगुण ने सभी को प्रमाण करने-योग्य किया है। प्रमेयगुण ने उनके लक्षण को प्रमाण करने-योग्य करने के लिए उनके लक्षण में प्रवेश कर अपनी सत्ता को उनसे अभेद कर दिया है; जिससे सभी गुण प्रमाण करने-योग्य हुए। यदि अपने-अपने लक्षण को धारण करनेवाले सभी गुणों में प्रमेय नहीं होता तो वे अप्रमाण-योग्य (अज्ञातरूप) होते। इसप्रकार सभी की परस्पर सापेक्षता से सिद्धि है।

वैसा ही कहा भी है–

"नानास्वभावसंयुक्तं, द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तत्त्वसापेक्षसिद्ध्यर्थं, स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु॥

(नाना स्वभावों से संयुक्त द्रव्य को प्रमाण से जानकर (परस्पर) सापेक्ष तत्त्व की सिद्धि के लिए स्यात्/कथंचित् शैलीवाले नयों के साथ उसे मिश्रित करो/उसे सम्यक् नयों द्वारा जानो।)"

प्रश्न – आपने सभी गुणों में प्रमेय की अभेद सत्ता कही। इससे "द्रव्याश्रयाः निर्गुणाः गुणाः – जो द्रव्य के आश्रित होते हैं और परस्पर में निर्गुण होते हैं, वे गुण हैं।" एक गुण दूसरे में नहीं रहता है – सूत्र की यह पंक्ति असत्य होती है। एक प्रमेय की अनंतसत्ता हुई; एक गुण अपने एक लक्षण में व्यापक नहीं रहा ?

समाधान – सत्ता सभी की एक है। एक ही सत्ता में अनंत गुण का प्रकाश है। एक-एक गुण के प्रकाश की विवक्षा में एक-एक गुण का सत – ऐसा अन्य-अन्य नाम हो जाता है; परन्तु सत्ता का भेद नहीं है। प्रत्येक गुण का लक्षण पृथक्-पृथक् है। लक्षण की अपेक्षा गुण परस्पर में नहीं मिलते हैं। सत्ता की अनन्यता के कारण (लक्षण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की अपेक्षा) भिन्न-भिन्न होने पर भी (प्रदेशों की अपेक्षा) पृथक्तारूप भेद नहीं होने से यह कथन घटित हो जाता है। निश्चय से सभी की एक सत्ता होने के कारण सभी अनन्य हैं; गुण के लक्षण की अपेक्षा प्रत्येक गुण का पृथक्-पृथक् नाम उपचार से रखा गया है; परन्तु इससे सत्ता पृथक्-पृथक् नहीं हो जाती है; इसीलिए विविध नय प्रमाण हैं, (कहीं भी) विरुद्धता नहीं है।

एक प्रमेय अनंतगुण में आया – यहाँ एक ही सत्ता में अनंतगुणों का प्रकाश है। वहीं प्रमेय का भी एक प्रकाश है। वही प्रमेय का प्रकाश सभी गुणों में आया। वह सबमें क्यों/कैसे आया ? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं – प्रत्येक गुण के असंख्यप्रदेश वही हैं, उन्हीं में सभी गुण व्यापक हैं। प्रमेय भी व्यापक है। उन सभी प्रदेशों में प्रमेय व्यापकरूप से फैला है, तब सभी गुणों की प्रदेश-सत्ता में उसकी भी सत्ता हुई। यद्यपि कहने में नाम-भेद होता है कि ये (प्रदेश) प्रमेय के, ये ज्ञान के, ये दर्शन के हैं; तथापि वे पृथक्-पृथक् असंख्यात नहीं हैं, सभी के वही हैं। इसप्रकार सभी गुणों की प्रदेशरूप सत्ता एक है, अत: प्रमेय की अनंतसत्ता नहीं है।

गुणों के लक्षण भिन्न-भिन्न होने के कारण सत्ता में भेद की कल्पना करके कथन किया जाता है; परन्तु मूलसत्ता भेदरूप नहीं है। अनंत गुण लक्षणरूप एक द्रव्य का प्रकाश अनंत महिमा मंडित सुशोभित है। वस्तु का ज्ञान कराने के लिए पृथक्-पृथक् दिखाए जाते हैं। प्रत्येक गुण की अनंत शक्तियाँ, अनंत पर्यायें, अनंत महिमा है तथा प्रत्येक गुण में अनंतगुणों का आधारभूत एक भाव पाया जाता है। प्रमेय पर्याय की अपेक्षा अनंत गुणों में व्यापक होकर वर्तता है, सत्ता अनंत नहीं हैं। प्रमेय की पर्याय के कारण प्रत्येक गुण का लक्षण प्रमाण करने/जानने-योग्य हुआ; अत: यह प्रमेय का विलास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहलाया। गुण को ही गुणी कहने पर सत्ता गुणी/गुणवान हुआ। सूक्ष्म, अगुरुलघु आदि सत्ता के गुण हुए। वस्तुत्व गुणी हुआ। वस्तुत्व का प्रमेय गुण वस्तुत्व में है। वस्तुत्व के अगुरुलघु, सूक्ष्म, अस्तित्व, प्रदेशत्व इत्यादि अनंतगुण वस्तुत्व में हैं। जिस गुण का भेद कर कथन करते हैं, उस गुण में अनंतगुणों का रूप सिद्ध होता है। इन सभी भेदों को/रहस्यों को जानने से तत्त्व प्राप्त होता है, अनंत सुख प्राप्त होता है।

(एक गुण का एक लक्षण व्यापक कैसे रहा?) प्रश्न के इस तृतीय अंश का ***समाधान*** – एक-एक गुण में एक-एक लक्षण व्यापक है; परन्तु पर्याय की अपेक्षा अनंतगुण व्यापक हैं। यदि पर्याय की अपेक्षा सभी सब में व्यापक नहीं हों तो सभी का नाश हो जाए। सूक्ष्म की पर्याय सभी में नहीं हो तो सभी स्थूल हो जाएं। अगुरुलघु सभी में नहीं हो तो सभी हलके भारी हो जाते। प्रमेय सभी में व्यापक नहीं हो तो वे प्रमाण करने-योग्य नहीं रहते। इसप्रकार पर्याय का गुण सभी गुणों में है। मूल लक्षण, प्रत्येक गुण का निज लक्षण, पर्याय का धाम, रूप एक है। ऐसा ही पर्याय का भी समझना; परन्तु पर्याय की अपेक्षा अनंतगुणों में व्यापक है। प्रमेय मूलभूत वस्तु का एक गुण ही है।

ऐसा प्रमेय 'वान' अर्थात् अपने स्वरूप प्रमेय में रहता है; अतः उसे वानप्रस्थ कहते हैं।

वस्तुत्व का वानप्रस्थ – वस्तु सामान्य-विशेषरूप है। वस्तु का भाव वस्तुत्व है। वस्तु सामान्य-विशेष को धारण करती है; उसे कहते हैं – अनंतगुण सामान्य-विशेषरूप हैं। जाननामात्र ज्ञान सामान्य है, स्व-पर को जाननेवाला ज्ञान विशेष है। जाननामात्र में दूसरा भाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होने से वह सामान्य है। स्व-पर को जानने में सर्वज्ञ शक्ति प्रगट होती है; जाननामात्र में वस्तु का स्वभाव सिद्ध होता है। स्व-पर को जानना कहने से ज्ञान की महिमा, पर्यायरूप अनंतशक्ति सभी ज्ञात हो जाता है। अनंत गुण की अनंतशक्तिमय पर्याय जानने से अनंत गुण की अनंत महिमा ज्ञात हो गई; तब ज्ञान से शाश्वत सम्पन्न आत्मपदार्थ की महिमा ज्ञात हुई; तभी ज्ञान ने समस्त गुण-द्रव्यों की महिमा प्रगट की।

जैसे कोई एक लकड़हारा लकड़ी बेचता था। उसे कहीं चिंतामणि रत्न मिल गया। उसने उसे अपने घर में रख लिया। उससे सर्वत्र प्रकाश फैला; तब उसने अपनी पत्नी से कहा – इसी के प्रकाश में रसोई कर लेना; अब तेल की आवश्यकता नहीं रहेगी। उस (चिंतामणि) के गुण जाने बिना वह बहुत कालपर्यंत लकड़ियाँ ही ढोता रहा। कभी कोई पारखी पुरुष आया, उसने दया कर चिंतामणि की महिमा बताई; तब उसके शब्द सुनकर इसकी दरिद्रता नष्ट हुई। यदि पारखी पुरुष चिंतामणि की महिमा नहीं बताता तो विद्यमान प्रगट महिमा भी अविद्यमान अप्रगट के समान थी।

इसीप्रकार अनंत संसार के जीव अपने अनंतगुणों की अनंत महिमा नहीं जानने के कारण दुखी होते हुए भ्रमण कर रहे हैं। जब श्रीगुरु रूप पारखी मिले, तब उन्होंने अनंतगुणों की महिमा बताई। जिसने उसका रहस्य समझ लिया, वह तो संसाररूपी दरिद्रता नष्ट कर सुखी हो गया। ज्ञान से ज्ञात हई उसकी महिमा श्रीगुरु ने ज्ञान से ज्ञात कर कही। जिसे ज्ञान हुआ उसने उसे जान लिया। इसप्रकार ज्ञान सभी गुणों की महिमा प्रगट करता है। ज्ञान प्रधान है। सिद्धों में अनंतगुण हैं, वे भी ज्ञान से ही ज्ञात होते हैं। ज्ञान सभी गुणों को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट करता है, उससे उन गुणों की महिमा प्रगट होती है; इसलिए ज्ञान की विशेषता कार्यकारी है। ऐसे सामान्य-विशेषात्मक ज्ञान से ज्ञान को 'वस्तु' नाम प्राप्त हुआ। ज्ञान वस्तुत्व का 'वान' स्वरूप ज्ञान वस्तुत्व में रहता है; इससे ज्ञानवस्तुत्व को वानप्रस्थ कहते हैं।

दर्शन वस्तुत्व का वानप्रस्थ – दर्शन/देखनामात्ररूप परिणमित होना दर्शन का सामान्य है, स्व-पर का भेदकर पृथक्-पृथक् देखना दर्शन का विशेष है। दर्शन यदि पर को नहीं देखे तो सर्वदर्शित्व शक्ति नहीं रहेगी। दर्शन का अभाव होने पर निर्विकल्पसत्ता का अवलोकन नहीं रहने से अनंत ज्ञेयपदार्थों के निर्विकल्पसत्ता स्वरूप का अवलोकन नष्ट हो जाएगा। इसप्रकार दर्शन सामान्य-विशेषरूप वस्तु है, उसका भाव दर्शन वस्तु है। उसका 'वान' अर्थात् स्वरूप है; उसमें रहनेवाला दर्शन वस्तुत्व वानप्रस्थ कहलाता है। इसीप्रकार अन्य सभी गुणों का वस्तुत्व मिलकर एक वस्तुत्व नामक गुण है; उसमें रहनेवाला वस्तुत्व वानप्रस्थ कहलाता है।

द्रव्यत्व का वानप्रस्थ – जो गुण-पर्यायों को द्रवित होता है/प्राप्त करता है, वह द्रव्य है। द्रव्य के भाव को द्रव्यत्व कहते हैं। ज्ञान जाननेरूप है, वह आत्मा का स्वभाव है। यदि आत्मा जाननेरूप परिणमित नहीं होता तो 'जानना' होने से ज्ञान हुआ है और वह परिणमन इस द्रव्यत्व गुण से हुआ है। द्रव्यत्व गुण के होने से द्रव्य द्रवीभूत है। द्रवीभूत द्रव्य द्रवित होकर परिणाम प्रगट करता है। जब परिणाम प्रगट हुआ, तब गुण द्रव्यरूप परिणमित हुआ। गुण द्रव्यरूप परिणमित होने से गुण, द्रव्य प्रगट हुए। द्रव्यत्व गुण के कारण सभी प्रगट होते हैं; इसप्रकार वह अनंतगुणरूप परिणमित होता है।

जब द्रव्यत्व गुण से द्रव्य द्रवित होता है, तब गुण-पर्याय प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती है। जब गुण द्रवित होता है, तब गुण परिणति को धारण कर परिणति के साथ एक/अभेद होकर परिणति द्रवित होती है। जब दोनों मिलकर परिणति द्रवित होती है, तब गुण-द्रव्य का वेदन करती है। स्वरूप-लाभ लेकर द्रव्य द्रवित होता है, परिणाम प्रगट होता है। जब गुण द्रवित होता है, तब प्रत्येक गुण सभी गुणों में व्याप्त होकर अनंत को आधार देता है। सभी गुण परस्पर मिलकर एक/अभिन्न वस्तु हैं। द्रवता के कारण ये सभी द्रव्य, गुण, पर्यायरूप हैं। द्रवणरूप परिणमित होना/द्रवणशीलता तो सामान्य है और द्रव्य का द्रवण, गुण का द्रवण, पर्याय का द्रवण विशेष है। सामान्य-विशेष द्रवणशीलता मिलकर 'द्रव्यत्व' नाम पाता है। इस द्रव्यत्व का अपने स्वरूप में रहना द्रव्यत्व का वानप्रस्थ है।

इसीप्रकार अन्य सभी गुणों का भी वानप्रस्थ-भेद समझ लेना।

संन्यासाश्रम के अंतर्गत प्रत्येक गुण में भिक्षुक के चारों भेद – ऋषि, साधु, यति, मुनि – ये भिक्षुक (भिक्षावृत्ति से आहार लेनेवाले मुनिराज) के भेद हैं। उन्हें अब गुणों पर देखते हैं –

प्रत्येक गुण में चारों भेद घटित होते हैं। सर्वप्रथम सत्तागुण में घटित करते हैं – सत्ता की 'ऋषि' संज्ञा है। सत्ता शाश्वत ऋद्धिसम्पन्न है, स्वयं अविनाशी है। सत्ता के आधार से उत्पाद, व्यय, ध्रुव है। सत्ता ने अपनी शाश्वत ऋद्धि द्रव्य को दी, जिससे द्रव्य शाश्वत हुआ; गुण को दी, जिससे गुण शाश्वत हुए। ज्ञान का जानपना गुण, ज्ञान द्रव्य, ज्ञान परिणति पर्याय है। ज्ञान स्वसंवेदीज्ञान है, ज्ञेय-ज्ञायक-ज्ञान/ज्ञेयों को जाननेवाला ज्ञान है। अपने आत्मा के द्रव्य, गुण, पर्याय को जाननेवाले ज्ञान को शाश्वत सत्ता गुण ने किया। **वह ज्ञानसत्ता है। ज्ञानसत्ता से ज्ञान शाश्वत है। ज्ञान को यह शाश्वतता की ऋद्धि सत्तागुण ने दी है।**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शन की सत्ता से दर्शन शाश्वत है। दर्शन परभाव-स्वभावरूप सभी ज्ञेयों को देखता है। अपने आत्मा के द्रव्य, गुण, पर्याय को देखता है। दर्शन द्रव्य है, देखना गुण है, दर्शन की परिणति पर्याय है। यदि दर्शन नहीं होता तो ज्ञायकता नहीं होती। ज्ञायकता नहीं रहने पर चेतना का अभाव हो जाता। इसप्रकार सकल चेतना का कारण एक दर्शन गुण है। सर्वदर्शित्वरूप महिमा को धारण करनेवाले दर्शन को दर्शनसत्ता ने शाश्वत किया है। यह शाश्वत रहने की ऋद्धि सत्ता ने दर्शन को दी है; अत: सत्ता की ऋद्धि दर्शन में है।

द्रव्यत्व गुण को सत्ता ऋद्धि – द्रव्यत्व गुण के कारण द्रव्य गुण-पर्यायोंरूप से द्रवित होता है। गुण-पर्यायें द्रव्यरूप से द्रवित होती हैं। द्रवीभूतता/द्रवणशीलता द्रव्य की है; जिससे द्रव्य परिणमित हुआ; गुणों में द्रवित हुए बिना परिणति नहीं होती है। यदि द्रव्य शाश्वत नित्य जैसा है, वैसा नहीं रहता तो परिणति उत्पन्न नहीं हो पाती; उत्पत्ति के बिना स्वरूप-लाभ नहीं होता, व्यय नहीं होता; तब परिणति स्वरूप में निवास नहीं करती; ध्रुवता सिद्ध नहीं होती। उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव नहीं होता। इसप्रकार परिणति से उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय से ध्रुव की सिद्धि होती है। परिणति द्रव्यत्व के कारण होती है। द्रव्य द्रवित होने से परिणति हुई। गुण द्रवित होने से गुणों में गुण परिणति हुई। गुण परिणति ने सभी गुणों का युगपत भाव किया।

प्रश्न – परिणति ने युगपत गुण की सिद्धि की (परन्तु परिणति तो क्रमवर्ती है); तब क्रमवर्ती से युगपत भाव कैसे सिद्ध हुआ?

समाधान – वस्तु तो क्रम-सहभावी (पर्याय-गुण) भावरूप है। गुण की परिणतिरूप क्रम गुण का है। गुण का लक्षण सहभावी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सभी गुण सहभाव, क्रमभाव से सम्पन्न हैं। गुण अपने लक्षणरूप से सदा शाश्वत हैं। इन गुण के लक्षणों को गुणों की परिणति सिद्ध करती है। द्रव्य गुणों में परिणमित हुआ, तब गुण-परिणति हुई। यदि द्रव्य गुणरूप परिणमित नहीं होता तो गुणों की सिद्धि नहीं होती। इसप्रकार गुण की सिद्धि पर्याय करती है। गुण का वेदन गुण-परिणति ने किया है। वेदनभाव में गुण का सर्व स्वरस प्रगट हुआ है। सर्व स्वरस प्रगट होना ही गुण की सिद्धि है। जैसे गुण के बिना गुणी नहीं है, गुणी के बिना गुण नहीं है; उसीप्रकार गुण परिणति के बिना नहीं है और परिणति गुण के बिना नहीं है; अतः परिणति से युगपत गुण की सिद्धि हो जाती है।

इस द्रव्यत्व गुण को शाश्वत ऋद्धि सत्ता ने दी है। इस सत्ता की ऋद्धि से द्रव्यत्व के विलास की सिद्धि होती है।

वस्तु के भाव को धारण करनेवाला, शाश्वत विद्यमान वस्तुत्व गुण सामान्य-विशेष भावरूप वस्तु की सिद्धि करता है। अपने सामान्य-विशेषभाव को धारण करते हुए सभी गुण स्वयं वस्तुत्वरूप हैं। सामान्य-विशेष के कारण सामान्य प्रकाश और विशेष प्रकाश है। सामान्य-विशेष का विलास सभी गुण करते होने से सभी 'वस्तु' इस नाम को धारण करते हैं। सत्ता गुण के द्वारा दिए गए शाश्वत भाव से सामान्य-विशेषरूप वस्तुत्व के विलास की सिद्धि होती है। सत्ता की ऋद्धि सभी को शाश्वत भाव देती है।

वीर्यसत्ता ने वीर्यगुण को शाश्वत भाव दिया। स्व-स्वरूप निष्पन्न रखने की सामर्थ्यरूप गुण वीर्य, वीर्यगुण को निष्पन्न रखता है। द्रव्य-वीर्य द्रव्य को निष्पन्न रखता है। अपनी सामर्थ्य से पर्याय वीर्य पर्याय को निष्पन्न रखने में समर्थ है। अपारशक्ति को धारण कर वीर्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीर्यगुण का विलास करता है। एक वीर्य सत्ता के कारण उसकी सिद्धि है।

इसप्रकार इस एक सत्ता की ऋद्धि सभी गुणों में विस्तृत है; जिससे सभी गुण शाश्वत हैं। यह सत्ता गुण की ऋद्धि का वर्णन है। ऐसी ऋद्धिसम्पन्न होने के कारण सत्ता को ऋषीश्वर कहते हैं।

सत्ता साधु – जो मोक्षमार्ग को साधता है, उसे साधु कहते हैं। सत्ता स्वपद को साधती है। द्रव्य-सत्ता द्रव्य को साधती है, गुण-सत्ता गुण को साधती है, पर्याय-सत्ता पर्याय को साधती है। ज्ञान-सत्ता ज्ञान को साधती है, दर्शन-सत्ता दर्शन को साधती है, वीर्य-सत्ता वीर्य को साधती है, प्रमेयत्व-सत्ता प्रमेयत्व को साधती है। इसप्रकार अनंतगुणात्मक सत्ता अनंतगुणों को साधती है। द्रव्य-सत्ता गुण को साधती है, गुण-सत्ता द्रव्य-सत्ता को साधती है, पर्याय-सत्ता के कारण पर्याय है। पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को करती है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पर्याय के बिना नहीं होते हैं। सत्ता उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के बिना नहीं होती है। इसप्रकार पर्याय-सत्ता द्रव्य-गुण को साधती है।

ज्ञान की सत्ता नहीं होने पर ज्ञान नहीं हो पाने से सभी द्रव्य-गुण-पर्यायों का जानपना नहीं हो सकेगा। उनकी जानकारी नहीं होने पर द्रव्य-गुण-पर्यायों के सर्वस्व/सम्पूर्ण वैभव का ज्ञान नहीं हो सकेगा। उनका सर्वस्व ज्ञात नहीं होने पर वे ज्ञेय नहीं कहलायेंगे। इसप्रकार ज्ञान-ज्ञेय का अभाव हो जाने पर वस्तुमात्र का ही अभाव हो जाएगा।

दर्शन-सत्ता नहीं हो तो दर्शन का अभाव हो जाएगा। दर्शन का अभाव हो जाने से देखना नहीं रहेगा। ज्ञान-विशेष भी सामान्य के बिना नहीं होता है। इसप्रकार सभी को सामान्य-विशेष सिद्ध करते हैं। सामान्य के बिना विशेष नहीं रहता है और विशेष के बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्य नहीं रहता है। इसप्रकार दर्शन-सत्ता से दर्शन, दर्शन से ज्ञान होने पर वस्तु की सिद्धि होती है।

प्रमेय-सत्ता नहीं हो तो सभी प्रमेय नहीं रहें। द्रव्य, गुण, पर्याय प्रमाण करने/जानने-योग्य नहीं हों। इसप्रकार सत्ता सभी को साधती है। उसके बिना अनंतगुणों की द्रव्य, गुण, पर्यायें नहीं हो सकेगीं। सत्ता इन सभी को साधती है। सत्तागुण अनंतगुणों की, द्रव्य की, पर्याय की सिद्धि करता है; अत: वह सत्ता ही साधक है; इसलिए उसे 'साधु' ऐसा नाम प्राप्त होता है।

सत्ता यति – असत (मिथ्या) विकारों को जीतने से यति कहलाते हैं। सत्ता में असत्ता नहीं होने से वह यति है। इसका विशेष लिखते हैं –

सत्ता में नास्ति का अभाव है। उसने नास्तिरूप विकार को जीता, इसलिए वह यति है। ज्ञान-सत्ता ने ज्ञान का नास्तिरूप विकार नष्ट किया। दर्शन-सत्ता ने दर्शन का नास्तिपना दूर किया, वीर्य-सत्ता ने अवस्तुत्व का अभाव किया। इसप्रकार सभी गुणों की सत्ताएँ (अपने) प्रतिपक्षी (विरोधी) का अभाव कर विराजमान हैं; अत: वे यति हैं।

सत्ता मुनि – सत्ता अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष प्रकाश शाश्वत लक्षण द्वारा करती है अथवा प्रत्यक्ष केवल-ज्ञान-सत्ता को धारण करती है; अत: मुनि कहलाती है।

अब ऋषि आदि सभी भेदों को वस्तुत्व पर घटित करते हैं –

वस्तुत्व ऋषि – सामान्य-विशेषरूप वस्तु है, उसके भाव को धारण करनेवाला वस्तुत्व है। वह सभी में व्यापक है। सभी गुणों में विद्यमान सामान्य-विशेष भावरूप वस्तुत्व द्वारा वस्तुत्व ने अपनी ऋद्धि सभी को दी है। जितने गुण हैं, उतने ही अथवा वे सभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्य-विशेषतारूप हैं। ज्ञान में यदि ज्ञानत्वमात्र सामान्य भाव नहीं हो तो लोकालोक प्रकाशक विशेष कहाँ से होगा? इसप्रकार सामान्य से विशेष और विशेष से सामान्य है। सामान्य-विशेष भाव ऋद्धि वस्तु के कारण है।

इसीप्रकार यदि दर्शन देखनेमात्र नहीं हो तो लोकालोक की निर्विकल्प सत्तामात्र वस्तु को नहीं देख सकेगा। इसप्रकार वह सामान्य-विशेषात्मक है। सभी गुण सामान्य-विशेषभावरूप ऋद्धि के धारक हैं। एक वस्तुत्व गुण की यह ऋद्धि सभी में व्याप्त है। वस्तु द्रव्यरूप द्रव्यवस्तु, गुणरूप गुणवस्तु, पर्यायरूप पर्यायवस्तु – ये सभी वस्तुत्व के कारण हैं। संसार में वस्तु नहीं हो तो पदार्थवाचक नाम (शब्द पदार्थ) नहीं हों।

प्रश्न – शून्य नाम तो है; परन्तु शून्यरूप वस्तु कैसे कहेंगे ?

समाधान – एक शून्य (शब्द का अर्थ) आकाश है (शून्य शब्द से आकाश कहा जाता है)। वह सामान्य-विशेषात्मक क्षेत्रीय (बहु-प्रदेशी) वस्तु है। आकाश के क्षेत्र में सभी रह रहे हैं। दूसरे (शून्य शब्द का अर्थ) अभाव मात्र में सामान्य अभाव, विशेष अभाव है। यहाँ सामान्य-विशेष तो है; परन्तु अभाव मात्र है। सामान्य-विशेषात्मक वस्तु में जैसे सामान्य-विशेष हैं; उसीप्रकार अभाव में हैं। अभाव शून्यरूप तो है परन्तु सामान्य-विशेषत्व के कारण उसे 'अभाव' नाम मिला है। इसप्रकार सामान्य-विशेष से सभी की सिद्धि होती है। वस्तु का नाममात्र आते ही सामान्य-विशेषता से उसे 'अभाव' – ऐसा नाम प्राप्त हुआ।

यदि नास्तित्व से सिद्धि नहीं होती तो स्वभावों में एक नास्ति स्वभाव नहीं होता। सत्ता 'अस्ति' 'है' इसप्रकार है सत से सामान्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत और 'नास्ति' 'नहीं है' इसप्रकार अभाव सत से विशेष सत्ता का कथन होता है। यदि नास्ति का अभाव नहीं होता तो सत्ता में अस्तिभाव नहीं होता। इसप्रकार अभाव से ही भाव की सिद्धि होती है। वस्तु के प्रकाश को वस्तुत्व करता है। जो वस्तु (अपनी अपेक्षा) है; वही (पर की अपेक्षा) नहीं है।

वस्तु को ज्ञेय कहो, ज्ञायक कहो, ज्ञान कहो – सम्पूर्ण प्रकाश एक चैतन्यवस्तु का है। वस्तुत्व पर्याय की अपेक्षा वस्तुत्व परिणामी है; परन्तु वस्तु की अपेक्षा अपरिणामी है। जीवनरूप वस्तु की अपेक्षा जीवरूप है; परन्तु जड़रूप वस्तु की अपेक्षा जीवरूप नहीं है। चेतना वस्तु की अपेक्षा चेतन मूर्तिक है; परन्तु जड़-मूर्ति नहीं है, इसलिए अमूर्तिक है। अपने प्रदेशों की अपेक्षा सप्रदेशी है, पर-प्रदेशों की अपेक्षा अप्रदेशी है। एक वस्तुमात्र की अपेक्षा एक है, गुणरूप वस्तु की अपेक्षा अनेक है। अपने प्रदेशों की अपेक्षा क्षेत्रीय है, अन्य वस्तु की अपेक्षा क्षेत्र नहीं है। अपनी पर्यायरूप क्रिया करने से क्रियावान है, अन्य की क्रिया नहीं करने से अक्रियावान है।

वस्तु वस्तुत्व की अपेक्षा नित्य है, पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। स्वयं अनंतगुणों को कारण है, स्वयं स्वयं को कारण है; परन्तु जड़ के लिए अकारण है। अपने परिणाम का स्वयं कर्ता है, अन्य के परिणाम का अकर्ता है। ज्ञान वस्तु (ज्ञेय) की अपेक्षा सर्वगत है, पर की अपेक्षा निश्चयनय से पर में नहीं जाने के कारण सर्वगत नहीं है। अपने प्रदेश लक्षण से स्वयं में स्वयं का प्रवेश होता है, निश्चय से पर में प्रवेश नहीं होता है। वस्तुत्व की अपेक्षा अभेद है, पर्याय की अपेक्षा भेद है। वस्तुत्व की अपेक्षा अस्ति है, पर्याय की अपेक्षा नास्ति है। वस्तुत्व की अपेक्षा एक है, पर्याय से अनेक है। वस्तुत्व की अपेक्षा अनादि-अनंत है, पर्याय की अपेक्षा सादि-सांत है –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इत्यादि अनंतभेद वस्तुत्व के हैं। वस्तुत्व के कारण अनंतगुणों की महिमा है। वस्तुत्वगुण ऐसी ऋद्धि का धारक होने से ऋषि कहलाता है।

वस्तुत्व में साधु आदि भेद – वस्तुत्व सामान्य-विशेषता देकर सभी द्रव्य-गुण-पर्यायों को साधता है, अपने परिणामों की अपेक्षा स्वयं को भी साधता है; अत: साधु कहलाता है।

अपने भाव में अवस्तुरूप विकार नहीं आने देने के कारण यति है; विकार को जीतने के कारण यति है। ज्ञानवस्तु अज्ञान-विकार नहीं आने देती हैं, दर्शन अदर्शन विकार नहीं आने देता है, वीर्य अवीर्य विकार नहीं आने देता है। अतींद्रिय, अनाकुल, अनुभव रस के आस्वाद से उत्पन्न सुख, दु:खरूप विकार नहीं आने देता है। प्रत्येक गुण के विकार का अभाव हुआ है; अत: सभी गुणों ने 'वस्तुत्व यति' नाम प्राप्त किया है।

ज्ञान-वस्तुत्व सभी को प्रत्यक्ष करता होने से वस्तुत्व को मुनि कहते हैं।

अगुरुलघु में ऋषि आदि चार भेद

१. अगुरुलघु ऋषि – अगुरुलघुगुण अनंतऋद्धिधारी है। न गुरु अर्थात् भारी नहीं, न लघु अर्थात् हल्का नहीं; अगुरुलघु के कारण द्रव्य जैसा का तैसा रहता है। इसके कारण ही पर्याय जैसी की तैसी रहती है। ज्ञान न हल्का है, न भारी है; दर्शन न हल्का है, न भारी है; वीर्य न हल्का है न भारी है; प्रमेय न हल्का है, न भारी है; सभी गुण न हल्के हैं, न भारी हैं। अगुरुलघुगुण की ऋद्धि सभी गुणों में आने के कारण सभी इसीप्रकार हुए। अगुरुलघु के कारण (सभी में) षट्वृद्धि-हानिरूप विकार/विशेष कार्य हुआ; जिससे सभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य-गुणों की सिद्धि हुई; सब जैसे के तैसे विद्यमान रहते हैं। वही कहते हैं –

सिद्ध के अनंतगुणों में से एक सत्तागुणरूप सिद्ध परिणमित हुए, इसे अनंतवे भाग परिणमन की वृद्धि कहते हैं। असंख्यातगुणों में से एक वस्तुत्वरूप परिणमित हुए – ऐसा कहने पर यह असंख्यात भाग परिणमन की वृद्धि है। आठ गुणों में से सम्यक्त्वरूप परिणमित हुए – ऐसा कहने पर यह संख्यात भाग परिणमन की वृद्धि है। आठ गुणरूप परिणमित हुए हैं – ऐसा कहने पर यह संख्यातगुण परिणमन की वृद्धि है। असंख्यातगुणरूप परिणमित हुए हैं – ऐसा कहने पर यह असंख्यातगुण परिणमन की वृद्धि है। सिद्ध अनंतगुणरूप परिणमित हुए हैं – ऐसा कहने पर यह अनंतगुण परिणमन की वृद्धि है। इसप्रकार छहप्रकार की वृद्धि है। परिणमन की वस्तु में लीनता से हानि हुई। भेदरूप वृद्धि नष्ट हो जाने से उसे हानि कहा। इस वृद्धि-हानि से वस्तु जैसी की तैसी/यथावत रहती है।

षट् वृद्धि में सभी गुण परिणमित हुए; जिससे (प्रत्येक) गुण का स्वरूप पर्याय में प्रगट हुआ है। परिणमन नहीं होने पर गुण प्रगट नहीं होता; इसप्रकार वृद्धि गुण को रखती है। यदि हानि नहीं होती तो वस्तु का रसास्वाद लेता हुआ परिणाम (वस्तु में) लीन नहीं होता। परिणाम की लीनता के बिना द्रव्य रसास्वाद से तृप्त नहीं होता। रसास्वाद की तृप्ति के बिना द्रव्य द्रव्य की स्पष्टता को धारण नहीं कर पाता; जिससे द्रव्य का द्रव्यपना नहीं रहता। इसप्रकार द्रव्य के गुणों को रखने के लिए द्रव्य में परिणमन द्वारा वृद्धि-हानि होती रहती है। यह सब सिद्धि अगुरुलघु के कारण हुई। अगुरुलघु इन सभी को सिद्ध करने की ऋद्धि से सम्पन्न है। इसने अनंत गुण, द्रव्य, पर्यायों की सिद्धि की। ऐसी ऋद्धि का धारक अगुरुलघुगुण ऋषि कहलाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. अगुरुलघु साधु – यह अगुरुलघु सभी को साधने के कारण साधु कहलाता है। वृद्धि-हानि के कारण गुण जैसे के तैसे रहते हैं; हल्के-भारी नहीं होते हैं। इसप्रकार सभी का साधक होने से साधु है। स्वयं को स्वयं की परिणति से साधने के कारण भी साधु है।

३. अगुरुलघु यति – हल्के-भारीरूप विकारों को जीतकर अपने स्वभाव में निवास करता है। यदि हल्का होता तो हवा में उड़ जाता, भारी होता तो अधोपतन हो जाता (नीचे गिर जाता)। ऐसे विकार का अभाव कर इसने स्वयं से स्वयं की यति वृत्ति प्रगट की है। स्वयं के विकार नष्ट किए, अन्य गुणों के भी विकार नष्ट किए हैं। यति अपने विकार भी नष्ट करते हैं और दूसरों के विकार भी नष्ट करते हैं; इस विशेषता के कारण अगुरुलघु को भी यति कहते हैं।

४. अगुरुलघु मुनि – स्वयं को स्वयं प्रत्यक्ष करता है; ज्ञान के अगुरुलघु में ज्ञान प्रत्यक्ष होने से अगुरुलघु प्रत्यक्षज्ञान का धारक हुआ। प्रत्यक्षज्ञानी को मुनि कहते हैं; अतः अगुरुलघु को भी मुनि कहा।

इसप्रकार अगुरुलघु में चार भेद घटित हुए।

प्रमेय के चार भेद

१. प्रमेय ऋषि – प्रमेयत्व ने सभी को प्रमाण करने/जानने-योग्य किया। द्रव्य प्रमाण करने-योग्य, गुण प्रमाण करने-योग्य, पर्याय प्रमाण करने-योग्य प्रमेय ने किए हैं। प्रमेय के बिना वस्तु प्रमाण-योग्य नहीं होती है। अप्रमाणत्व दूर करने के लिए प्रमेय (वस्तु को) प्रमाण-योग्य करता है। अनंतगुणों में लक्षण प्रमाण करने-योग्य है, प्रदेश प्रमाण-योग्य है, सत्ता प्रमाण-योग्य है, गुण का नाम प्रमाण-योग्य है, क्षेत्र प्रमाण-योग्य है, काल प्रमाण-योग्य है, संख्या प्रमाण-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

योग्य है, स्थान-स्वरूप प्रमाण-योग्य है, फल प्रमाण-योग्य है, भाव प्रमाण-योग्य है, प्रमेय वस्तुत्व प्रमाण-योग्य है, प्रमेय द्रव्यत्व प्रमाण-योग्य है, प्रमेय अगुरुलघुत्व प्रमाण-योग्य है इत्यादि अनंतगुणरूप प्रमेय प्रमाण-योग्य हुए। सभी में प्रमेय गुण की ऋद्धि व्याप्त है। प्रमेय से प्रमाण की प्रसिद्धि होती है, प्रमाण से प्रमेय की प्रसिद्धि होती है। प्रमेय-प्रमाण-दोनों से वस्तु प्रसिद्ध, प्रगट, सुनिश्चित होती है। जैसे तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग देवाधिदेव प्रमाण-योग्य हैं, (इसलिए) उनके वचन प्रमाण-योग्य हैं; उसीप्रकार यदि वस्तु प्रमाण-योग्य हो तो उसके गुण प्रमाण-योग्य होते हैं। प्रमेय सभी स्वरूपों की सर्वस्वता को प्रमाण करने-योग्य करता है। इसप्रकार की अखंडित ऋद्धि का धारक होने से प्रमेय ऋषि है।

२. प्रमेय साधु - प्रमेय परिणमन द्वारा स्वरूप को स्वयं साधता है; अतः साधु है। प्रमाण करने-योग्य सभी गुणों को वह साधता है; अतः साधु है।

३. प्रमेय यति – विकार को नहीं आने देने के कारण प्रमेय यति है। दर्शन-प्रमेय दर्शन के अदर्शन-विकार को नहीं आने देता है। ज्ञान-प्रमेय ज्ञान के अज्ञान-विकार को नहीं आने देता है। वीर्य-प्रमेय वीर्य के अवीर्य-विकार को नहीं आने देता है। अतीन्द्रिय भोग-प्रमेय अतीन्द्रिय अनंतसुख भोग के इन्द्रियजन्य सुखादि दुःख-विकार को नहीं आने देता है। सम्यक्त्व-प्रमेय निर्विकल्प, यथावत सम्यक् निश्चयरूप निजवस्तु के श्रद्धानमय सम्यक्त्व के विकार मिथ्यात्व को नहीं आने देता है। इसप्रकार अनंतगुणरूप प्रमेय अनंतगुण-विकार को नहीं आने देते हैं। यतिपद धारण करने से प्रमेय ने सम्पूर्ण विकारता हर ली/नष्ट कर दी है; अतः प्रमेय यति है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४. **प्रमेय मुनि** – ज्ञान-प्रमेय में अनंतज्ञान आया, ज्ञान ने सभी गुणों को प्रत्यक्ष किया, ज्ञान-प्रमेय में ज्ञान प्रत्यक्ष हुआ; अतः प्रमेय मुनि है।

ज्ञानगुण के चार भेद

१. **ज्ञान ऋषि** – ज्ञान अपने जाननापना के स्वसंवेदन विलास सम्पन्न है। ज्ञान में ज्ञानत्व/जाननापना होने से वह स्वयं स्वयं को जानता है। स्वयं स्वयं को जानने से वह शुद्ध है। वह आनंद-अमृत-वेदनामय ज्ञानपरिणति द्वारा स्वयं ही, स्वयं से, स्वयं में उसे लाकर उसका (आनंद-अमृत का) रसास्वाद लेता रहता है – ऐसा उपचार मात्र से कहा जाता है। ज्ञान में तीनकाल संबंधी ज्ञेयभाव प्रतिबिम्बित होने से सर्वज्ञता हुई। असद्भूत उपचार (उपचरित असद्भूत व्यवहार-नय) की अपेक्षा लोकालोक ज्ञान में आया। ज्ञान अपने स्वभाव से स्थिर है, युगपत है, अखण्ड है, शाश्वत है, आनंद विलासी है, विशेष गुण है, सभी में प्रधान है। अपनी पर्यायमात्र की अपेक्षा अनंत पदार्थों का भासक है।

वीर्यगुण दर्शन को निराकाररूप से निष्पन्न रखने की सामर्थ्य-सम्पन्न है, ज्ञान को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य-सम्पन्न है, प्रमेय को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य-सम्पन्न है, प्रदेश को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य-सम्पन्न है; सभी द्रव्यों, गुणों और पर्यायों को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य-सम्पन्न है। यदि ज्ञान नहीं होता तो ऐसे वीर्य की सकल सम्पूर्ण अनंत शक्ति, अनंत पर्याय, अनंत नृत्य, थट-कलारूप सत्ता भाव, रस-तेज, आनंद, प्रभाव आदि अनंत भेद-भाव का ज्ञान नहीं हो पाता। ज्ञान नहीं होता तो देखना नहीं होता। देखना नहीं होने पर अदृश्य हो जाता। अदृश्य हो जाने पर तो अभाव ही हो जाता। ऐसे वीर्य को ज्ञान ही प्रगट करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रदेश (प्रदेशवत्त्व) गुण असंख्यात प्रदेशों का धारक है। प्रत्येक प्रदेश में अनंत-अनंतगुण हैं। प्रत्येक गुण असंख्यातप्रदेशी, अनंत पर्याय, अनंतशक्ति-मंडित, सत्ता सद्भाव, वस्तुत्वभाव, अगुरुलघुभाव, सूक्ष्मभाव, वीर्यभाव, द्रव्यत्वभाव, अवगाहभाव, प्रमेयत्वभाव, अमूर्त-भाव, प्रभुत्वभाव, विभुत्वभाव, तत्त्वभाव, अतत्त्वभाव, भावभाव, अभावभाव, एकभाव, अनेकभाव, अस्तिभाव, शुद्धभाव, नित्यभाव, चैतन्यभाव, परमभाव, निजधर्मभाव, ध्रुवभाव, आनंदभाव, अखण्ड-भाव, अचलभाव, भेदभाव, अभेदभाव, केवलभाव, शाश्वतभाव, अरूपभाव, अतुलभाव, अजभाव, अमलभाव, अविकारभाव, अछेद-भाव, अमितभाव, प्रकाशभाव, अपारमहिमाभाव, अकलंकभाव, अकर्मभाव, अघटभाव, अखेदभाव, निर्मलभाव, निराकारभाव, निष्पन्न-भाव, नि:संसारभाव, नास्ति/अन्यत्वभाव से रहितभाव, कल्याणभाव, स्व-भाव, पररहितभाव, चेतनागुण से व्यापकभाव इत्यादि अनंतभाव प्रत्येक गुण धारण करता है।

ऐसे अनंत-अनंतगुणों को प्रत्येक प्रदेश धारण करता है। ज्ञान ने उन प्रदेशों को जाना, तब वे प्रगट हुए (उनकी महिमा ज्ञात हुई)। बिना ज्ञान के प्रदेशों की सकल विशेषताएँ ज्ञात नहीं होती हैं। प्रदेशों की महिमा जाननेवाला ज्ञान है।

सत्तागुण शाश्वत लक्षण सम्पन्न है। द्रव्य सत, गुण सत, पर्याय सत, अगुरुलघु सत, सूक्ष्म सत, अनंतगुण सत, महा सत, अवांतर सत, एक पर्याय सत, अनेक पर्याय सत, विश्वरूप सत, एकरूप सत, सर्व पदार्थ स्थिति सत, एक-एक/प्रत्येक पदार्थ स्थिति सत, त्रिलक्षणसत, अत्रिलक्षणसत – इत्यादि सत्ता भेद जब ज्ञान ने जाने, तब प्रगट हुए; अत: (ज्ञान) प्रधान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सूक्ष्म के भेद – द्रव्यसूक्ष्म, गुणसूक्ष्म, पर्यायसूक्ष्म, ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म, वीर्यसूक्ष्म, सुखसूक्ष्म, अगुरुलघुसूक्ष्म, द्रव्यत्वसूक्ष्म, वस्तुत्वरूपसूक्ष्म – इत्यादि प्रकार से सूक्ष्मगुण के अनंतभेद ज्ञान प्रकट करता है; अत: ज्ञान प्रधान है।

इसप्रकार अनंत गुणों के अनंत, अपार महिमा-मंडित भेद ज्ञान प्रगट करता है, ऐसी ज्ञान में एक ज्ञायक ऋद्धि है; इसीलिए ज्ञान ऋषि है।

२. ज्ञान साधु – ज्ञान अपनी ज्ञायक परिणति से स्वयं स्वयं को साधता है। अनंतज्ञान में सभी व्यक्त होने के कारण उसने सभी प्रगट किए; इसप्रकार सभी के भावों को प्रगट करने का साधक होने से वह साधु है। ज्ञान से सर्वस्व, स्वरूप सधता है। आत्मा ज्ञान से ही सर्वज्ञ-महिमा को प्राप्त होता है। सकल चेतनाओं में विशेष चेतना होने के कारण ज्ञान स्वरूप का साधन है। ज्ञान से ही आत्मा का परम प्रकाश विकसित हुआ है, वह प्रधानरूप है; अत: समस्त प्रभुता का साधक है। ज्ञान अनंत, अविनाशी, आनंद का साधक है। ज्ञान की ऐसी साधकता क्रमिक नहीं है, उसमें युगपत साध्य-साधकभाव है।

प्रश्न – ऐसा किसकारण है ?

समाधान – एकसाथ ही सभी का प्रकाशक होने से उसमें युगपत साध्य-साधक भाव है।

ज्ञान के ऐसे साधु भाव को जो भली-भाँति समझेंगे, वे अविनाशी नगरी के राजा (सिद्ध) हो जाएंगे; अत: ज्ञान को साधु जानकर सभी जीव सुख प्राप्त करो।

३. ज्ञान यति – ज्ञान अज्ञान-विकार के अभाव से शुद्ध है। इस संसार में सभी जीव अनादि कर्मयोग से पर को अपना मानकर मोहित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुए दुखी हुए हैं – यह एक अज्ञान की ही महिमा है। इसके कारण ही जन्मादि दुःख से व्याकुल हैं। (ज्ञान ने) उस अज्ञान-विकार को नष्ट किया, पूर्वकथित ज्ञान का प्रभाव प्रगट किया; इसप्रकार अज्ञान-विकार जीतने के कारण ज्ञान यति है। ज्ञान के इस यतिभाव को जाननेवाला ज्ञान के यतिभाव को प्राप्त करता है; अतः ज्ञान का यतिभाव जानने-योग्य है।

४. ज्ञान मुनि – ज्ञान प्रत्यक्ष का धारक मुनि है। यह ज्ञान का अपना ही स्वरूप है; अन्य को भी प्रत्यक्ष जानता है; अतः मुनि है।

दर्शन के चार भेद

१. दर्शन ऋषि – देखनामात्र दर्शन है। यह उपचार से लोकालोक को देखता है, अनंतगुणों को देखता है, द्रव्यों को देखता है, पर्यायों को देखता है। यदि दर्शन नहीं होता तो द्रव्य अदृश्य होते, तब ज्ञान किसे जानता। ज्ञान नहीं जानता तो (जीव में मिथ्या-सम्यक् रूप) परिणमन भी नहीं होता। इसप्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अभाव होने पर वस्तु का ही अभाव हो जाता। दर्शन की इस देखनेरूप ऋद्धि से सभी की सिद्धि है।

यदि दर्शन ज्ञान को नहीं देखता, तो ज्ञान का सामान्यभाव अदृश्य हो जाता। सामान्य अदृश्य होने से विशेष भी नहीं रहता। सामान्य-विशेष का अभाव हो जाने से वस्तु का ही अभाव हो जाता। इसप्रकार ज्ञान की सिद्धि दर्शन की ऋद्धि से है।

यदि वह सत्ता को नहीं देखता तो सामान्यभाव अदृश्य हो जाने से विशेषता भी नष्ट हो जाने के कारण सत्ता ही नहीं रहती। यदि वीर्य को नहीं देखता तो वीर्य भी सत्ता के समान अदृश्य होने से नष्ट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाता। इसप्रकार दर्शन की देखनामात्र ऋद्धि से अनंतगुण सिद्ध होते हैं।

देखना निर्विकल्परस को प्रगट करता है। जहाँ देखना होता है, वहाँ जानना होता है; जहाँ जानना होता है, वहाँ (मिथ्या-सम्यक्रूप) परिणमन होता है। इसप्रकार दर्शन के देखने से उपयोग की ऋद्धि है। एक गुण का अभाव होने पर सभी का अभाव हो जाता है। दर्शन अपनी ऋद्धि से सभी की सिद्धि करता है। दर्शन सर्वदर्शी है, दर्शन असाधारण/विशेष गुण है। दर्शन मुख्य चेतना है। दर्शन प्रधान है। ऐसी ऋद्धि का धारक होने से दर्शन ऋषि है।

२. दर्शन साधु – दर्शन दर्शन परिणति द्वारा स्वयं स्वयं को साधता है। अन्य को देखकर उन्हें प्रगट करना साधता है; स्वयं सभी को देखता है। दर्शन द्वारा आत्मा देखता है; अतः वह सर्वदर्शित्व को आत्मा में साधता है। अपने देखना भाव द्वारा (पूर्वक) ज्ञान का जानना होता है।

प्रश्न – देखने भाव से ज्ञान का जानना क्यों होता है ?

समाधान – सामान्य-विशेषरूप सभी पदार्थों का निर्विकल्प-सत्तारूप अवलोकन दर्शन करता है। ज्ञान में तो निर्विकल्प सत्ता का अवलोकन नहीं होता है; क्योंकि यह दर्शन का भाव है। सामान्यरूप दर्शन नहीं होने पर विशेषरूप ज्ञान भी नहीं होता है। सभी अदृश्य रहने पर ज्ञान किसका होगा ? दर्शन के कारण दृश्य होने पर अदृश्यपना मिटा, तब ज्ञान भी विशेष का ज्ञाता हुआ। ज्ञान-दर्शन का युगपत भाव है। इसप्रकार दर्शन सभी गुणों को प्रगट कर साधता है; अतः साधु है।

३. दर्शन यति – दर्शन ने अदर्शन-विकार दूर किया है। यदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकार रहता तो दर्शन में सर्व (दर्शित्व) शक्ति नहीं होती। विकार जीतने के कारण वह यति है। दर्शन शुद्धता में विकार को नहीं आने देता है। दर्शन की सम्पूर्ण शुद्धता है, उसमें अतिचार भी नहीं लगता है। ऐसी निराकार शक्ति प्रगट होने के कारण वह यति है।

४. **दर्शन मुनि** – दर्शन में ज्ञान भी देखा गया। वहाँ केवलदर्शन में केवलज्ञान का अवलोकन हुआ तब प्रत्यक्ष ज्ञानी को 'मुनि' संज्ञा हुई। दर्शन अनंतगुण को प्रत्यक्ष देखता है। प्रत्यक्ष द्रष्टा को मुनि कहते हैं; अत: दर्शन भी मुनि है।

इसप्रकार सभी गुणों में चार-चार भेद जानना चाहिए।

परमात्मा राजा के पदाधिकारिओं के नाम – परमात्मा राजा के पदाधिकारी अनंत हैं। उनमें से कुछ के नाम लिखते हैं – प्रभुत्व नामक, विभुत्व नामक, तत्त्व नामक, अमलभाव नामक, चेतनप्रकाश नामक, निजधर्म नामक, असंकुचितविकास नामक, त्याग-उपादानशून्यत्व नामक, परिणामशक्तित्व नामक, अकर्तृत्व नामक, कर्तृत्व नामक, अभोक्ता नामक, भोक्ता नामक, भाव नामक, अभाव नामक, साधारणप्रकाश नामक, असाधारणप्रकाश नामक, कर्तानामक, कर्म नामक, करण नामक, संप्रदान नामक, अपादान नामक, अधिकरण नामक, अगुरुलघु नामक , सूक्ष्म नामक, सत्ता नामक, वस्तुत्व नामक, द्रव्यत्व नामक, प्रमेयत्व नामक इत्यादि अनंत हैं। सभी अपने-अपने पद का कार्य करते हैं। इनका विशेष आगे कहेंगे।

गुण, गुण-परिणतिरूप नर-नारिओं के भोग विलास का वर्णन – प्रदेशरूपी देशों में रहनेवाले जो गुणरूपी पुरुष और गुण की परिणतिरूपी नारी कहीं थीं; वे कैसा विलास करते हैं, उसे कहते हैं –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीर्यगुणरूपी नर की वीर्य की परिणतिरूपी नारी; ये दोनों मिलकर भोग करते हैं; उसे कहते हैं – वीर्य के अनंत अंग हैं – सत्तावीर्य, ज्ञानवीर्य, दर्शनवीर्य, प्रमेयवीर्य इत्यादि अनंतगुणों के अनंतवीर्यरूप अनंत अंगों द्वारा अपनी परिणतिरूपी नारी का भोग करता है। इन सभी अंगों में वीर्य-परिणति परिणमित हुई। वीर्य-परिणति का अंग वीर्य-नर से व्याप्य-व्यापक हुआ। दोनों अंग मिलने से अतीन्द्रिय भोग हुआ, आनंदरूपी पुत्र उत्पन्न हुआ। समस्त गुणोंरूपी परिवार में वीर्य-शक्ति फैल रही थी। वे सभी वीर्य की शक्ति से निष्पन्न थे। इसके पुत्र हुआ; सभी गुण वीर्य के अंग थे; अतः वीर्य के अंग प्रफुल्लित होने से सभी गुण प्रफुल्लित हुए। सभी गुणरूपी नरों (के घरों) में मंगल हुए।

इसीप्रकार ज्ञानरूपी नर मंत्री पद का स्वामी है। वह अपनी ज्ञान-परिणति से मिलकर भोग करता है। उसका वर्णन करते हैं –

स्वसंवेदनरूप अनंतशक्ति का धारक, लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान अनंतगुणों को जानता है। सत पर्याय, सत वीर्य, सत प्रमेय – इसप्रकार अनंतगुणों की अपेक्षा अनंत सत हैं। ज्ञान अनंत महिमा निधिसम्पन्न है। इस ज्ञान से ज्ञान-परिणतिरूपी नारी मिली। परिणति और ज्ञान का अंग-अंग मिलने से ज्ञान की रसास्वादमय परिणति हुई। ज्ञान उसे लेकर ज्ञानपरिणति का विलास करता है। ज्ञान की परिणति जाननारूप उपयोग चेतना को प्रगट करती है। यदि परिणति-नारी का विलास नहीं होता तो ज्ञान अपने 'जानना' लक्षण को यथार्थ (सम्यक्) नहीं रख पाता। जैसे अभव्य के ज्ञान है; परन्तु ज्ञान-परिणति नहीं होने के कारण ज्ञान यथार्थ नहीं है। ज्ञान-परिणति को धारण करने से ज्ञान 'यथार्थ' नाम पाता है; इसप्रकार ज्ञानपरिणति ज्ञान की प्रभुता को यथार्थ रखती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे सुशील नारी अपने पुरुष के घर को व्यवस्थित करती है; उसीप्रकार ज्ञान-परिणति ज्ञान-घर को वैभव और सुख सम्पन्न करती है। ज्ञान-परिणति ज्ञान के अंग का पुनः-पुनः वेदन कर विलसित होती है। ज्ञान के साथ ज्ञान परिणति-नारी सदैव है। सभी ज्ञेयों को युगपत जानने की अनंतशक्ति ज्ञान में है; परन्तु जबतक ज्ञान की परिणतिरूपी नारी से भेंट नहीं होती है, तबतक वह अनंतशक्ति दबी रहती है। परिणति-नारी ने यह अनंतशक्ति व्यक्त की। जैसे विशल्या ने लक्ष्मण की शक्ति खोली; उसीप्रकार ज्ञान-परिणति-नारी ने ज्ञान की शक्ति खोली। ज्ञान अपनी परिणति-नारी के साथ विलास के कारण अपने प्रभुत्व का स्वामी हुआ। परिणति ने जब ज्ञान का वेदन किया, तब वेदन करते ही अतीन्द्रिय भोग हुआ। ज्ञान-परिणति का संभोग ज्ञानपुरुष ने किया। दोनों के संभोग योग से आनंद नामक पुत्र हुआ; तब समस्त गुणरूपी परिवारजन ज्ञान (के घर) में आए। ज्ञान के आनंद पुत्र होने से सभी हर्षित हुए। सभी के हर्ष मंगल हुआ।

दर्शनगुण की दर्शनपरिणतिरूपी नारी है। वह अपनी नारी के साथ विलास करता है। उसे ही कहते हैं – दर्शन-परिणति-नारी दर्शन के अंग से मिलती है, तब दर्शन अपने अंग द्वारा विलसित होता है। दर्शन से नारी है, नारी से दर्शन का स्वरूप सधता है। दर्शन-परिणति-नारी का सुहाग/सौभाग्य भी दर्शनपति से मिलने पर ही है। जबतक वह दर्शन से दूर थी, तबतक निर्विकल्परस का पान नहीं करती थी, इससे व्याकुलरूप थी। अनंत सर्वदर्शित्वशक्ति के नाथ अपने पति से मिलते ही अनाकुलदशा धारण करती है। वहाँ ऐसी महिमा है। समस्त वेद-पुराण इसका यश गाते हैं। दर्शन के वेदन से परिणति शुद्ध हुई, परिणति से दर्शन शुद्ध हुआ। दर्शन के अनुसार परिणति है, परिणति के अनुसार दर्शन है। दर्शन जब परिणति को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धारण करता है, तब स्वयं स्वयं में सुखी है और यदि उसे धारण नहीं करता है, तो स्वयं अति अशुद्ध रहता है, शुद्धता नहीं रहती है। परिणति को दर्शन के बिना विश्राम नहीं है, दर्शन को परिणति के बिना सुख नहीं है, शुद्धता नहीं है। परिणति दर्शन का वेदन कर गुण का प्रकाश रखती है। परिणमन नहीं करे तो देखना नहीं रहे। दर्शन नहीं हो तो परिणति किसके आश्रित हो, कैसे परिणमन करे ? यह परिणति दर्शन-पति से मिलकर संभोग का सुख लेती है। दर्शनपरिणति को अपने अंग से मिलाकर महासंभोगी हो वर्तता है। दोनों के संभोग से आनंद नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई; तब समस्त गुण-परिवार महा आनंदित हो मंगल करता है। इस नारी और इस पुरुष के विलास का वर्णन करने में कौन समर्थ है ?

अब द्रव्यरूपी पुरुष अपनी परिणतिरूपी पत्नी का संभोग करता है; उसे कहते हैं – द्रवणशीलता के कारण द्रव्य को स्वयं यह (द्रव्य) नाम मिला है। द्रव्य के द्रवित होने से गुण-पर्याय की सिद्धि होती है। द्रव्य अपने अन्वयी गुणों में और क्रमवर्ती पर्यायों में द्रवता है, व्याप्त होता है; अतः द्रव्य है। द्रवित हुए बिना परिणति नहीं होती है, परिणति के बिना गुण नहीं होते हैं; इसप्रकार द्रव्य का ही अभाव हो जाएगा; इसलिए द्रवना द्रव्य को सिद्ध करता है। द्रव्यत्व गुण द्रवरूप परिणति से है। यदि वह द्रवरूप परिणमित नहीं होता तो द्रव नहीं होता और तब द्रव्य भी नहीं होता। इसप्रकार परिणति द्रव्यत्व के लिए कारण है। परिणति-नारी से द्रव्यत्व पुरुष की सिद्धि है। द्रव्यत्व अपनी परिणति-नारी का अंग विलसित करता है, परिणति-नारी द्रव्यत्व-पुरुष को विलसित करती है।

द्रव्यत्व सभी गुणों में है; अतः सभी गुणों संबंधी द्रव्यत्व के सभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंग एक बार में ही परिणति-पत्नी विलसित करती है। जब उसने सभी गुणों के द्रव्यत्व में विलास किया, तब सभी गुणों के द्रव्यत्व के आधारभूत द्रव्यत्व के विशेष विलास को करनेवाली हुई। परिणति मिलने से द्रव्यत्व की सिद्धि हुई; इसप्रकार परिणति नारी का विलास द्रव्यत्व को अनंतगुणों के आधारपद पर स्थापित करता है।

प्रश्न – द्रव्यत्व की परिणति सभी गुणों में व्याप्त है; तब फिर यहाँ द्रव्यत्व का ही विलास क्यों कहते हैं ? सभी गुण कहिए, सभी गुणों की परिणति कहिए।

समाधान – सभी गुणों में द्रव्यत्व है, द्रव्यत्व की परिणति द्रव्यत्व के साथ है; अतः द्रव्यत्व की परिणति को द्रव्यत्व में कहा, अनंतगुणों की परिणति को अनंतगुणों में कहा; किसी एक गुण की परिणति को अन्य गुण में नहीं कहा गया है। जिस गुण की परिणति है, उसी गुण में कही जाती है; उस गुण के द्वारा सभी गुणों में आ जाती है। उसे अन्य गुण की कहने पर वह अन्य की हो जाएगी। द्रवणता के कारण वह द्रव्यत्व की है। इस परिणति का परम विलास भी परम है, अनंत अतिशय सम्पन्न है। द्रव्यत्वगुण-पुरुष जो अपनी परिणति के साथ विलास करता है, उसकी महिमा अपार है; उससे सारभूत सुख उत्पन्न होता है। इन दोनों के संभोग से आनंद नामक पुत्र हुआ; जिससे सम्पूर्ण गुण-परिवार में परम मंगल हुए।

अपनी परिणति-पत्नी के साथ अगुरुलघु के विलास का वर्णन – अगुरुलघु का विकार/विशेष कार्य षट्गुणी वृद्धि-हानि है। अपने अनंतगुणों में परिणमन से षट्गुणी वृद्धि होती है। उस परिणमन में अनंतगुण का रस प्रगट होता है। अनंत भेद-भाव सम्पन्न अनंत रस, अनंत प्रभुता, अनंत अतिशय, अनंत नृत्य, अनंत थट-कलारूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्ताभाव-प्रभावमय उस विलास में नवरस वर्तते हैं। सभी गुण, गुण के रस उस नवरसयुक्त षट्गुणी वृद्धि में सधते हैं। अब उनका वर्णन करते हैं –

सत्तागुण में नवरस का वर्णन – प्रथम सत्ता में शृंगाररस साधते हैं। सत्ता सत्ता लक्षण का धारक है। अनंतगुण सत्ता का शृंगार है। सत्ता शाश्वत है। सत्ता में ज्ञान समस्त ज्ञेयों का ज्ञाता है, अनंतगुणों का ज्ञाता, जानन प्रकाशमय, सर्वज्ञत्वशक्ति का धारक, स्वसंवेदनरस युक्त, अनंत महिमा निधिमय है; अनंत द्रव्य-गुण-पर्याय रूप सम्पूर्ण ज्ञेय इसमें व्यक्त हुए हैं – ऐसा ज्ञानरूप आभूषण सत्ता ने पहिना है, यह सत्ता का शृंगार है।

निर्विकल्परस धारक अविकारी निर्विकल्प दर्शन में भेद विकल्प का अभाव है। सम्पूर्ण पदार्थों की सत्तामात्र का अवलोकन करनेवाला, सभी के सामान्य भाव को देखनेवाला दर्शनरूप आभूषण सत्ता ने पहिना है, यह सत्ता का शृंगार है।

सभी को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य सम्पन्न वीर्य को सत्ता ने धारण किया, इससे सत्ता की शोभा हुई। सभी को प्रमाण करने/जाननेयोग्य करनेवाले प्रमेयगुण से सभी प्रमाणित हुए; इसे सत्ता ने धारण किया, जिससे सत्ता प्रमाणरूप तथा सुशोभित हुई; यह सत्ता का शृंगार है।

अगुरुलघु को धारण करने से सत्ता हल्की-भारी नहीं होती है; इसकारण सत्ता अपने शुद्ध रूप में रहने से सुंदर लगी और सुशोभित हुई। सत्ता ने ऐसे अनंतगुणों को अपने आप में धारण किया है; ये सभी सत्ता के आभूषण हैं, यही उसका शृंगार है।

प्रश्न – गुण में अन्य गुण नहीं रहते हैं, तब फिर सत्ता को अनंत गुणधारी कैसे कहते हैं ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान – सत्ता के लक्षण की अपेक्षा भिन्न-भिन्न लक्षणोंरूप सभी गुण 'हैं'/विद्यमान हैं। 'है' लक्षण सत्ता का है; अतः सत्ता में सभी आ गए। द्रव्य तो भिन्न-भिन्न लक्षणयुक्त सभी गुणों का आधार है। सत्ता एक है; परन्तु भेद विवक्षा में लक्षण की मुख्यता से उसे आधार कहना भी प्रमाण है/मान्य है।

इसप्रकार सत्ता (गुणों के) सभी रूपों (स्वभावों) को आभूषण बनाकर शृंगार को धारण कर शोभायमान है। सत्ता द्रव्य, गुण, पर्याय के विलासभाव से विलसित है। सम्पूर्ण विलासरस सत्ता में होने के कारण उसमें शृंगाररस है। सत्ता और सत्ता-परिणति – दोनों की रसवृत्ति, प्रवृत्ति शृंगार है। जब सत्तापरिणति सत्ता का वेदन/अनुभव करती है, तब रस निष्पत्ति होती है और सत्ता अपनी परिणति का धारक होने से वह परिणति स्वयं ही रसधारक हो जाती है; इन दोनों के मिलाप से आनंदरस होता है, वह शृंगार है।

सत्ता में वीररस – सत्ता ने अपनी वीरवृत्ति से अपने प्रतिकूल का अभाव किया है; ऐसी वीर्यशक्ति सत्ता में होने से वह शाश्वत निष्पत्तिधारक है। वीर्य के कारण वह सत्ता द्रव्य, गुण, पर्याय का 'है' रूप विलसित करती है; अतः वह वीर्यरसमय है। वीर्यशक्ति के कारण, अपने-अपने प्रभाव को धारण करनेवाले सभी गुणों के शाश्वत भाव, विकासभाव, आनंदभाव, वस्तुत्वभाव, प्रकाशभाव, अबाधितभाव आदि अनंतभाव वीरत्व में आए। इसप्रकार वीर्यरस में सभी को रखने का पराक्रम है। यह वीररस सत्ता में होने के कारण वह सभी को अपना 'है' भाव देता है। निष्पत्ति वीर्य ने की है; इसप्रकार सत्ता में वीररस है।

सत्ता में करुणरस – सत्ता में करुणा है। कैसे ? यदि सत्ता 'है'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव अन्य गुणों को नहीं देता तो सभी नष्ट हो जाते। वह अपना 'है' भाव सभी को देकर उन्हें सुरक्षित रखता है, इससे उसमें करुणा सिद्ध हुई। इसप्रकार सत्ता में करुणरस है।

सत्ता में वीभत्सरस – अपने 'है' भाव के प्रभाव के विलास को सर्वोत्कृष्ट देखकर अन्य अपने से प्रतिकूल भावों के प्रति ग्लानि हो जाने से सत्ता ने उन प्रतिकूल भावों को धारण नहीं किया – यह उसका वीभत्सरस है।

सत्ता में भयरस – सत्ता भयभीत हो असत्ता में नहीं जाती है – यह उसका भयरस है।

सत्ता में हास्यरस – दर्शन-ज्ञानपरिणति द्वारा उल्लास, आनंद आना; दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सत्ता ही उसका हास्यरस है।

सत्ता का रौद्ररस – सत्ता अपने वीर्य से अपने से प्रतिकूल असत्ता को सदा जीतती है, परभाव का (अपने में) सदा अभाव करती है। यह परभाव के अभावरूप भाव ही उसका रौद्ररस है।

सत्ता का अद्‌भुतरस – साकार ज्ञान और निराकार दर्शन – इन दोनों की सत्ता एक है; सत्ता का ऐसा अद्‌भुतभाव ही उसका अद्‌भुतरस है।

सत्ता का शांतरस – स्वयं शांतरूप होने से सत्ता में अन्य कोई विकल्प नहीं है – यह उसका शांतरस है।

इसप्रकार एक सत्ता में नवरस सिद्ध होते हैं। इसीप्रकार से अनंत-गुणों में नवों रस घटित करना चाहिए। रसयुक्त काव्य प्रमाण है। जैसे लवण/नमक रस से भोजन स्वादिष्ट लगता है, रससहित काव्य अच्छा लगता है; उसीप्रकार अपने-अपने रस से परिपूर्ण अनंतगुण सुशोभित होते हैं; अतः रस का वर्णन किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण-पुरुष गुण-परिणति-नारी के साथ कैसा विलास करता है; उसे कहते हैं – ज्ञानगुण अपनी ज्ञान-परिणति के साथ विलास करता है। ज्ञान के अंग में परिणति का अंग आने से अपने घर की अविनाशी अखंडित महिमा प्रगट हुई। ज्ञान के युगपत भाव का परिणति ने वेदन किया, जिससे एकता रस उत्पन्न हुआ। यदि ज्ञान में परिणति नहीं होती तो वह अनंतशक्तिरूप से परिणमित नहीं होता; उसकी महिमा भी व्यक्त नहीं हो पाती। इसीलिए ज्ञान अपनी परिणति को धारण कर विलास करता है। ज्ञान में जाननापना है। परिणति ने परिणमित होकर जाननापने का वेदन किया; जिससे ज्ञान-रस प्रगट हुआ। परिणति-पत्नी के संयोग से ज्ञान में अतीन्द्रिय भोग होता है; अत: वह अपनी पत्नी को विलसित करता है। इससे आनंद पुत्र होता है।

इसीप्रकार सभी अनंतगुण-पुरुष अपनी गुण-परिणति को विलसित करते हैं। उनकी अपनी-अपनी परिणति ही उनका अपना-अपना सर्वस्व है। उस परिणति से सभी में वेद्य-वेदकतारूप रस व्यक्त होता है।

प्रश्न – प्रत्येक गुण अन्य सभी गुणरूप होकर वर्तता है; तब सभी गुणों की परिणति ने सभी के साथ विलास किया या नहीं ?

समाधान – गुणरूप परिणति जिस गुण की है, वह मात्र उसकी ही है, अन्य की नहीं है। उनमें पर्याय की अपेक्षा व्यापकता है। वह उस पर्यायरूप अपने अंग में परिणमित होकर उस विलास को करती है; अत: अपने-अपने गुण के अपने-अपने अंग विलसित होते हैं। निज गुण-पुरुष के साथ ही उसकी परिणति विलसित होती है। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य गुण की परिणति अन्य गुणरूप हो जाने से महादूषण लगता है; इसप्रकार गुण अपनी परिणति के साथ ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विलास करता है। प्रत्येक गुण अपनी गुण-परिणति-पत्नी के संयोग से अनंत सुख का विलास करता है। सभी इसीप्रकार विलास करते हैं। अनंत महिमा सम्पन्न परमात्मा-राजा के राज्य में सभी गुण-पुरुष-नारी अनंत विलास करते हुए सुखी हैं।

मंत्रिओं द्वारा परमात्मा-राजा की सेवा का वर्णन

दर्शन मंत्री द्वारा परमात्मा-राजा की सेवा का वर्णन – परमात्मा-राजा की अनंतगुणशक्ति, पर्यायरूप प्रजा सम्पूर्ण राजधानी दर्शन द्वारा देखने से दृश्य होती हुई साक्षात् हुई। यदि दर्शन उसे नहीं देखता तो अदृश्य हो जाने के कारण ज्ञान भी उसे जान नहीं पाता। देखने-जानने में नहीं आने पर ज्ञेय-वस्तु ही नहीं रहती; तब परमात्मा का सम्पूर्ण पद ही नहीं रहता। दर्शनगुण देख-देख कर सकल सर्वस्व को साक्षात् करता है। वह ज्ञान को भी देखता है; तब ज्ञान अदृश्य नहीं हो पाने से उसका अभाव नहीं हो पाता है, सदा सद्भाव बना रहता है।

वीर्य को देखने से वह अदृश्य नहीं रह पाता है। ज्ञान वीर्य को जानता है, तब वह साक्षात् होता है। परमात्मा के इन अनंत गुणों को रखने में दर्शन कारण है। नित्य निराकाररूप दर्शन-निराकार शक्ति का ज्ञान कराता है। निर्विकल्परूप में वह सामान्य सत का अवलोकन करता है। यह निर्विकल्प सेवा दर्शन की है। यदि वह ऐसी निर्विकल्प-रूप सेवा नहीं करता तो सत निर्विकल्प नहीं रहता। दर्शन ने साक्षात् निर्विकल्पता दिखाई है। वस्तु का सर्वस्व निर्विकल्प ही है।

सामान्य भाव होने पर ही विशेष भाव होता है। सामान्य भाव के बिना विशेष नहीं होता है। सामान्य विशेष सहित ही होता है; इसलिए दर्शन ने निर्विकल्पता प्रगट की तो उसमें विशेष की स्वतःसिद्धि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो गई; क्योंकि सामान्य होने पर ही विशेष नाम प्राप्त होता है। इस-प्रकार दर्शन वस्तु की सिद्धि कर सेवा करता है। सभी गुणों में दर्शन अत्यंत सूक्ष्म है वह सभी विशेषों में पाया जाता है। यद्यपि दर्शन के सामान्य अवलोकनमात्र से सभी की सिद्धि हो जाती है; परन्तु इसके अति सूक्ष्म, निर्विकल्पदशारूप, निराकार, अक्रिय, अमूर्तिक, अखंडित अंग जब उसमें गम्य होते हैं, तब सभी की सिद्धि होती है।

कोई विरलाजन ही इन्हें दर्शन में गम्य कर पाता है। संसार अवस्था में विशेष कहने पर तो सभी समझ लेते हैं। सामान्यमात्र कथन से कोई विरला ही वस्तु को समझ पाता है, विशेष कथन द्वारा अनेक जन वस्तु को समझ लेते हैं। इस कथन द्वारा संसारी जनों को सामान्य का ज्ञान कराने के लिए दर्शन की सिद्धि की गई है। जब कोई अपने प्रभु के समीप आता है, तब सर्वप्रथम उसे देखता है; इसके बाद अन्य सभी क्रियाएँ होती हैं। प्रभु को नहीं देखने पर कुछ भी नहीं हो सकता है। परमात्मा-राजा को देखने से सर्व-सिद्धि होती है। निर्विकल्प रीति से सेवा करनेवाले दर्शन को उससे निर्विकल्प आनंद-फल होता है।

ज्ञान मंत्री द्वारा परमात्मा राजा की सेवा का वर्णन – अनंतगुणों की अनंतशक्ति, अनंत पर्यायें, प्रत्येक गुण की पर्याय में अनंतनृत्य, नृत्य में अनंतघट (घाट/पहलू), घट में अनंतकला, कला में अनंतरूप, रूप में अनंतसत्ता, सत्ता में अनंतभाव, भाव में अनंतरस, रस में अनंतप्रभाव, प्रभाव में अनंतविभव, विभव में अनंत ऋद्धि; ऋद्धि में अनंत, अतीन्द्रिय, अनाकुल, अनुपम, अखंडित, स्वाधीन, अविनाशी, आनंद इत्यादि भावमय परमात्मा-राजा के वैभव को जब ज्ञान जानता है; तब वह व्यक्त होकर ये नाम प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता है। ये सभी ज्ञान द्वारा ज्ञात नहीं होने पर वेदन होना शक्य नहीं होने से उनका होना, नहीं होने के समान हो जाता है।

ज्ञान अनंतगुण-पर्यायों के समूह को प्रगट करता है; परमात्मा का परमात्मा-पद प्रगट करता है। जब ज्ञान परमात्मा को जानता है, तब उस परमात्मा का सर्वस्व प्रगट होता है। ज्ञान में त्रिकालवर्ती पदार्थों को जानने की शक्ति है। स्व-पर के सकल विशेषभावों को जाननेवाला स्वसंवेदन ज्ञान सभी को प्रगट करता/जानता है। परमात्मा-राजा की प्रभुता ज्ञान प्रगट करता है। उसकी विशेष विभूति ज्ञान के बिना कौन प्रगट कर सकता है ? ज्ञान ही प्रगट करता है। परमात्मा-राजा ने ज्ञान मंत्री को ज्ञायकरूप जानकर सभी में प्रधानता दी है। राजा का राज्य ज्ञान करता है। जैसे किसी के घर में निधान हैं, पर उनकी जानकारी नहीं है; तब उनका होना, नहीं होने के समान है; उसीप्रकार परमात्मा-राजा के अनंत निधानों को यदि ज्ञान नहीं जाने, तो सभी व्यर्थ ही हैं; इसीलिए सभी पदों की सिद्धि ज्ञान मंत्री से ही है।

सत्ता के शाश्वत लक्षण ने अन्यगुणों को शाश्वत किया है। उत्पाद, व्यय का धारक द्रव्य, गुण-पर्याय का आधार है – यह ज्ञान ने ही बताया है। परमात्मा-राजा को निष्पन्न रखने का भाव वीर्य में है। वह सभी को निष्पन्न रखता है – यह ज्ञान ने बताया है। गुणों का भाव, पर्याय भाव ज्ञान ने बताया; इसप्रकार ज्ञान-मंत्री सभी को जाननेवाला है। परमात्मा-राजा इसी के द्वारा सभी को जानता है; अतः वह जानता है कि इस अपने ज्ञानमंत्री द्वारा ही मैं सभी को जानता हूँ। यह ज्ञान-मंत्री प्रधान, सर्वोपरि प्रधान है। उसने इस ज्ञान मंत्री को अपना सर्वस्व सौंप दिया है; ज्ञान विशेष अतीन्द्रिय आनंद की ऋद्धि प्राप्त करता है। इस परमात्मा राजा के यहाँ इस ज्ञान से बड़ा अन्य कोई नहीं है। सर्वज्ञता इसे ही संभव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र मंत्री द्वारा सेवा का वर्णन – परमात्मा-राजा के जितना भी राजऋद्धि का भाव है, उस सभी का चारित्र आचरण करता है, उसकी स्थिरता रखता है। ज्ञान के जाननापने का आस्वादी होकर स्थिरता रखता है, आचरण करता है। स्वसंवेदन भाव का धारक ज्ञान परमानंद उत्पन्न करता है। चारों दर्शनों में विद्यमान सर्वदर्शित्व शक्ति स्वरूप को देखती है। परमात्मा राजा को देखने से आनंद प्राप्त करती है। उसमें स्थिरताभाव चारित्र के कारण है। वीर्य निष्पन्नता की स्थिरता, प्रमेयसत्ता आदि सभी गुणों की स्थिरता चारित्र के कारण है। सभी का वेदकभाव चारित्र करता है। यह चारित्र सम्पूर्ण द्रव्य, गुण, पर्याय, शक्ति, लक्षण, स्वरूप, रूप आदि सर्वस्व का वेदन करता है, उन्हें स्थिर रखता है।

चारित्र मंत्री के कारण अपने घर की ऋद्धि के सुख में परमात्मा राजा विलास करता है। यदि चारित्र नहीं होता तो अपनी राजधानी के सुख में स्वयं परमात्मा राजा विलास नहीं कर पाता; क्योंकि यह रसास्वाद करने का अंग (स्वभाव) इस चारित्र का ही है, अन्य का नहीं है। राजा का पद अनंतसुख से सफल होता है और वह इस चारित्र के कारण ही है; इसप्रकार यह राज्यपद की सफलता का कारण है। अर्थक्रिया (प्रयोजनभूतक्रिया), षट्कारक इसी से हैं। ये सभी स्वरूप लाभ स्वभाव-प्रच्च्यवन, अवस्थित भाव द्वारा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य में सिद्ध होते हैं।

सभी गुणों की अनंत महिमा इसने सफल की है। यह सभी में प्रवेश कर वेदन करता हुआ उनके स्वरूप भाव की प्रगटतापूर्वक वर्तता है, तब परमात्मा-राजा जानता है कि इससे सभी की प्रगटता और रसास्वाद है। परमसुख इससे ही है, इसके बिना वेदकता नहीं है। यह चारित्र मंत्री सभी गुणों को सफल करता है। इसे ज्ञात होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है कि इससे ही मेरी गुण-प्रजा का विलास है। अन्य जिन लक्षण-रीति के धारक हैं, उन लक्षणों को सफल कर यह परमात्मा राजा की राजधानी सुरक्षित करता है; इसीलिए चारित्र मंत्री घर की सम्पूर्ण निधि की सिद्धि करता है। यह बाहर ही बाहर उनकी सिद्धि नहीं करता है, वरन् उनके घर में प्रवेश कर, उनकी निधि-महिमा का विलास व्यक्त करता है – ऐसा चारित्र प्रधान है। यदि चारित्र आचरण नहीं करे तो सभी गुणों की भेंट परमात्मा राजा से होने पर भी नहीं होने के समान होगी और तब निज प्रजा का अभाव होने पर यह राजा किसका कहलाएगा; इसप्रकार राज्यपद का संरक्षणशील चारित्र बड़ा मंत्री है।

सम्यक्त्व-सेनापति का वर्णन – सम्यक्त्व-सेनापति असंख्यदेशों की सम्पूर्ण गुण-प्रजा का भली-भाँति पालन करता है। उस गुण प्रजा के प्रतिकूलों का प्रवेश नहीं होने देता है। किसी की चोरी-जारी वृत्ति नहीं चल पाती है। ज्ञान से प्रतिकूल अज्ञान के कारण संसारी अंध होकर डोल रहा है, निजतत्त्व को नहीं जानता है, स्वरूप से भिन्न पर को हेय नहीं जानता है; पर को अपना मान कर मोह बैरी की प्रबलता से अपनी शक्ति मंद कर चौरासी लाख योनि-देशों में अनादि से घूम रहा है; अंशमात्र भी स्थिरता प्राप्त नहीं कर पा रहा है। ऐसे महिमावान अज्ञान को यह सम्यक्त्व सेनापति अपने देशों में किंचित्मात्र भी प्रवेश नहीं करने देता है।

दर्शनावरण स्वरूप का दर्शन नहीं होने देता है; उससे प्राणी पर को देखने में वर्तता हुआ वहाँ ही रति मानता है। अनादि से ऐसा ही आवरण चला आ रहा है। चक्षु द्वारा परावलोकन होता है, चक्षु दर्शनावरण उसे भी नहीं होने देता है। अचक्षु दर्शनावरण अचक्षुदर्शन भी नहीं होने देता है। अवधिदर्शनावरण अवधिदर्शन नहीं होने देता है। केवलदर्शनावरण केवलदर्शन नहीं होने देता है। पाँच निद्राएँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जागरण को ही नहीं होने देती हैं, तब स्वरूप-दर्शन तो कैसे होने दें ? इसप्रकार दर्शनावरण दर्शन-स्वरूप का घातक है। सम्यक्त्व सेनापति ऐसे प्रतिकूलों का अपने में प्रवेश नहीं होने देता है।

मोहनीय सम्यक्त्व, अनंतसुख, स्वरूपाचरणचारित्र का घातक है। इसने जगत के जीवों को बहिर्मुख (बहिरात्मा) कर रखा है। पर के फंदे में डालकर, व्याकुल कर अनात्मा के अभ्यास से दुखी किया है। साम्यभाव-अमृतरस का स्वाद नहीं लेने दिया है। अतत्त्व में श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करके मानी, परपद का अभिमानी, राग से उन्मत्त, पर्याय में नवीन-नवीन स्वच्छंददशा धारण कर विषय-कषाय से व्याप्य-व्यापकतामय पर-परिणतिरूप अशुद्धता द्वारा संसारवाला उस मोह ने ही कराया है। इन संसारी जीवों को मोह की महिमा, महामोह की कल्पना ऐसी है कि जिससे अनित्य शरीर को मोह से अपना मानकर परम प्रेम कर सुख-दुःख मानते रहते हैं। इसने अनंतज्ञान के धनी को भुला रखा है। सम्यक्त्व सेनापति ऐसे प्रतिकूल बैरी को नहीं आने देता है। यह परमात्मा-राजा का सन्मान-मर्यादा इसप्रकार सुरक्षित रखता है।

वेदनीय कर्म के कारण संसारी साता-असाता प्राप्त करते हुए सुख-दुःख का वेदन करता है। वहाँ हर्ष-शोक मानकर महा परवश हो स्वरूप का अनुभव नहीं कर पाता है; परास्वाद में ही रस मानता है। यह ऐसे विरोधी को नहीं आने देता है।

नामकर्म द्वारा की गई विविध विचित्रताएँ हैं। देव, मनुष्य, नारक, तिर्यंच, जाति आदि, शरीर आदि, अनेक नामों को धारण करता हुआ संसारी इसके कारण सूक्ष्म गुण को प्राप्त नहीं कर पाता है। सम्यक्त्व-सेनापति ऐसे प्रतिकूली का प्रवेश नहीं होने देता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उच्च-नीच गोत्रकर्म के उदय से उच्च-नीच गोत्र को धारण करता हुआ संसारी अगुरुलघुगुण को प्राप्त नहीं कर पाता है। यह सेनापति ऐसे कर्म का प्रवेश नहीं होने देता है।

सम्यक्त्व-सेनापति चारप्रकार के आयुष्ककर्म और पाँचप्रकार के अंतरायकर्म को आने नहीं देता है। सम्यक्त्व के तेज के कारण भावकर्म, नोकर्म का प्रवेश नहीं हो पाता है। यह परमात्मा-राजा की राजधानी को यथावत जैसी है, वैसी ही रखता है। इस सम्यक्त्व के कारण परमात्मा-राजा के सभी गुण शुद्ध हुए हैं; अतः इसे ऐसा काम सौंपा गया है।

परिणामरूपी कोतवाल का वर्णन – परिणाम-कोतवाल मिथ्यात्व परिणाम/पर-परिणामरूपी चोर का प्रवेश नहीं होने देता है। पर-परिणाम-चोर का स्वरूप बताते हैं –

यह स्वरूपरूप परिणाम का द्रोही है, पररूप की ओर झुकता है, परपद का निवास प्राप्त कर आत्म-निधि को चुराने में प्रवीण है। सतत रागादिरूप अवस्था रहने के कारण इसके अनाकुलसुख का संबंध कभी भी नहीं हुआ है; पररस का रसिया है। अति विषम होने पर भी भववासी जीव को अतिप्रिय लगता है। बंध का कर्ता, पराधीन और विनाशीक है। अनादि-सादि परिणमनशीलता सम्पन्न है, परम्परा से अनादि है।

ऐसे पर-परिणाम का प्रवेश परिणाम-कोतवाल नहीं होने देता है। इस परिणाम कोतवाल ने समय-समय पर परमात्मा-राजा के देश की प्रजा की सँभाल की है। यह बड़ा पुरुषार्थी है। परमात्मा-राजा ने एक स्वरूपरूप अनंतगुणों की सुरक्षा का पद/कार्य इसे सौंपा है। हमारे देश की सम्पूर्ण शुद्धता इसी से है – ऐसा जानकर यह गुण-प्रजा और राजा की समय-समय पर सँभाल करता है। सभी गुणों के घरों में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवेश कर, उनके निधान को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर, उनका प्रभाव प्रगट करता है। इस कोतवाल में ऐसी शक्ति है कि यदि यह थोड़ा भी वक्र/कुटिल/विपरीत होता है तो राजा के सभी पद अशुद्ध हो जाते हैं; संसारी के समान शक्ति मंद हो जाती है।

इसप्रकार परिणाम कोतवाल सभी पदों को शुद्ध रखता है। परिणाम के अधीन राजपद होने से यह कोतवाल परम-रक्षा-कारक है। परिणाम कोतवाल अपनी महिमा मंडित शक्ति से सम्पूर्ण राज्य को, राजा की गुणरूप प्रजा को, मंत्री, सेनापति आदि सभी को विद्यमान रखता है। इसके कारण सभी अपनी महिमा को धारण करते हैं; इससे उनका सर्वस्व है। ऐसा अपार शक्तिसम्पन्न परिणाम कोतवाल परमात्मा पद का कारण है।

परमात्मा-राजा का वर्णन – परमात्मा राजा महा, अनंत, अनुपम, अनाकुल, अबाधित सुख देनेवाली अपनी चेतनापरिणतिरूपी पत्नी के साथ रमण करता है। वह परमात्मा-राजा से मिलकर एक होती है। परमात्मा-राजा अपना अंग मिलाकर उसे एकरूप करता है।

प्रश्न – परिणति प्रतिसमय अन्य-अन्य होने से परमात्मा-राजा के अनंत-परिणति हैं; अतः अनंत-परिणति-पत्नी कहना चाहिए ?

समाधान – परमात्मा राजा एक है। भविष्यकाल में अन्य-अन्य रूप से प्रगट होने की शक्ति परिणति में है; परन्तु वर्तमानकाल में व्यक्तरूप परिणति एक है; वह ही राजा को रमाती है। राजा को भोगनेवाली वर्तमानकालीन परिणति एकसमयमात्र आत्मीक अनंतसुख देकर विलय हो परमात्मा में लीन हो जाती है। जैसे देव की एक देवांगना विलय होने पर दूसरी उत्पन्न होती है, उसका देव भोग करता है; परन्तु इन दोनों में इतना अंतर है कि वह अधिक समय रहती है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और यह एकसमयमात्र; वह विलीन होकर अन्यत्र उत्पन्न होती है, यह उस रूप में ही समा जाती है; मात्र वर्तमानगत समानता है।

परिणति अनंतरसमय है; स्वरूप का वेदन कर अंतर में मिलकर स्वरूप में निवास कर पुनः दूसरे समय उत्पन्न होती है। स्वरूप के शरीर में प्रवेश कर सुख देकर यह उसमें ही समा गई; पुनः उत्पन्न हो दूसरे समय पुनः सुख देती है। उत्पन्न हुए स्वरूप/उत्पाद से सुख-लाभ देकर व्यय द्वारा स्वरूप में निवास कर, ध्रुवता को पुष्ट कर, आनंद-पुंज द्वारा स्व-रस की प्रवृत्ति करनेवाली यह कामिनी नवीन स्वांग धारण कर परमात्मा-राजा के सभी अंग पुष्ट करती है। अन्य पत्नियाँ तो बल नष्ट करती हैं, यह बल में वृद्धि; अन्य तो कभी-कभी रसभंग भी करती हैं, परन्तु यह सदा रस ही करती है, आनंद देती है। परमात्मा-राजा को प्रिय, सुखदायी इस उत्कृष्ट रानी को अतीन्द्रिय विलास करनेवाली और अपनी जानकर स्वयं राजा भी इससे छल-कपट या दुर्व्यवहार नहीं करता है; अपना अंग देकर समय-समय पर अपने अंग से मिला लेता है।

राजा उससे मिलकर उसके रंग में रँग जाता है, वह राजा से मिलकर राजा के रंग में रँग जाती है। दोनों एक रसरूप अनुपम भोग भोगते हैं। परमात्मा-राजा और परिणति-पत्नी का विलास सुख अपार है, इनकी महिमा अपार है। इस परमात्मा राजा का राज्य सदा, शाश्वत, अचल है; अनंत वर्णन करने पर भी पार नहीं आता है। अधिक विस्तार करने पर अल्पबुद्धिवालों को समझ में नहीं आता है; इसलिए संक्षेप में कथन किया है। गुणवान, बुद्धिमान तो संक्षेप को ही विस्तृत कर समझ लेंगे। इसमें सम्पूर्ण सार आ गया है, समझनेवाले समझ लेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(सवैया)

परम पुराण लखे पुरुष पुराण पावे सही,
है स्वज्ञान जाकी महिमा अपार है।
ताकी किए धारण उधारणा स्वरूप का ह्वै,
ह्वै है निसतारणा सो लहे भाव पार है।
राजा परमातमा को करत बखाण महा,
दीप को सुजस बढ़े सदा-अविकार है।
अमल अनूप चिदरूप चिदानंदभूप,
तुरत ही जाने करे अरथ विचार है॥१॥

अर्थ – 'परमात्मपुराण' को पढ़ने से, पुराण/प्राचीन/अनादि अनंत परमात्मा को देखने/स्वीकार करने से 'पुरुष पुराण'/निज भगवान आत्मा की वास्तव में प्राप्ति होती है; अपार महिमावंत स्वज्ञान/आत्मज्ञान प्रगट होता है। इसकी धारणा करने से स्वरूप प्रकाशित होता है तथा संसार से निस्तारणा होकर भव से पार हो जाते हैं। महान परमात्मारूपी राजा का व्याख्यान करने से 'दीपचंद' का भी सदा अविकारी सुयश बढ़ता है तथा वे अमल, अनुपम, चिद्रूप, चिदानंद/ज्ञानानंदमय राजा को जानकर तत्काल ही अर्थ/वाच्य का विचार करते हैं॥१॥

(दोहा)

परम पुरुष परमातमा, परम गुणन को थान।
ताकी रुचि नित कीजिए, पावे पद भगवान॥२॥

अर्थ – सर्वोत्कृष्ट पुरुष/आत्मा, परमात्मा परम/सर्वश्रेष्ठ गुणों का धाम है/गुण सम्पन्न है। सदा ही उसकी रुचि करने से भगवत-पद/परमात्मा दशा/सिद्ध पद प्राप्त हो जाता है॥२॥

इसप्रकार परमात्म-पुराण नामक ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ।

❖❖❖

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिए...

इस जन्म-मरणरूप संसार में अनन्तकाल से परिभ्रमण करता हुआ जीव मनुष्यपर्याय प्राप्त करता है अथवा नहीं भी करता अर्थात् उसे वह मनुष्यपर्याय अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होती है। यदि कदाचित् वह मनुष्यभव प्राप्त कर भी ले तथापि नीचकुल में उत्पन्न होने से उसका वह मनुष्यभव पापाचरणपूर्वक ही नष्ट हो जाता है। यदि किसीप्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ तब भी वहाँ वह या तो गर्भ में ही मर जाता है अथवा बाल्यावस्था में भी शीघ्र मरण को प्राप्त करता है, इससे भी धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। पश्चात् आयु की अधिकता में वह धर्म प्राप्त हो जाय तो उसके विषय में उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिए।

– श्री पद्मनन्दि पंचविंशति

संसाररूपी वन में उत्पन्न हुआ जो मनुष्यरूपी सुन्दर वृक्ष वह स्त्रीरूपी सुशोभित लताओं से घिरा हुआ पुत्र-पौत्रादिरूपी मनोहर पर्णों से रमणीय तथा विषय-भोगजनित सुख जैसे फलों से परिपूर्ण होता है, यदि वह मृत्युरूपी तीव्र दावानल से व्याप्त न होता तो विद्वान और क्या देखते ? अर्थात् वह मनुष्यरूपी वृक्ष उस कालरूपी दावानल से नष्ट होता ही है, यह देखते हुए भी विद्वान आत्महित में प्रवृत्त नहीं होते, यह खेद की बात है।

– श्री पद्मनन्दिपंचविंशति

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

सवैया-टीका

अनुवादिका/संपादिका
ब्र. कल्पना जैन, सागर
एम.ए., शास्त्री

प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट
173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

धर्मात्मा विचार करता है...

धर्मात्मा निरन्तर स्वरूप का सेवन करता है। कमजोरी वश राग आता है, उसे वह जानता है, किन्तु रागादि का सेवन नहीं करता। तीर्थंकरों ने पूर्णदशा प्राप्त की, मुनिराज सेवन कर रहे हैं। भक्ति, पूजा, यात्रादि का शुभराग होता है, किन्तु वह व्यवहार जानने के लिए है, वह मूलस्वरूप नहीं है। धर्मात्मा को उससमय भी स्वरूप सेवन की दृष्टि है। स्वरूप को भूलनेवाले की भक्ति आदि व्यर्थ है। स्वरूप का भान हो तो राग को व्यवहार कहा जाता है। धर्मात्मा द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, पर-पदार्थों को आत्मा से भिन्न जानकर विचारता है कि मेरा पद सर्वोत्कृष्ट है। उसको अवलोकन कर मेरा कार्य करना उचित है। चिदानन्द सूर्य कर्म के बादलों से ढँक गया है, तो भी स्वरूप सूर्य का प्रकाश बादलों से नष्ट नहीं हुआ है। यहाँ पर्याय में कमी है उसकी बात नहीं, स्वभाव की बात है। चैतन्य सूर्य का कर्मों से घात नहीं हुआ। निमित्तरूप से कर्मों का आवरण होने पर भी वे चिदानन्दस्वरूप को घात नहीं सकते। मेरे चैतन्यस्वभाव को जड़ कर दे - ऐसी सामर्थ्य किसी की नहीं है। कषायचक्र आत्मा को अचेतन नहीं कर सकता। मेरे चैतन्य सूर्य का घात कर्मरूपी बादल नहीं कर सकते। मेरी वस्तु ऐसी की ऐसी पड़ी है। इसतरह श्रद्धा-ज्ञान के विषय में धर्मात्मा विचार करता है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

ॐ

श्री परमात्मने नमः

कविवर शाह दीपचन्दजी कासलीवाल कृत

सवैया-टीका

(सवैया)

गुण एक-एक जाके परजे अनंत करे,
परजे में नंत नृत्य नाना विसतर्‌यो है।
नृत्य में अनंत घट घट में अनंत कला,
कला में अखंडित अनंत रूप धर्‌यो है॥
रूप में अनंत सत सत्ता में अनंत भाव,
भाव को लखावहु अनंत रस भर्‌यो है।
रस के स्वभाव में प्रभाव है अनंत 'दीप',
सहज अनंत यो अनंत लगि कर्‌यो है॥

अर्थ – एक-एक गुण अनंत पर्याय करता है, पर्याय में अनंत नृत्य विविधरूप में विस्तृत हैं। नृत्य में अनंत घट हैं, घट में अनंत कला है, कला में अखंडित, अनंत रूप विद्यमान हैं। रूप में अनंत सत्ताएँ हैं, सत्ता में अनंत भाव हैं। प्रत्येक भाव अनंत रस से परिपूर्ण है। रस के स्वभाव में अनंत प्रभाव हैं। दीपचंद कवि कहते हैं कि इसप्रकार अनंत सहजरूप में अनंत विशेषता सम्पन्न हो गया है।

टीका – सूक्ष्मगुण की अनंत पर्यायें हैं। जैसे-ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, वीर्य सूक्ष्म, सुख सूक्ष्म, सभी गुण सूक्ष्म – इसप्रकार सूक्ष्मगुण और उसकी पर्याय सूक्ष्म अनंत में विस्तृत हुई। सूक्ष्मता प्रत्येक गुण

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में व्याप्त हुई। उस सूक्ष्म की एक ज्ञान सूक्ष्म पर्याय है; उसमें ज्ञान है। वह ज्ञान अनंतानंत गुणात्मक आत्मा, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व, अगुरुलघुत्व, प्रभुत्व, विभुत्व इत्यादि गुणों में व्याप्त है। वह अनंत में व्याप्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, वस्तुत्व, प्रमेयत्व इत्यादि अनंतगुणों को जानता है। ज्ञान अनंत ज्ञानत्वरूप परिणमित हुआ, यह उसका अनंत नृत्य है। ज्ञान ने अनंतगुणमय निजद्रव्य को जाना; ऐसे द्रव्य की जानकारीरूप ज्ञान ने नृत्य किया है। वह नृत्य अनंत है, उसमें द्रव्य की जानकारी है।

वह द्रव्य अनंतगुण के घट (घाट/पहलू) सम्पन्न है। अनंतगुणों के वे घट एक द्रव्य की जानकारीरूप नृत्य में आ गए। अनंतगुणों में से प्रत्येक गुण में अनंतप्रकार के घट हैं। अनंतप्रकार का वर्णन इसप्रकार है – वीर्यगुण में द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य इत्यादि घट हैं। क्षेत्रवीर्य क्षेत्र को निष्पन्न रखता है। द्रव्यवीर्य द्रव्य को निष्पन्न रखता है। पर्यायवीर्य पर्याय को निष्पन्न रखता है। भाववीर्य भाव को निष्पन्न रखता है। द्रव्य का असंख्यप्रदेश क्षेत्र है। उसमें अनंतगुणों का प्रकाश उठता है। दर्शन प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, वीर्य प्रकाश, सुख प्रकाश, प्रभुत्व प्रकाश इत्यादि अनंतगुणों का प्रकाश प्रदेश क्षेत्र से उठता है/फैलता है। ऐसे क्षेत्र को वह क्षेत्रवीर्य निष्पन्न रखतां है।

इसीप्रकार द्रव्य के द्रव्यत्व गुण से उत्पन्न भेदों द्वारा द्रव्य उन्हें निष्पन्न रखता है। द्रव्यवीर्य का होना/परिणमना भावपर्याय है, उपलक्षण से भावरूप वस्तु, परिणमनरूप भाव अथवा स्वभावभाव; उसे निष्पन्न रखनेवाला भाववीर्य है। इसप्रकार के अनेक घट (पहलू) वीर्यगुण के हैं। वीर्यगुण के घट में एक वस्तुत्व नामक गुण है। वस्तु का भाव वस्तुत्व है। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। उसके भावरूप वस्तु को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह निष्पन्न रखता है। वस्तुत्व वीर्य या उसके घट में अनंत कलाएं हैं; उन्हें कहते हैं–

वस्तु में जो अनेक स्वाँग लाता है अथवा जो नट के समान एक रूप रहकर अनेक स्वाँग करता है, उसे कला कहते हैं। वस्तु सामान्य-विशेष भावरूप है। ज्ञान का मात्र ज्ञानत्वरूप परिणमन ज्ञान का सामान्यभाव है। ज्ञान ने द्रव्य को जाना, गुण को जाना, पर्याय को जाना – यह ज्ञान का विशेष भाव है। मात्र देखनेरूप परिणमन दर्शन का सामान्यभाव है। द्रव्य को देखना, गुण को देखना, पर्याय को देखना इत्यादि दर्शन का विशेषभाव है। इसीप्रकार सम्पूर्ण गुणों में सामान्य-विशेषभाव है। एकरूप रहता हुआ भी ऐसा भाव-भेद वस्तुत्व करता है; वह ऐसी कला का धारक है। समस्त गुणों की सामान्य-विशेषरूप पर्याय से मंडित वस्तुत्व गुण के कारण वस्तु की पर्यायें अनंत हैं। वस्तुत्व की पर्याय ने प्रमेयत्व को सामान्य-विशेष भाव दिया है, जिससे प्रमेयत्व सामान्य-विशेषरूप हुआ। सामान्य-विशेषरूप होने पर ही स्वरूप स्थिर रहता है। वस्तुत्व की कला प्रमेयत्व में आने पर उसे प्रमेय ने अनंतरूप में धारण किया; उसका वर्णन करते हैं –

एकरूप रहते हुए अनेक प्रकारता को धारण करनेवाले प्रमेयगुण की दर्शन दृष्टि सम्यक् है; अतः प्रमाण करने-योग्य है। सम्यग्ज्ञानत्व को धारण करनेवाला ज्ञान प्रमाण करने-योग्य है। वस्तु को सम्यक् रूप में निष्पन्न रखने की योग्यतावाला वीर्य प्रमाण करने-योग्य है। प्रमेय गुण के बिना अनंतगुण अपना स्वरूप धारण नहीं कर पाते तथा प्रमाण-योग्य नहीं होते हैं; प्रमेय के कारण सभी गुणों में अनंत सूक्ष्म पर्यायें आईं, तब उन्होंने अपना रूप धारण किया है।

एक वस्तुत्व की अनंत कला में एक प्रमेयत्व की कला है। वह प्रमेय कला अनंतगुणों का रूप धारण करती है। उसने ज्ञान को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रमाणित कर ज्ञान का रूप धारण किया; सत्ता का रूप, वीर्य का रूप धारण किया है। प्रमेयत्व में सत्ता का रूप आया है, वह रूप अनंत सत्ताओं ने धारण किया है।

प्रश्न – वह रूप अनंत सत्ताओं ने धारण क्यों किया है ?

समाधान – सत्ता तीन प्रकार की है – १. सत्तामात्र स्वरूप-भेद की अपेक्षा महासत्ता परम सामान्य संग्रहनय से एक है; २. अवान्तरसत्ता और ३. स्वरूपसत्ता। द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता और पर्यायसत्ता – इन तीनों में से गुणसत्ता के अनंत भेद हैं – दर्शनसत्ता, ज्ञानसत्ता, सुख-सत्ता, वीर्यसत्ता, प्रमेयत्वसत्ता, द्रव्यत्वसत्ता इत्यादि अनंतगुणों की अनंतसत्ताएँ एक प्रमेयत्व में विराजमान हैं; इसकारण सत्ता प्रमाण करने-योग्य होती है। प्रमेयत्व के बिना वह अप्रमाण हो जाती; उसे कोई स्वीकार नहीं करता, तब अकार्यकारी होने से गिनती में नहीं आती; अतः प्रमेयत्व में अनंतसत्ताएँ कही गई हैं, प्रत्येक गुण की सत्ता उसमें विराजमान है।

प्रत्येक गुण की सत्ता में अनंतभाव हैं। उनका वर्णन – एक द्रव्य है। उसे द्रव्यत्व के कारण यह सार्थक नाम मिला है। "गुणपर्यायं द्रवति व्याप्नोतीति द्रव्यम् – जो गुण-पर्याय को द्रवित होता है, व्याप्त करता है, वह द्रव्य है। द्रव्यत्व गुण के अभाव में द्रव्य भी नहीं रह सकता है।"

प्रश्न – द्रव्यत्व के बिना द्रव्य क्यों नहीं रह सकता है ?

समाधान – द्रवित हुए बिना गुण, पर्याय, स्वभाव व्यक्त नहीं होते हैं। द्रवित होने पर पर्याय तरंग उठती है, तब अनंतानंतशक्ति मंडित गुणों और अनंतगुण पुंजस्वरूप द्रव्यों में परिणमन, गुण परिणाम व्यक्त हुआ; तब स्वरूपलाभ, अनंतगुणों का लाभ होने से द्रव्य-गुण की सिद्धि हुई। इसप्रकार द्रव्य द्रवित हो, पर्याय प्रगट हो, वह पर्याय द्रव्य को प्राप्त हो, तब पर्याय-गुण द्रवित होने से गुण-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणति द्वारा गुण का लाभ ले गुण में मिलने पर गुण की सिद्धि होती है; इससे गुणों का समुदायरूप द्रव्य सिद्ध होता है।

गुण द्रवित हो तो वह गुण-पर्यायरूप द्रवित होता है, तब स्व-पररूप गुण-परिणतिमय पर्याय उसके साथ एकमेक होती है। लक्षण के कारण गुण 'लक्ष्य' नाम प्राप्त करता है। गुण द्रवित होने पर सम्पूर्ण गुणों का एक सत्त्व हो जाने से, उसके द्वारा द्रव्य की सिद्धि हुई। इसप्रकार द्रव्यत्व के कारण सत्ता द्रवित हो अनंतभाव को धारण करती है। इसप्रकार द्रव्यत्व ने सत्ता के समान अनंतभाव धारण किए हैं। जिस-जिस गुणरूप में सत्ता कही जाती है, उन सभी रूप सत्ता द्रव्यत्व की अपेक्षा भेदरूप है, उनके भाव भी भिन्न-भिन्न हैं।

अगुरुलघुत्व-सत्ता भाव अनंत ने धारण किया है। गुरु-लघु होने पर इन्द्रियग्राह्य हो जाता; भारी होकर गिर पड़ता, हल्का होकर उड़ जाता; तब अबाधित, अनाघात सत्ता का घात हो जाता; परन्तु अगुरुलघु के कारण सत्ता के भाव अनंत प्रकार के हैं। ज्ञान अगुरुलघु, दर्शन अगुरुलघु इत्यादि अनंत भाव अगुरुलघु धारण करता है। एक प्रदेश अगुरुलघु का प्रदेश भाव है। वह प्रदेश अगुरुलघु के प्रदेश भाव को दिखाने के लिए अनंतरसमय होता है। उसे कहते हैं –

सम्यग्दृष्टि ने अगुरुलघु भाव से उस प्रदेश को देखा, तब वह अनंतरसमय हुआ। वह इसप्रकार – प्रदेशों में से अनंतगुणों का प्रकाश उठता है। प्रत्येक गुण का प्रकाश संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि अनंतभेदरूप अनेक भावों को दिखाता है; तथापि सत्तारूप वस्तु एक है। प्रत्येक प्रदेश में गुण के अनंतधर्म हैं। गुण अनंतशक्तिसम्पन्न है। पर्याय नृत्य, घट, कला, रूप, सत्ता, भाव आदि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि भेद प्रकाशमय है। सकल भेदों के अभेद प्रकाशमय एक सत्त्व है। सकल प्रकाश मिलकर एक अभेद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशमय चिद्प्रकाशरूप है। प्रत्येक प्रदेश इसी प्रकाश से सम्पन्न हो प्रकाशित है। ऐसे असंख्यप्रदेशों की पुंज वस्तु है। एक, अखंड प्रदेश के उस प्रकाश में देखने पर अनंत अनुभवरस स्वानुभूतिरस दिखाई देता है। अपार शक्तिसम्पन्न, भेदाभेदमय उस प्रकाश में अनंत चिद्प्रकाश लक्षण सम्पन्न अनुभवरस है; जो वचन अगोचर और अनंत है।

अब जिस रस का जो स्वभाव है और जिस स्वभाव का जो अनंत प्रभाव है; उसे कहते हैं – प्रदेशमय अगुरुलघु को देखने पर व्यक्त हुआ रस प्रदेश अगुरुलघु का भाव है। उससे सहित भेदाभेदमय चिदप्रकाश को देखने पर उसमें जो रस की स्थिति, अनुभूति और अनुभवरस है; उसके स्वरूप का भली-भाँति गमन/परिणमनरूप भाव स्वभाव है। भेदाभेदात्मक चिद्प्रकाश भाव का देखना अतीन्द्रिय आनंदरस से परिपूर्ण है। उस यथावस्थित आनंदरस को 'सु'=भली-भाँति, भवन=होना; इसप्रकार स्वभाव कहते हैं।

अब उस रस के स्वभाव का प्रभाव कहते हैं – सम्यक्रूप में प्रगट हुए उस आनंदरस के स्वभाव का प्रभाव वचन-अगोचर है, अंत से रहित अनंत है। वह केवलज्ञान से प्रगट हुआ है। वह त्रिकालवर्ती अलोक सहित त्रिलोक के पदार्थों को; उनके द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि समस्त भेदों को जानता है। यह ज्ञानसत्ता से अभिन्न है। केवलज्ञान का प्रभाव अनंत है। आत्मा में एक प्रभुत्व नाम का गुण है, जो उन सभी रसों मय, स्वभावों से सम्पन्न प्रभावों को संगठित कर लेता है। आत्मा सहज ही अनंतगुणरूप है; अतः रस आदि इन सभी को अनंतगुणों में घटित करना चाहिए। उस प्रभाव में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सदा अविनाशी चिदविलास है।

इसप्रकार सवैया-टीका सम्पूर्ण हुई।

❖❖❖

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानानंद

परमात्म-पुराण

सवैया-टीका

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com